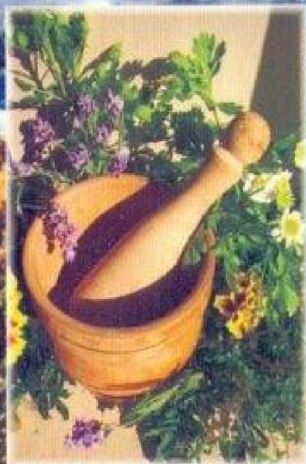
जड़ी-बूटियों द्वारा स्वास्थ्य संरक्षण



—ब्रह्मवर्चस्

जड़ी-बूटियों द्वारा स्वास्थ्य संरक्षण

लेखक

ब्रह्मवर्चस्

प्रकाशक

युग निर्माण योजना विस्तार ट्रस्ट

गायत्री तपोभूमि, मथुरा—२८१००३

फोन : (०५६५) २५३०१२८, २५३०३९९

मो. : ०९९२७०८६२८९, ०९९२७०८६२८७

फैक्स नं : २५३०२००

पुनरावृत्ति सन् २०११ मूल्य : ५० रुपये

Free Read/Download & Order 3000+ books authored by Yugrishi Pt. Shriram Sharma Acharya(Founder of All World Gayatri Pariwar) on all aspects of life in Hindi, Gujarati, English, Marathi & other languages at
www.vicharkrantibooks.org http://literature.awgp.org

प्रकाशक :

युग निर्माण योजना विस्तार ट्रस्ट

गायत्री तपोभूमि

मथुरा (उ० प्र०)

लेखक :

ब्रह्मवर्चस्

मूल्य : ५० रुपये

मुद्रक :

युग निर्माण योजना प्रेस

गायत्री तपोभूमि, मथुरा

Free Read/Download & Order 3000+ books authored by Yugrishi Pt. Shriram Sharma Acharya(Founder of All World Gayatri Pariwar) on all aspects of life in Hindi, Gujarati, English, Marathi & other languages at
www.vicharkrantibooks.org http://literature.awgp.org

प्राक्कथन

विधाता द्वारा मनुष्यों को दिए गए अनेकानेक उपहारों में वनौषधियों को भी एक ऐसा वरदान कहा जा सकता है, जिसने शारीरिक व्याधियों और मानसिक आधियों के निवारण में देवताओं जैसे अनुग्रह प्रस्तुत किए हैं। ये घास-पात जैसी दीखती तो हैं, पर अपने विशेष गुणों के कारण रोग निवारण, आरोग्यवर्द्धन एवं परिशोधन के काम आती हैं। आयुर्वेद से लेकर ऐलोपैथी तक की अनेक चिकित्सा पद्धति के उपचार प्रयोजन में वनौषधियों के ही विभिन्न रूपांतर प्रयुक्त होते हैं। एंटीबायोटिक रेडिएशन तथाकथित स्वास्थ्य संवर्द्धक विटामिन्स, हारमोन्स गुणों के दुष्परिणामों पर विचारशीलों ने गहराई से सोचा है और इस निष्कर्ष पर पहुँचे हैं कि यदि निरापद जीवनीशक्ति संवर्द्धक औषधियाँ हो सकती हैं तो वे मात्र प्राकृतिक रूप में पाई जाने वाली वनौषधियाँ ही हैं। यह पद्धति हानिरहित तो है ही, आर्थिक दृष्टि से भी हमारे जैसे विकासशील राष्ट्र के लिए एकमात्र अवलंबन भी है।

कुछ औषधियाँ तो घर-आँगन में भी उगाई जा सकती हैं। आधुनिक चिकित्सा विज्ञान को धन्यवाद दिया जाना चाहिए और नई-नई उपलब्धियों को धन्यवाद दिया जाना चाहिए तथा प्रशंसा भी की जानी चाहिए। आज आवश्यकता इस बात की भी है कि जड़ी-बूटियों द्वारा उपचार पद्धति को पुनर्जीवित किया जाए।

Free Read/Download & Order 3000+ books authored by Yugrishi Pt. Shriram Sharma Acharya(Founder of All World Gayatri Pariwar) on all aspects of life in Hindi, Gujarati, English, Marathi & other languages at
www.vicharkrantibooks.org http://literature.awgp.org

आयुर्वेद का पुनरुद्धार ब्रह्मवर्चस की शोध का एक अभिनव प्रयास है। इस क्षेत्र में किए गए प्रयोगों में गत दो वर्षों में अद्‌भुत सफलता मिली है। काष्ठ औषधियों का एकौषधि प्रयोग एक ऐसा चमत्कारी अनुभव सिद्ध हुआ है, जिसे हर प्रज्ञा परिजन ने प्रयोग करके स्वयं देखा है। नैसर्गिक जीवन की ओर जनमानस को मोड़ना ही प्रज्ञा अभियान का लक्ष्य है। ब्रह्मवर्चस के प्रयोग उसी दिशा में गतिशील हैं। स्वस्थ नागरिक ही प्रस्तुत युगसंधि वेला में समर्थ भूमिका निभा सकेंगे। ऐसी स्थिति में जीवनीशक्ति बढ़ाने वाली इस विद्या से परिचित होना सभी के लिए अभीष्ट है।

**

Free Read/Download & Order 3000+ books authored by Yugrishi Pt. Shriram Sharma Acharya(Founder of All World Gayatri Pariwar) on all aspects of life in Hindi, Gujarati, English, Marathi & other languages at
www.vicharkrantibooks.org http://literature.awgp.org

विषय सूची

Free Read/Download & Order 3000+ books authored by Yugrishi Pt. Shriram Sharma Acharya(Founder of All World Gayatri Pariwar) on all aspects of life in Hindi, Gujarati, English, Marathi & other languages at
www.vicharkrantibooks.org http://literature.awgp.org

**

Free Read/Download & Order 3000+ books authored by Yugrishi Pt. Shriram Sharma Acharya(Founder of All World Gayatri Pariwar) on all aspects of life in Hindi, Gujarati, English, Marathi & other languages at
www.vicharkrantibooks.org http://literature.awgp.org

जड़ी-बूटी चिकित्सा युग की महत्त्वपूर्ण आवश्यकता

आज सभ्यता की घुड़दौड़-आपाधापी ने मनुष्य को स्वास्थ्य के विषय में इस सीमा तक परावलंबी बना दिया है कि वह प्राकृतिक जीवनक्रम ही भुला बैठा है। फलतः आएदिन रोग-शोकों के विग्रह खड़े होते रहते हैं व छोटी-छोटी व्याधियों के नाम पर अनाप-शनाप धन नष्ट होता रहता है। मनुष्य अंदर से खोखला होता चला जा रहा है। जीवनीशक्ति का चारों ओर अभाव नजर आता है। मौसम में आएदिन होते रहने वाले परिवर्तन उसे व्याधिग्रस्त कर देते हैं, जबकि यही मनुष्य २५ वर्ष पूर्व तक इन्हीं का सामना भलीभाँति कर लेता था। आज शताधिकों की संख्या उँगलियों पर गिनने योग्य है। जबकि हमारे पूर्वज कई वर्षों तक जीवित रहते थे, उनके पराक्रमों की गाथाएँ सुनकर हम आश्चर्यचकित रह जाते हैं।

आहार-विहार में समाविष्ट कृत्रिमता ने जिस प्रकार जिस सीमा तक शरीर के अंग-अवयवों को अपंग-असमर्थ बनाया, उसी प्रकार चिकित्सा क्रम भी बनते चले गए। पूर्वकाल में आयुर्वेद ही स्वास्थ्य संरक्षण का एकमात्र माध्यम था। धीरे-धीरे वृहत्तर भारत में समाविष्ट अन्य संस्कृतियों के साथ यहाँ अन्य पैथियाँ भी आईं और आज चिकित्सा के नाम पर ढेरों पद्धतियाँ प्रयुक्त होती हैं। मनुष्य बुद्धिमान हुआ है, निदान के ढंग सोच लिए गए हैं, जीवाणु-विषाणुओं के देखने-पहचानने के यंत्र बना लिए गए हैं, परंतु औषधियों की मारक क्षमता व उन पर अवलंबन के दुष्परिणामों ने एक बार फिर यह सोचने पर विवश कर दिया है कि क्या यही मनुष्य की नियति है? इसे दुर्योग ही कहें कि

Free Read/Download & Order 3000+ books authored by Yugrishi Pt. Shriram Sharma Acharya(Founder of All World Gayatri Pariwar) on all aspects of life in Hindi, Gujarati, English, Marathi & other languages at
www.vicharkrantibooks.org http://literature.awgp.org

आयुर्वेद जैसी विशुद्ध चिकित्सा प्रणाली पर भी गत दशाब्दियों में वज्रपात ही हुआ है। इसे भी आधुनिक बनाने की ललक में आतुर गिने-चुने विद्वानों ने इसकी उपयोगिता और भी कम कर दी है। आज जहाँ आयुर्वेद के योगों पर से लोगों का विश्वास घटता चला जा रहा है, वहाँ तुरंत ठीक होने की आवेशपूर्ण जल्दबाजी ने उन्हें एलोपैथी की मारक औषधियों का गुलाम बना दिया है। होम्योपैथी, कोमोपैथी, यूनानी, तिब्बी-सिद्धा, योग चिकित्सा, सूर्य चिकित्सा, कल्क चिकित्सा, टेलीथेरेपी, काष्मिक रे थेरेपी, मैग्नेटोथेरेपी, एकूपंचर, एरोमा थेरेपी, हिप्नोथेरेपी इत्यादि अनेक प्रकार की पद्धतियाँ प्रचलित होते हुए भी चारों तरफ से एक ही माँग है कि वैकल्पिक चिकित्सा प्रणाली ढूँढ़ निकाली जाए, मानवता को स्वास्थ्य संकट से मुक्ति दिलाई जाए। जितनी ही यह माँग बढ़ रही है, उतनी ही मात्रा में व्याधियों की संख्या व भिन्नता भी। 'ड्रग रेजिस्टेन्स' एवं 'ड्रग डिपेण्डेन्स' जैसी समस्याओं ने वैज्ञानिक जगत को उद्वेलित किया व एक नितांत सुरक्षित, प्राकृतिक जीवनक्रम से मिलती-जुलती सहज सुलभ चिकित्सा पद्धति के आविष्कार हेतु विवश किया है।

यह एक विडंबना ही है कि जिन वनौषधियों के प्रयोग के कारण भारतवर्ष की विशिष्टता एवं संपन्नता आँकी जाती थी उनके प्रयोग को भारतवासी ही भुला बैठे हैं। पश्चिम जर्मनी, हंगरी, सोवियत रूस, इंडोनेशिया, चीन, जापान जैसे देशों में जहाँ जड़ी-बूटियों से चिकित्सा पर अनुसंधान कार्य होकर सफल प्रयोग भी किए जा रहे हैं वहाँ इस हरीतिमा संपदा की जानकारी सारे विश्व को देने वाले भारत के चिकित्सक मनीषी स्वयं पाश्चात्याभिमुख होते चले जा रहे हैं। आयुर्वेद वनौषधि संपदा की गरिमा भुला देने का कारण कहीं खोजा जाए तो इसे मात्र बौद्धिक परावलंबन ही कहा जाएगा। वैक्सीन्स, मारक

Free Read/Download & Order 3000+ books authored by Yugrishi Pt. Shriram Sharma Acharya(Founder of All World Gayatri Pariwar) on all aspects of life in Hindi, Gujarati, English, Marathi & other languages at
www.vicharkrantibooks.org http://literature.awgp.org

एंटीबायोटिक्स, रेडिएशन, तथाकथित स्वास्थ्य संवर्द्धक विटामिन-हारमोन्स गणों के घातक दुष्परिणामों पर सभी विचारशीलों ने गहराई से सोचा है, वे इसी निष्कर्ष पर पहुँचे हैं कि यदि कोई निरापद जीवनीशक्ति संवर्द्धक औषधियाँ हो सकती हैं तो वे मात्र प्राकृतिक रूप में पाई जाने वाली वनौषधियाँ ही हैं। आहार-विहार के सामान्य नियमों का पालन करके, श्रम व्यायाम को जीवन में स्थान देते हुए मनुष्य सहज ही अपनी अंत: की सामर्थ्य को बढ़ा व प्रखर बना सकता है। आधि-व्याधियों से रोकथाम हेतु आवश्यकता आ ही पड़े तो चारों ओर सहज ही उपलब्ध वनौषधियों से वह अपनी चिकित्सा भी करता रह सकता है। वह पद्धति हानिरहित तो है ही, आर्थिक दृष्टि से भी हमारे जैसे विकासशील राष्ट्र के लिए एकमात्र अवलंबन भी है।

उपलब्ध आधुनिक औषधियों को उपेक्षा से तो नहीं देखा जाना चाहिए पर जरा शब्दार्थ की दृष्टि से एलोपैथी शब्द का विवेचन कर लिया जाए तो कोई हानि नहीं। एनसाइक्लोपीडिया ब्रिटेनिका १९८१ के अनुसार एलोपैथी वह चिकित्सा पद्धति है जो औषधि के प्रयोग द्वारा उस व्याधि के अतिरिक्त अन्य नए लक्षण पैदा करती है। भावार्थ यही है कि एक बीमारी का उपचार अन्यान्य रोगों को जन्म देता है। एंटीबायोटिक्स का अर्थ है, वे औषधियाँ जो जीवन के लिए घातक हैं। एंटी अर्थात विरुद्ध, बायोटिक्स अर्थात जीवन; इसलिए 'हीलिंग एण्ड कांकवेस्ट ऑफ पेन' के विद्वान लेखक डॉ० जे० फील्ड का यह कथन सही जान पड़ता है कि वर्तमान चिकित्सा पद्धति तुरंत लाभकारी तो है पर वह एक प्रयोग एवं वैज्ञानिक अंधविश्वास मात्र है। खंडनात्मक विवेचन न भी किया जाए तो भी तर्क, तथ्य और वैज्ञानिक प्रमाण यही सिद्ध करते हैं कि एक वैकल्पिक चिकित्सा पद्धति की समय के अनुसार खोज अत्यंत अनिवार्य है।

Free Read/Download & Order 3000+ books authored by Yugrishi Pt. Shriram Sharma Acharya(Founder of All World Gayatri Pariwar) on all aspects of life in Hindi, Gujarati, English, Marathi & other languages at
www.vicharkrantibooks.org http://literature.awgp.org

शरीर का धर्म है अपनी रक्षा के लिए व्यवस्था बनाना। जीवनी शक्ति के रूप में उसे एक सुरक्षा संस्थान मिला हुआ है। रक्त के श्वेत कण एवं इम्यून संस्थान सुरक्षा सेना, सीमा आरक्षी बल का कार्य करते हैं। बाह्य आक्रमणकारी जीवाणु-विषाणु पहले मानव शरीर में सुरक्षा पंक्ति की कमजोरी का जायजा लेते हैं। उनकी घातक सामर्थ्य में वृद्धि शरीर की कमजोरी के साथ बढ़ती जाती है एवं शरीर रोगी होता जाता है। रोग से निवृत्ति भी इसी पर निर्भर करती है कि कितना शीघ्र विकृत द्रव्यों का निष्कासन संभव हो पाता है। शरीर के निष्कासन संस्थानों का सक्षम होना व्यक्ति के समग्र स्वास्थ्य पर निर्भर करता है। आंतरिक अंगों में से एक का भी व्याधिग्रस्त होना कमजोर जीवनीशक्ति, अपाहिज शारीरिक स्थिति एवं नए-नए रोगों के आक्रमण के रूप में निकलता है। गुरदे छन्नी की तरह रक्त में से विजातीय द्रव्यों को निकालकर मूत्र रूप में बाहर निकाल फेंकते हैं। यही गुरदे जब रोगग्रस्त हो जाते हैं तब सारा विजातीय द्रव्य शरीर में एकत्र होता चला जाता है। ऐसे व्यक्ति जीवित लाश की तरह अपनी यात्रा खींचते हैं। न वे श्वास ही ढंग से ले पाते हैं न खाना ठीक से खा पाते हैं। बाह्य जीवाणु विषाणुओं का घातक प्रभाव उन्हें शीघ्र मृत्यु के मुख में ले जाता है। चयापचय के परिणामस्वरूप उत्पन्न विकार द्रव्य जब एकत्र होते चले जाते हैं, आहार-विहार में व्यतिक्रम आ जाता है, प्रकृति के अनुकूल दिनचर्या का निर्धारण नहीं हो पाता है, तो रोगों की बाढ़ सी आ जाती है।

इस मूल आधार को समझने के बाद चिकित्सा व्यवस्था का स्वरूप निर्धारित कर सकना संभव है। किसी भी लक्षण को दबाने के बजाय उसे जन्म देने वाले कारण को जड़ से मिटाना ही श्रेयस्कर है। तुरंत लाभ की दृष्टि से तो यही उचित लगा है कि सामयिक दृष्टिगत

Free Read/Download & Order 3000+ books authored by Yugrishi Pt. Shriram Sharma Acharya(Founder of All World Gayatri Pariwar) on all aspects of life in Hindi, Gujarati, English, Marathi & other languages at
www.vicharkrantibooks.org http://literature.awgp.org

होते ही लक्षण को मिटा दिया जाए। गंदगी पर मिट्टी को डालने पर वह उस समय तो आँखों से ओझल हो सकती है, पर वह नष्ट नहीं होती। दरद को, वेदना को औषधियों से उस समय तो मिटाया जा सकता है, परंतु मूल रूप में बैठे रोग को यदि समूल नष्ट नहीं किया गया तो वह नए रूप में अधिक तीव्रता से उभरकर आ सकता है। अंतत: निष्कर्ष यही निकलता है कि इस चिकित्सा पद्धति के अंतराल में छिपे अंधविश्वास को जड़ से निकाल-फेंककर अब जनमानस को अपनी दृष्टि का परिमार्जन करना ही चाहिए। जितना भी श्रेष्ठ है, वह तो ग्राह्य है, पर सामयिक लाभ का दर्शन किसी भी मूल्य पर जीवन में नहीं उतारा जा सकता।

जहाँ तक सिद्धांतों, रोग निदान परीक्षण का सवाल है, आधुनिक चिकित्सा विज्ञान को धन्यवाद दिया जाना चाहिए और उसकी उपलब्धियों की प्रशंसा भी की जानी चाहिए। उपचार पक्ष से असहमत होते हुए अब आवश्यकता आ पड़ी है कि जड़ी-बूटियों के द्वारा उपचार पद्धति का पुनर्जीवन किया जाए। उनके उपयोग का विज्ञान सम्मत ढंग जन मानस को समझाया व हृदयंगम कराया जाए। वनस्पतियों का विशाल जगत हमें प्राकृतिक जीवनक्रम को अपनाने हेतु सतत प्रेरित व आमंत्रित करता है। आवश्यकता उनका महत्त्व समझने भर की है।

वनस्पति जगत के कई भेद हैं। एक वे जो जलावन, खाद या उपकरण बनाने के काम आती हैं। दूसरी वे जिन्हें खाकर प्राणी अपना गुजारा करते हैं। मनुष्य से लेकर पशु-पक्षी वर्ग के जीवधारी इसी श्रेणी में आते हैं। किसे पत्ती, किसे कंदमूल, किसे बीज अनुकूल पड़ते हैं, यह रुचि विशेष की बात है। यह सभी वर्ग वनस्पतियों के ही हैं। तीसरा वर्ग औषधियों का है। वे घास-पात जैसी दीखती तो हैं पर अपने विशेष गुणों के कारण रोग निवारण, आरोग्यवर्द्धन एवं परिशोधन के

Free Read/Download & Order 3000+ books authored by Yugrishi Pt. Shriram Sharma Acharya(Founder of All World Gayatri Pariwar) on all aspects of life in Hindi, Gujarati, English, Marathi & other languages at
www.vicharkrantibooks.org http://literature.awgp.org

काम आती हैं। चिकित्सा जगत में इन्हीं की प्रमुखता है। यों उसमें खनिज एवं विषों का रूपांतरण भी सम्मिलित हो गया है, किंतु बाहुल्य चिकित्सा क्षेत्र में वनस्पतियों का ही है। उन्हीं को चूर्ण, सत्व, गोली, अवलेह, अर्क, आसव आदि के रूप में एकाकी अथवा सम्मिश्रणों के साथ प्रयोग किया जाता है। आयुर्वेद से लेकर एलोपैथी तक की अनेकों चिकित्सा पद्धति के उपचार प्रयोजन में वनौषधियों के ही विभिन्न रूपांतरण प्रयुक्त होते हैं। यह वनस्पति का औषधि पक्ष है। इनके अनुसंधान एवं प्रयोग-परीक्षण में चिरकाल से मानवी प्रयत्न संलग्न रहे हैं। अभी भी वह उपक्रम चल ही रहा है। विधाता द्वारा मनुष्यों को दिए गए अनेकानेक उपहारों में वनौषधियों को भी एक ऐसा वरदान कहा जा सकता है, जिसने शारीरिक व्याधियों और मानसिक आधियों के निवारण में देवताओं जैसे अनुग्रह प्रस्तुत किए हैं।

इसी मान्यता के कारण अध्यात्म ग्रंथों में पौधों को देव समान मानकर उनकी पूजा अभ्यर्थना करने का स्वरूप बताया गया है। पौधों को मध्य योनि प्राप्त देवपुरुष कहा गया है। उपनिषद्कार लिखता है—

यो देवो अग्नो यो अप्सु यो विश्वभुवनमाविवेश।
य ओषधीषु यो वनस्पतिषु तस्मै देवाय नमो नमः॥

—*श्वेताश्वतरोपनिषद् २/१७*

जो परमात्मा अग्नि में है, जल में है, समस्त लोकों में समाविष्ट है, जो औषधियों में है, सभी वनस्पतियों में है, उस परमात्मा को नमस्कार है।

आहार एवं औषधि प्रयोजनों के लिए प्रयुक्त होने वाली वनस्पतियाँ अपने आप में पूर्ण हैं, उनमें से प्रत्येक की संरचना अनेक योगिकों, क्षारों, रसायनों, खनिजों के सम्मिश्रण से हुई है। इसलिए उनमें से प्रत्येक को परिपूर्ण कह सकते हैं। मनुष्य अपने में पूर्ण है। उसके लिए

Free Read/Download & Order 3000+ books authored by Yugrishi Pt. Shriram Sharma Acharya(Founder of All World Gayatri Pariwar) on all aspects of life in Hindi, Gujarati, English, Marathi & other languages at
www.vicharkrantibooks.org http://literature.awgp.org

आवश्यक सभी तत्त्व एक ही काय कलेवर में विद्यमान हैं। रक्त, मांस, अस्थि, मज्जा, वसा, त्वचा, तंतु पाचक द्रव्य आदि को एक ही गुलदस्ते में इस प्रकार सँजोया-सजाया गया है कि उसे अपनी समस्त गतिविधियाँ उतने से ही पूर्ण कर लेने में सुविधा रहे। यह बात वनस्पतियों के संबंध में भी है। पत्तियों, फूलों, फलों, कंदों के रूप में उनका उपयोग होता है। खोजने पर प्रतीत होता है कि उनमें से प्रत्येक में अनेकानेक रासायनिक घटकों का समावेश है। फलतः वे जिस शरीर में प्रवेश करती हैं, वहाँ की सभी आवश्यकताओं को भली प्रकार पूरा कर देती हैं।

ऐसा नहीं होता कि आहार में अनेकानेक वनस्पतियों का सम्मिश्रण करने के उपरांत एक पूर्ण आहार बने। प्राणियों की आदतों पर दृष्टिपात करने से प्रतीत होता है कि वे जिस वनस्पति वर्ग पर निर्भर हैं, उतने से ही अपना काम चला लेते हैं। अनेक सम्मिश्रणों की फिराक में नहीं फिरते। गाय, घोड़ा वर्ग के प्राणी घास पसंद करते हैं; तो ऊँट, बकरी जैसे पशु पत्तों के सहारे निर्वाह करते हैं। बंदर को फल पसंद हैं, तो चिड़ियों को बीज अच्छे लगते हैं। इनमें हर एक को कई वनस्पतियों की तो छूट है कि वे एक न मिलने पर दूसरे के सहारे काम चला सकें, पर ऐसा नहीं होता कि कोई जब भी कुछ खाए तो कई-कई को खोजकर इनकी चटनी बनाए, तब कहीं उन्हें गले उतारे।

इन दिनों आहार से लेकर चिकित्सा क्षेत्र तक में यह भ्रांति बुरी तरह घुस पड़ी है कि आहार या औषधियों में अनेक पदार्थों का सम्मिश्रण करने पर ही वे उपयोगी बनती हैं। वास्तविकता यह है कि इससे पाचनतंत्र को असाधारण कठिनाई उठानी पड़ती है और बहुत परिश्रम करने के उपरांत भी उपलब्धि न्यून मात्रा में हाथ लगती है। इस मान्यता के पीछे यह भ्रम जंजाल जुड़ा प्रतीत होता है कि जो खाया

Free Read/Download & Order 3000+ books authored by Yugrishi Pt. Shriram Sharma Acharya(Founder of All World Gayatri Pariwar) on all aspects of life in Hindi, Gujarati, English, Marathi & other languages at
www.vicharkrantibooks.org http://literature.awgp.org

जाता है, वह उसी रूप में शरीर में घुस पड़ता है। इस संदर्भ में न जाने यह तथ्य क्यों भुला दिया गया है कि मुँह से लेकर पेट में भ्रमण करने के उपरांत बाहर निकलने तक की प्रक्रिया इतनी आश्चर्यजनक तथा महत्त्वपूर्ण है कि खाए पदार्थ की प्रकृति और क्षमता में जमीन-आसमान जितना अंतर उत्पन्न हो जाता है। अनाज से रक्त उत्पन्न करके कोई नहीं दिखा सकता। यह जादुई कमाल पेट के पाचक रसों का है। वे सामान्य वनस्पतियों से भी जिसकी जरूरत है उसे अपने ढाँचे में ढालकर सहज ही अपना काम चला सकते हैं। आहार और चिकित्सा क्षेत्रों की यह भ्रांति ही है कि वे जो खाएँगे उसी प्रकार के तत्त्व शरीर को उसी रूप में मिल जाएँगे। यदि ऐसा होता तो जिगर, गुरदे, फेफड़े, आँख आदि के कमजोर पड़ने पर उन्हीं अवयवों को खिलाकर दुर्बलों, रोगियों की आवश्यकता पूरी कर ली जाया करती।

एक निशाने पर एक साथ अनेक व्यक्ति तीर चलाएँ, तो यह पता नहीं चलता कि किसका निशाना ठीक रहा, किसका गलत? कौन योग्य है, कौन अयोग्य? जाँच-पड़ताल के लिए भी सभी को अलग-अलग अवसर देना चाहिए। आहार उपचार के संबंध में यही नीति अधिक उपयुक्त है कि सम्मिश्रणों की अवहेलना की जाए और उनका प्राकृतिक रूप में अनिवार्य होने पर ही न्यूनतम उपयोग किया जाए। औषधियों में अनेक वस्तुएँ मिला देने पर यह पता नहीं चलता कि उनमें से किसने, क्या गुण दिखाए? सर्वविदित है कि सम्मिश्रण के उपरांत मूल पदार्थ के गुण यथावत नहीं बने रहेंगे और अपने गुणों के अनुसार इस-उस तरह के अलग-अलग लाभ देते रहेंगे। वरन यह सोचना चाहिए कि इस सम्मिश्रण का एक अतिरिक्त प्रकार का प्रभाव उत्पन्न होगा जो इन पदार्थों में से किसी से मिलता-जुलता न हो और अपनी प्रतिक्रिया सर्वथा भिन्न प्रकार की करता रहे। यदि ऐसी योजना बनानी

Free Read/Download & Order 3000+ books authored by Yugrishi Pt. Shriram Sharma Acharya(Founder of All World Gayatri Pariwar) on all aspects of life in Hindi, Gujarati, English, Marathi & other languages at
www.vicharkrantibooks.org http://literature.awgp.org

हो तो यह भुला दिया जाना चाहिए कि जिनका सम्मिश्रण किया जा रहा है, वे अपने मौलिक गुण बनाए रहेंगे। वरन यह सोचना चाहिए कि उस मिश्रण के फलस्वरूप एक नए प्रकार का नया प्रभाव उत्पन्न होगा। यदि इस आधार पर कोई निष्कर्ष निकाला जाए, निर्धारण किया जाए तो ही उसकी कुछ उपयोगिता समझी जा सकती है। पर ऐसा होता नहीं सम्मिश्रण के उपरांत पदार्थ के भी अपने-अपने गुण बने रहते हैं। इस भ्रांति ने आहार तथा औषधि क्षेत्र का आधार ही गड़बड़ा दिया है।

इस संदर्भ में नए सिरे से विचार करने की आवश्यकता है। यदि सम्मिश्रण सिद्धांत अपनाना हो तो फिर मूल तत्त्वों पर ध्यान न देकर सम्मिश्रण प्रतिक्रिया भर को महत्त्व देना होगा। यदि मूल पदार्थ की गरिमा को प्रमुखता दी जाए तो फिर उस अकेले को ही अपना काम करने, परिणाम उत्पन्न करने का अवसर देना चाहिए। आधा मोर आधा बंदर मिला देने से तो कोई विचित्र प्राणी बन जाएगा। उसमें न मोर के गुण रहेंगे और न बंदर के। गुड़-गोबर होने की उक्ति प्रख्यात है। गोबर अपनी जगह उपयोगी है और गुड़ का अपना महत्त्व है। मिला देने पर तीसरा पदार्थ न खाने लायक रहेगा, न लीपने-उपले बनाने लायक।

यही है एकौषधि से सभी रोगों की चिकित्सा का तत्त्वदर्शन। उस औषधि के अन्यान्य गुण लाभकारी नहीं हैं ऐसी बात नहीं। पर यदि वह एक संस्थान विशेष पर उपयोगी है तो उसे अपने प्राकृतिक स्वरूप में ही क्यों न दिया जाए। क्यों उसका सम्मिश्रण करके शरीर के लिए असमंजस की स्थिति उत्पन्न की जाए। आयुर्वेद में तो धातुओं, खनिजों, रसायनों के प्रयोगों की भी चर्चा है, उन्हें न दिया जाए, वे हानिकारक हैं, यहाँ यह नहीं कहा जा रहा है। वरन काष्ठ औषधियाँ, प्रकृति से जिस स्थिति में प्राप्त होती हैं, उसी रूप में प्रयुक्त करने की आवश्यकता, महत्ता बताई जा रही है। यों तो शल्य, शालाक्य, काय चिकित्सा, भूत

Free Read/Download & Order 3000+ books authored by Yugrishi Pt. Shriram Sharma Acharya(Founder of All World Gayatri Pariwar) on all aspects of life in Hindi, Gujarati, English, Marathi & other languages at
www.vicharkrantibooks.org http://literature.awgp.org

विद्या, कौमार भृत्य, अगद, रसायन और वाजीकरण आयुर्वेद इन आठ तंत्रों में विभक्त है। परंतु यह स्वयं जिस मूलवेद, अथर्ववेद का उपांग है, उनमें वर्णन है कि किस प्रकार मात्र वनौषधियों से मनुष्य व पशु वर्ग की चिकित्सा आर्षकालीन वैज्ञानिक कर लेते थे। कण्व ऋषि को अंधत्व से, निषध पुत्र को बधिरता से विमुक्त करने, अति वृद्ध कंकालसार च्यवन ऋषि को कायाकल्प द्वारा नवजीवन देने में इन औषधियों को किस प्रकार प्रयुक्त किया जाता था, इसका वर्णन इन ग्रंथों में मिलता है। आर्ष चिकित्सा विद्या की यह विशेषता है कि उसने स्वतंत्र रूप से काष्ठादिक और धातुज औषधियों की उन्नति की है। हमारा उद्देश्य यहाँ काष्ठ औषधियों के एक औषधि अनुपान सहित प्रयोग द्वारा रोग निवारण है। यह पद्धति पूर्णतः शास्त्रोक्त है एवं सफल सिद्ध चिर-पुरातन चिकित्सा प्रणाली है जो समय के साथ दुर्योगवश लोप हो गई।

शास्त्रोक्त एकौषधि पद्धति को अब नए सिरे से पुनर्जीवन देना होगा। आयुर्वेद के कर्णधारों ने आरंभ में एक रोग में, एक समय में, एक ही जड़ी-बूटी देने का निर्धारण किया था। सम्मिश्रणों की बात तो बहुत बाद में सूझी और बुद्धिमत्ता की ख्याति पाने के लिए लालायित लोगों द्वारा बाद में चलाई गई। संभव है कि उसमें संपन्न लोगों को अनोखेपन से प्रभावित करके चतुर कहलाने एवं धन को कमाने की बात सोची गई हो। यह भी हो सकता है कि भ्रांतिग्रस्त ईमानदारी भी इस निर्धारण में सहायक रही हो। जो हो हमें भ्रम-जंजाल का इतिहास और कारण खोजने की अपेक्षा तथ्यों को खोज निकालने पर अपना ध्यान केंद्रित करना चाहिए। समय आ गया है कि चिकित्सा क्षेत्र में एकौषधि प्रयोग को नवजीवन प्रदान किया जाए। उसकी प्रामाणिकता एवं उपयोगिता सिद्ध करने में कुछ उठा न रखा जाए।

Free Read/Download & Order 3000+ books authored by Yugrishi Pt. Shriram Sharma Acharya(Founder of All World Gayatri Pariwar) on all aspects of life in Hindi, Gujarati, English, Marathi & other languages at
www.vicharkrantibooks.org http://literature.awgp.org

जड़ी-बूटियों की संख्या अगणित है। इतने पर भी गुण-धर्म के हिसाब से उनके वर्ग अत्यधिक नहीं हैं। शुभारंभ की दृष्टि से यही सुविधाजनक पड़ेगा कि जो औषधियाँ सर्वत्र उगती हैं, सुविधापूर्वक कहीं भी मिलती हैं, उनमें से एक सीमित संख्या में इस प्रकार चुनाव किया जाए कि उसमें रोग-निवारण के लिए आवश्यक सभी वर्गों का प्रतिनिधित्व हो सके।

इस दिशा में ब्रह्मवर्चस शोध संस्थान द्वारा इन्हीं दिनों ऐसा कदम उठाया गया है, जिसके दूरगामी परिणाम होंगे। यज्ञोपैथी के आविष्कार प्रयोजन के लिए शांतिकुंज, गायत्रीकुंज में दुर्लभ जड़ी-बूटियों का उद्यान लगाया गया है। शोध के लिए सही तौर पर ताजी औषधियों से ही काम चलता है। पंसारियों की दुकानों में वर्षों पुरानी सड़ी-गली, गुणहीन वस्तुओं से वह प्रतिफल उत्पन्न नहीं हो सकता, जिसकी महिमा बताई और आशा लगाई जाती है। अपने यहाँ से ही जीवंत औषधियाँ लेकर उन्हें यज्ञ शोध में प्रयुक्त करने की दृष्टि से अपना उद्यान लगाना आवश्यक था, वह लगाया भी गया है और पनप तथा बढ़ भी रहा है।

अब नया कदम यह उठ रहा है कि सामान्य औषधि उपचार में उपयोगी विभिन्न गुणधर्म वाले वर्गों का प्रतिनिधित्व करने वाली जड़ी-बूटियाँ चुनी जाएँ। उनके संबंध में शास्त्रकार एवं पाश्चात्य शोधकर्त्ता क्या अभिमत विवेचन प्रस्तुत करते रहे हैं, इसका संग्रह किया गया है। साथ ही निजी प्रयोग-अनुसंधान को उसमें सम्मिलित करके ऐसे निष्कर्ष पर पहुँचने का प्रयत्न किया गया है कि औषधियों के इस छोटे से समुदाय से ही कठिन रोगों की सरल चिकित्सा संभव हो सके।

Free Read/Download & Order 3000+ books authored by Yugrishi Pt. Shriram Sharma Acharya(Founder of All World Gayatri Pariwar) on all aspects of life in Hindi, Gujarati, English, Marathi & other languages at
www.vicharkrantibooks.org http://literature.awgp.org

तुलसी के संबंध में पुरातन मान्यता यह है कि उस अकेली को ही अनुपान भेद से प्रयुक्त करते रहने पर समस्त रोगों की चिकित्सा हो सकती है, इस संदर्भ में एक पुस्तक भी छपी हुई है। उसका प्रयोग भी होता रहा है और उत्साहवर्द्धक प्रतिफल भी मिलता रहा है। इसी प्रकार गिलोय, असगंध जैसी औषधियों के संबंध में भी बहुत रोगों में प्रयुक्त होने वाली बात बहुचर्चित है। मसालों में से अधिकांश ऐसे हैं, जिन्हें औषधि रूप में प्रयुक्त किया जा सकता है। हलदी, जीरा, धनिया, लौंग, सोंठ आदि के गुण इसी प्रकार हैं।

होम्योपैथी में एक औषधि एक मूल द्रव्य से बनती है। बायोकैमिक नमक भी इसी आधार पर बनते हैं। डीशेन की दवाएँ घोंटी तो बहुत जाती हैं, पर बनती एक औषधि से ही हैं। यही नीति वनौषधियों के संबंध में अपनाई जानी चाहिए। इसके लिए प्राथमिक चुनाव कर भी लिया गया है। रोग-निवारण व स्वास्थ्य संवर्द्धन हेतु बीस एवं परिशिष्ट में पाँच जो औषधियाँ चुनी गई हैं, उनके नाम इस प्रकार हैं—

मुलैठी, आँवला, हरड़, बिल्व, अर्जुन, पुनर्नवा, अडूसा, भारंगी, शंखपुष्पी, ब्राह्मी, निर्गुंडी, सोंठ, नीम, सारिवा, अशोक, गोक्षुर, चिरायता, गिलोय, शतावर, असगंध।

इनके अतिरिक्त 'तुलसी' को अपवाद रूप में अलग से एक ही औषधि से अनेक रोगों की चिकित्सा के रूप में लिया गया है। परिशिष्ट में मात्र स्थानीय उपयोग के लिए हरिद्रा, घृत कुमारी, अपामार्ग, लहसुन, नीम को स्थान दिया गया है।

इन्हें किस रोग में किस प्रकार दिया जाए, इसका स्वरूप निर्धारण यहाँ प्रस्तुत है। इस निर्धारण में शास्त्रीय अभिमत, अन्वेषणकर्त्ताओं के वैज्ञानिक निष्कर्ष एवं अपने निजी प्रयोगों में भूल पड़ने पर लाभ में

Free Read/Download & Order 3000+ books authored by Yugrishi Pt. Shriram Sharma Acharya(Founder of All World Gayatri Pariwar) on all aspects of life in Hindi, Gujarati, English, Marathi & other languages at
www.vicharkrantibooks.org http://literature.awgp.org

कमी तो पड़ सकती है, पर उसमें कोई तत्त्व ऐसा नहीं है जो विपरीत प्रतिक्रिया उत्पन्न करे, हानि पहुँचाए।

इस प्रयोग को व्यापक बनाने, लोक प्रचलन में सम्मिलित करने की दृष्टि से यह निश्चय किया गया है कि जहाँ भी प्रज्ञा संस्थान बने हैं, वहाँ उनको उगाने का प्रबंध किया जाए। सभी से कहा जाए कि वे आस-पास थोड़ी जमीन का प्रबंध करें और उन्हें अपने क्षेत्र में उगाने के लिए पौधा नर्सरी की तरह एक छोटा उद्यान उसी प्रकार लगाएँ जैसा कि बड़े रूप में शांतिकुंज गायत्री नगर में ब्रह्मवर्चस शोध संस्थान द्वारा लगाया, बढ़ाया गया है।

ईसाई चर्चों में डिस्पेंसरी होती है। उसका दुहरा उपयोग होता है। पीड़ितों की सेवा के अतिरिक्त लोक सहानुभूति अर्जित करने और उस आधार पर धर्म प्रचार के लिए क्षेत्र बनाने की दुहरी सफलता मिलती है। प्राचीनकाल के बौद्ध बिहारों में भी ऐसी ही व्यवस्था थी। जिन दिनों देवालय जनजाग्रति के केंद्र थे, उन दिनों वहाँ शिक्षा के अतिरिक्त चिकित्सा के लिए भी प्रावधान था। पुरोहितों को कर्मकांडी ही नहीं, शिक्षक एवं चिकित्सक की योग्यता भी प्राप्त करनी पड़ती थी। प्रज्ञा संस्थानों में यही नीति अपनाई जानी चाहिए। अस्पतालों का, औषधालयों का व्यय-भार उठा सकना तो हर जगह संभव नहीं हो सकता, किंतु जड़ी-बूटी उगाने और उनके द्वारा निःशुल्क चिकित्सा का पुण्य लाभ सफलतापूर्वक संपन्न किया जा सकता है।

उपरोक्त औषधियों के गुण, धर्म, रोगों के लक्षण व उनका प्रारंभिक उपचार किस प्रकार किया जाए? इस संबंध में इस पुस्तक में संक्षिप्त विवेचन है। आवश्यकता पड़ने पर आगे इसे और विस्तार से प्रकाशित किया जा सके, यह प्रावधान भी रखा गया है। साथ ही यह

Free Read/Download & Order 3000+ books authored by Yugrishi Pt. Shriram Sharma Acharya(Founder of All World Gayatri Pariwar) on all aspects of life in Hindi, Gujarati, English, Marathi & other languages at
www.vicharkrantibooks.org http://literature.awgp.org

प्रबंध भी किया गया है कि इन औषधियों को अपने प्राकृतिक या सूखे रूप में शांतिकुंज से उतने ही मूल्य पर प्राप्त किया जा सके, जितनी कि यहाँ पर लागत आती है। इस प्रकार हर प्रज्ञा संस्थान में दस-बीस रुपए मासिक से या और भी कम बजट में ऐसा औषधालय चल सकता है, जिसमें बीसों मरीज प्रतिदिन लाभ प्राप्त करते रह सकें। इसमें सेवाधर्म का पुण्य-लाभ प्राप्त करने के लिए सहानुभूति अर्जित करने और प्रज्ञा अभियान के लिए वातावरण बनाने का दुहरा लाभ है। इन्हें कैसे दिया जाए, कौन इसके लिए सूचित अधिकारी है, इसके लिए एक-एक माह के सृजन शिल्पी सत्रों में इस चिकित्सा प्रशिक्षण की व्यवस्था की गई है। प्राकृतिक स्वरूप में व चित्रों के माध्यम से प्रशिक्षार्थी इन औषधियों को पहचान भी सकें, उसका पूरा प्रबंध गायत्री तीर्थ में किया गया है।



धर्म एव हतो हन्ति धर्मो रक्षति रक्षितः।
तस्माद्धर्मं न त्यजामि मा नो धर्मो हतोऽवधीत्॥

यदि धर्म का निरादर करोगे तो धर्म ही नष्ट कर देता है, मार देता है और धर्म की रक्षा करने से वह धर्म ही हमारी रक्षा करता है, इसलिए धर्म को कभी नहीं छोड़ना चाहिए। धर्म को कभी मरा न समझो, किंतु सर्वदा धर्म का पालन करके उसकी रक्षा करनी चाहिए।

—महा० वन० ३१३/१२८

Free Read/Download & Order 3000+ books authored by Yugrishi Pt. Shriram Sharma Acharya(Founder of All World Gayatri Pariwar) on all aspects of life in Hindi, Gujarati, English, Marathi & other languages at
www.vicharkrantibooks.org http://literature.awgp.org

वनौषधियों की उपादेयता वर्तमान परिप्रेक्ष्य में

किसी भी औषधि का लाभ पहुँचाना या हानिकारक होना इस तथ्य पर निर्भर करता है कि उसकी पहुँच कितनी गहरी है। रसायन नाभिक प्रधान पाश्चात्य औषधियों व प्रकृति से प्राप्त वनस्पतियों की जब तुलना की जाती है तो इसी तथ्य को ध्यान में रखना पड़ता है। यदि किसी काँटे को शरीर के अंग से बाहर निकालना हो तो सुई जैसा छोटा, नुकीला औजार अधिक कारगर सिद्ध होता है। यदि तलवार, बल्लम, बरमे या सुई की मदद ली गई होती तो यह प्रयास हानिकारक ही सिद्ध होता। आस-पास के अंग भी क्षतिग्रस्त होते, भले ही काँटे को निकाल पाने में सफलता मिलती।

पाश्चात्य औषधियाँ संश्लेषण के आधार पर बनी होती हैं। शरीर की व्याधियों के उपचार हेतु जब उन्हें प्रयुक्त किया जाता है तो यह मानकर चलना चाहिए कि सूक्ष्म विकारों के उन्मूलन कार्य में तलवार की ही भूमिका निभाएँगी। सूक्ष्म औषधियाँ जहाँ बिना आस-पास के ऊतकों को हानि पहुँचाए ही व्याधिकारक प्रक्रिया से सीधे मोर्चा लेती हैं, वहीं स्थूल औषधियाँ स्वस्थ ऊतकों को भी बड़े परिमाण में हानि पहुँचाए बिना नहीं रहतीं।

रोग के कारण व उपचार के विवेचन में ही इस मूलभूत अंतर को समझ लेना अत्यंत आवश्यक है। मात्र लक्षणों के ही आधार पर शमन की प्रक्रिया न अपनाकर मूल विकार को जड़ से उखाड़ फेंक दिया जाए, यह पवित्र उद्देश्य लेकर चला जाए तो यह प्रयोजन पूरा होता है, जिसके लिए चिकित्सा विज्ञान की उत्पत्ति व वनौषधि का विधान प्रकृति जगत में विधाता द्वारा किया गया है। एकौषधि चिकित्सा में

Free Read/Download & Order 3000+ books authored by Yugrishi Pt. Shriram Sharma Acharya(Founder of All World Gayatri Pariwar) on all aspects of life in Hindi, Gujarati, English, Marathi & other languages at
www.vicharkrantibooks.org http://literature.awgp.org

जड़ी-बूटी के सूक्ष्मीकरण स्वरूप के शरीर में प्रविष्ट होने पर यह मानकर चला जाता है कि एक निरापद उपचार-प्रक्रिया पूरी की जा रही है।

स्वस्थ एवं व्याधिग्रस्त जीवकोश परस्पर गुँथे होते हैं। सूक्ष्मदर्शी यंत्र से देखने पर ज्ञात होता है कि इन्हें किसी स्थूल प्रक्रिया से अलग नहीं किया जा सकता। एंटीबायोटिक दवाएँ फफूँद उत्सर्जित तीव्र रसायन हैं। ये जब शरीर में पहुँचती हैं तो बड़ी तेजी से प्रतिक्रिया करती हैं। जहाँ ये रोग के जीवाणुओं को मारती हैं, वहीं लाभकारी सहजीवी जीवाणुओं का भी कत्लेआम करती हैं। रसायन यह अंतर थोड़े ही कर पाता है कि मुझे स्वस्थ को चोट पहुँचानी है या अस्वस्थ को। जीवाणु जिस स्थान में बैठे होते हैं वह तथा आस-पास का सारा क्षेत्र क्षतिग्रस्त हो जाता है। इसी प्रकार मिरगी दौरों को दबाने वाली संश्लेषित बार्बिचुरेट्स दवाएँ जब भी दी जाती हैं, वे विद्युत्सक्रिय स्नायु कोशों को ही नहीं, सारे मस्तिष्कीय क्रिया-कलापों पर अवसादक प्रभाव डालती हैं। रोगी 'डल' सुस्त सा अपनी क्षमताएँ समाप्त होते अनुभव करता है।

यह तो हुई स्थूल दृष्टि से मुँह से या इंजेक्शन द्वारा दी गई स्थूल औषधियों की चर्चा। सूक्ष्मीकृत औषधियाँ मात्र रोग से लड़ती हैं, रोगी से नहीं। जड़ी-बूटियाँ इसी प्रकार उचित मात्रा में उचित विधि से अनुपान भेद द्वारा सेवन कराई जाती हैं। इनके अवांछनीय परिणाम नहीं होते। इस तथ्य की वैज्ञानिकता असंदिग्ध है। यदि जड़ी-बूटी की तुलना संश्लेषित रसायन औषधि से की जाए तो ज्ञात होता है कि रासायनिक दृष्टि से जहाँ प्राकृतिक औषधि में सक्रिय औषधि की मात्रा एक दसवें भाग से भी कम है, वहाँ रसायन औषधियाँ अंदर से बाहर तक ऐसे सक्रिय तत्त्वों से निर्मित हैं, जिनका जर्रा-जर्रा घातक तेज क्रिया हेतु कृत संकल्प है।

Free Read/Download & Order 3000+ books authored by Yugrishi Pt. Shriram Sharma Acharya(Founder of All World Gayatri Pariwar) on all aspects of life in Hindi, Gujarati, English, Marathi & other languages at
www.vicharkrantibooks.org http://literature.awgp.org

प्राकृतिक स्रोतों से प्राप्त जड़ी-बूटियों में जल, फाईबर, स्टार्च आदि उनके ९९ प्रतिशत से भी अधिक भाग का निर्माण करते हैं। जो भी सक्रिय तत्त्व इस वनौषधि में हैं, उनके संभावित दुष्परिणामों को रोकने वाले घटक भी रेजिन्स, पेप्टाइड एवं रेशे के रूप में उसी में विद्यमान होते हैं। पर यदि दूरदर्शिता को एक ओर रखकर एक्टिव इनग्रेडीएंट उस वनौषधि के सक्रिय रसायन तत्त्व मात्र को अलग कर उसकी रचना जानकर उसे संश्लेषित कर रोगी को दिया जाए तो वह बाधित कम, तीव्र घातक दुष्परिणाम अधिक उत्पन्न करेगा। यह स्थिति अनुपान भेद द्वारा ताजी तोड़कर रोगी को दी गई अथवा सूखी पिसी औषधियों में नहीं उत्पन्न होती।

सर्पगंधा औषधि का उदाहरण उपरोक्त तथ्य को और अधिक स्पष्ट करता है। 'शवोल्फिया सर्पेंटीना' नामक यह औषधि आयुर्वेद में चिरपुरातन काल में मानसिक रोगों व रक्त भाराधिक्य में प्रचलित है। इसके २० एल्केलाइड्स (क्षारभ) रासायनिक प्रक्रिया द्वारा अलग किए जा चुके हैं व उन्हें कृत्रिम निर्माण विधि द्वारा संश्लेषित भी किया जा चुका है। यदि इसके एक ही एल्केलाइड 'रिसर्पीन' को रोगी को दिया जाए तो वह रक्तचाप में कमी लाता है व आज रक्तचाप की बहुप्रचलित औषधि भी है। पर इसके दुष्प्रभाव इतने हैं कि कोई गिनती नहीं। मानसिक बेचैनी, तनाव, आत्महत्या की प्रवृत्ति, नाक में तीव्र खराश, खून बहना जैसे कई दुष्प्रभाव ८० प्रतिशत से अधिक रोगियों में होते हैं। यदि वही सर्पगंधा पौधे के रूप में दिया जाए तो उलटे मानस रोग की अचूक औषधि बन जाता है। उन्माद में विशेष लाभदायक सिद्ध होता है। सर्पगंधा की जड़ जो बहुत कड़वी होती है। यदि बिना वमन किए खाई जा सके तो उसमें रिसर्पीन की मात्रा इतनी अधिक कम पर इतनी सूक्ष्म होगी कि उसके रक्तचाप पर वांछित परिणाम ही

Free Read/Download & Order 3000+ books authored by Yugrishi Pt. Shriram Sharma Acharya(Founder of All World Gayatri Pariwar) on all aspects of life in Hindi, Gujarati, English, Marathi & other languages at
www.vicharkrantibooks.org http://literature.awgp.org

मिलेंगे। धीरे-धीरे बढ़ा हुआ रक्त भार नियंत्रण में आ जाएगा। वह मात्रा की दृष्टि से रक्त में इतनी नहीं पहुँचेगी कि रोगी अवसादग्रस्त हो जाए या आत्महत्या कर ले, जैसा कि रिसर्पीन या सर्पीना दवा को लेने पर होता है।

प्राकृतिक रूप में प्राप्त पौधों में प्रभावी रसायनों की मात्रा गोली, इंजेक्शन आदि की तुलना में कम, पर सूक्ष्म होती है। वह कभी दुष्परिणाम उत्पन्न कर ही नहीं सकती। वह मात्रा सुई की तरह काँटे को निकालती है, अन्य ऊतकों को क्षुब्ध नहीं करती। यही कारण है कि अब धीरे-धीरे औषधि रूप में प्राकृतिक स्रोतों से प्राप्त जड़ी-बूटियों का महत्त्व जनसाधारण की समझ में आने लगा है। जीवनी-शक्ति संवर्द्धन एवं रोगों के मूल कारण का निवारण, यह द्विविध प्रक्रिया प्राकृतिक औषधि उपचार से भलीभाँति संपन्न होती देखी जाती है। ये प्रयोग किस सीमा तक वैज्ञानिक हैं, इसका एक और विलक्षण उदाहरण एक छोटी सी दैनिक प्रयोग में आने वाली प्राकृतिक औषधि हरिद्रा (हलदी) है।

जब शरीर में कहीं भी चोट लगती है तो अनेकानेक प्रतिक्रियाएँ होती हैं। चोट के स्थान पर सूजन के अतिरिक्त पूरे संस्थान में एक 'स्ट्रेस इफेक्ट' के कारण रक्त में 'कैटेकालअमीन' नामक हारमोन्स का स्तर बढ़ जाता है। इसके प्रभाव से जहाँ रक्त नलिकाएँ सिकुड़ती हैं वहाँ दूसरी ओर रक्त शर्करा का स्तर भी बढ़ जाता है। मन बेचैन और उत्तेजित हो जाता है। उसका कारण भी ये हारमोन्स ही हैं। यह बेचैनी रक्त में शक्कर को और बढ़ा देती है, जो घाव के भरने में बाधक है, साथ ही रोगाणु की फसल लहलहाने के लिए उर्वर भूमि भी। जहाँ त्वचा भंग हुई, वहाँ रोगाणुओं का संक्रमण हुआ। ये सारी व्यवस्थाएँ शरीर संस्थान की प्रतिक्रिया के कारण हुईं। अब यदि इस चोट, सूजन, संक्रमण, बेचैनी का

Free Read/Download & Order 3000+ books authored by Yugrishi Pt. Shriram Sharma Acharya(Founder of All World Gayatri Pariwar) on all aspects of life in Hindi, Gujarati, English, Marathi & other languages at
www.vicharkrantibooks.org http://literature.awgp.org

उपचार खोजना हो तो दो मार्ग सामने हैं। एक प्राकृतिक स्रोतों से प्राप्त जड़ी-बूटियाँ, दूसरे आधुनिक संश्लेषित औषधियाँ। पहले प्राकृतिक स्रोतों से प्राप्त औषधि हलदी पर विचार किया जाए।

हलदी को चोट के स्थान पर लगाने का चिरपुरातन घरेलू स्वरूप सुपरिचित है एवं मुँह से खिलाने का भी। वैज्ञानिक खोजें यह सिद्ध करती हैं कि हलदी में जो रसायन पाए जाते हैं वे सूजन को उतारते हैं। इसका यह प्रभाव उतना ही समर्थ-बलशाली है, जितना कि एलोपैथी की गत दशक में खोजी गई 'हाईड्रोकार्टिसोन' नामक औषधि का। हलदी के प्रायोगिक परीक्षण यह सिद्ध करते हैं कि यह रक्त में ग्लूकोज का स्तर कम करती है, ताकि प्रवेश पाए रोगाणुओं को फलने-फूलने का मौका न मिले। ग्लूकोस टॉलरेन्स के उड़ने से जीवनीशक्ति भी बढ़ती है एवं श्वेतकणों तथा सुरक्षा के लिए उत्तरदायी जीवकोशों को चोट के स्थान पर पहुँचने में कोई परेशानी नहीं होती। यही नहीं अन्य द्रव्य गुणपरक प्रभाव भी यही बताते हैं कि यह औषधि समग्र रूप से रक्तशोधक भी है।

'करक्यूमा लांबा' नाम से वैज्ञानिक जगत में प्रख्यात हलदी में १०-१२ प्रतिशत जल, ४ से १२ प्रतिशत फैटी ऑइल, ४.२ से १४ प्रतिशत इसेंसियल ऑयल, ५ से १३ प्रतिशत मिनरल्स होते हैं। इसे इसका पीला रंग करकुमिन नामक पदार्थ के कारण मिलता है। इसमें ७० प्रतिशत कार्बोहाइड्रेट तथा विटामिन 'ए' भी होता है। हलदी से निकलने वाले तेल को 'टरमेरिक ऑइल' कहते हैं। जिसमें अरजबाबायोजन तथा टरमेरिक जैसे सक्रिय पदार्थ होते हैं, जो सारी क्रियाओं के लिए उत्तरदायी होते हैं।

इन रसायनों के माध्यम से हलदी में एंटी हिस्टेमिनिक प्रभाव (एलर्जी प्रतिक्रिया का शमन) तथा पिटुचरी एड्रोजन एक्सिस को

Free Read/Download & Order 3000+ books authored by Yugrishi Pt. Shriram Sharma Acharya(Founder of All World Gayatri Pariwar) on all aspects of life in Hindi, Gujarati, English, Marathi & other languages at
www.vicharkrantibooks.org http://literature.awgp.org

प्रभावित करने वाले गुण आते हैं। हल्दी मानसिक उत्तेजना को घटाती है। उत्तेजना का कारण होता है—स्ट्रेस इफैक्ट के कारण कार्टिसॉल नामक रस का स्राव। गुरदे के ऊपर स्थित एड्रीनल ग्रंथि से उत्सर्जित इस रस को हलदी तुरंत रक्त में कम कर देती है। चोट के स्थान पर लगाई गई हरिद्रा अपने रोगाणुनाशक गुणों के कारण ग्राम पॉजिटिव एवं ग्राम निगेटिव रोगाणुओं से मोर्चा लेकर उन्हें समाप्त कर देती है। सूजन भी उतारती है तथा संक्रमण भी नहीं पनप पाता। संस्थानिक प्रभाव (मुँह से ली गई औषधि के कारण) शेष कार्य पूरा कर देता है। बलवर्द्धक होने के कारण (तेल तथा कार्बोहाइड्रेट होने के फलीभूत) यह क्षति पूर्ति में भी सहायक होती है। आयुर्वेद ग्रंथ लिखते हैं—

हरिद्रा काञ्चनी पीता निशाख्या वरवर्णिनी।
कृमिघ्ना हल्दीयोषित्प्रिया हट्टविलासिनी॥

—भाव प्रकाश

एवं

हरिद्रा तु रसे तिक्ता रुक्षौष्णा विषकुष्ठनत्।
भेदहैकण्डूव्रणान् हन्ति देहवर्ण विधायिनी॥

—धन्वंतरि निघंटु

इसी कारण इसे हरिद्रा (हरि वर्णं द्राति संबोधयति अर्थात जो काया के वर्ण को ठीक करे) कांचनी, वरवर्णिनी, गौरी, कृमिघ्ना, योषित् प्रिया, रुद्राविलासिनी जैसे काव्यात्मक नाम दिए गए हैं। स्थानीय लेप तथा मुँह से लेने के अतिरिक्त इसे धूम्र के रूप में मूर्च्छा, श्वास एवं हिक्का रोगों में भी सफलता के साथ प्रयुक्त करते हैं। कुष्ठ एवं अन्य व्रण रोगों में तो यह दी ही जाती है।

अब इसके समानांतर वे औषधियाँ देखी जाएँ, जो संश्लेषित रसायनों के रूप में पाश्चात्य चिकित्सा पद्धति में प्रयुक्त होती हैं।

Free Read/Download & Order 3000+ books authored by Yugrishi Pt. Shriram Sharma Acharya(Founder of All World Gayatri Pariwar) on all aspects of life in Hindi, Gujarati, English, Marathi & other languages at
www.vicharkrantibooks.org http://literature.awgp.org

ऐलोपैथी में सूजन-चोट की सर्व प्रचलित दवा एस्पिरीन या एसिटिल सेलिसिलिक एसिड है। यह दरद दूर करने में प्रभावशाली भूमिका निभाती है, पर इसके अलावा उनका कोई और योग नहीं है। सेलिसिलेट्स ग्लूकोस को घटने के स्थान पर बढ़ाते हैं, मानसिक उत्तेजना में वृद्धि करते हैं तथा पेट की श्लेष्मा में सूजन लाते हैं। व्रण तक उत्पन्न कर आमाशय से रक्तस्राव भी बढ़ा सकते हैं। यह रसायन न तो बलवर्द्धक हैं, न रोगाणुनाशक। यह बात और है कि यह कृत्रिम संश्लेषित रसायन, स्पायरिया वृक्ष के फूलों के रस से प्राप्त सेलसिन नामक रसायन के न्यूक्लियस की रचना से मिलता हुआ बनाया गया था। कारण था सेलिसिन में उन सब गुणों का होना जो सूजन उतारने के लिए आवश्यक हैं, पर चूँकि उसे विशुद्ध रसायन के रूप में दिया जाने लगा तो वे प्रभाव जाते रहे जो समग्र औषधि में थे।

अन्य सूजन उतारने वाली औषधियाँ (एंटी इन्फ्लेमेटरी) हैं— फिनाइल ब्यूटाजोन, ऑक्सीफेन ब्युटाजोन, इण्डोमेथेसीन, स्टेराइड्स इत्यादि। रसायन मात्र को ही लक्ष्य मानकर दी जाने वाली ये औषधियाँ किसी भी रूप में वनौषधियों की तुलना में नहीं ठहर पातीं। उलटे इनके तेज प्रभाव से ऐसे-ऐसे दुष्परिणाम देखे जाते हैं कि कोई भी व्यक्ति एक बार उन्हें प्रत्यक्ष किसी के शरीर में घटते देख इन्हें लेने का विचार भी मन में नहीं ला सकता। वनौषधि चिकित्सा समग्र इसलिए ठहरती है कि वह एक पूरे जैविक संस्थान की चिकित्सा को अपना उद्देश्य मानकर चलती है।

रोगों का होना एक अस्वाभाविक स्थिति है। ऐसे में उस प्रक्रिया को कृत्रिम रसायन और विकृत कर देते हैं, जबकि होना यह चाहिए कि क्षतिपूर्ति अपने सहज प्राकृतिक रूप में की जाए एवं वह अपने आप में समग्र हो। आधुनिक दवाओं की तुलना में इसीलिए जड़ी-

Free Read/Download & Order 3000+ books authored by Yugrishi Pt. Shriram Sharma Acharya(Founder of All World Gayatri Pariwar) on all aspects of life in Hindi, Gujarati, English, Marathi & other languages at
www.vicharkrantibooks.org http://literature.awgp.org

बूटियों की उपयोगिता और भी बढ़ जाती है। वे सर्वसुलभ हैं, समर्थ हैं, हर कोई उन्हें उपयोग कर सकता है, हानिरहित हैं। थोड़ी-थोड़ी मात्रा में होते रहने वाले इन वनौषधियों के प्रभाव एकदूसरे का समर्थन ही करते हैं (पोटेएशन), काट नहीं। यह दोष एलोपैथिक औषधियों में देखने को मिलता है। इसे 'ड्रग इन्टरएक्शन' कहा जाता है। यह प्रतिक्रिया जड़ी-बूटियों में न होने का एक अन्य कारण यह भी है कि कोई भी सक्रिय प्रमुख तत्त्व (एक्टिवप्रिंसीपल) उनमें रासायनिक रूप से उन्मुक्त या फ्री नहीं होता, वरन वह अन्य हानिरहित पदार्थों में गुँथा रहता है। धीरे-धीरे इस गुँथन से मुक्त हुआ वह अपने रासायनिक प्रभाव दिखाता रहता है।

पूरे प्रकृति जगत में प्राय: ४ लाख से भी अधिक पौधे हैं। इसमें से एक भी ऐसा नहीं है जो चिकित्सा की दृष्टि से किसी न किसी प्रकार उपयोगी न हो। इस संबंध में एक आख्यान बहुप्रचलित है। एक बार ब्रह्माजी ने जीवक ऋषि को आदेश दिया कि पृथ्वी पर जो भी पत्ता-पौधा, वृक्ष-वनस्पति व्यर्थ दीखें, तोड़ लाओ।

ग्यारह वर्ष तक पृथ्वी पर घूमते रहने के बाद ऋषिवर लौटे और ब्रह्माजी के समक्ष नतमस्तक हो बोले—"प्रभो! इन ग्यारह वर्षों में पूरी पृथ्वी पर भटका हूँ, प्रत्येक पौधे के गुण-दोष को परखा है, पर पृथ्वी पर एक भी ऐसा वृक्ष न मिला जो किसी न किसी व्याधि के उन्मूलन में सहायक न हो।" इस आख्यान से वृक्ष-वनस्पतियों की औषधीय गुणवत्ता का भान होता है।

अभी तक सारे संसार की ४ लाख प्रकार की वनस्पतियों में मानव मात्र ८ हजार के गुण जान पाया है। वह भी आप्तवचनों से उद्धृत औषधि संदर्भों के कारण। जितनी भी औषधियाँ आज प्रचलित हैं, उनमें से अधिकांश की जानकारी विश्वमानव को भारतवर्ष ने दी है।

Free Read/Download & Order 3000+ books authored by Yugrishi Pt. Shriram Sharma Acharya(Founder of All World Gayatri Pariwar) on all aspects of life in Hindi, Gujarati, English, Marathi & other languages at
www.vicharkrantibooks.org http://literature.awgp.org

यही एक प्रमुख कारण है कि इन पौधों की गरिमा को जीवंत बनाए रखने का उत्तरदायित्व हम सबके लिए और भी बढ़ जाता है। विशेषकर इसलिए भी कि बढ़ती रुग्णता, संक्रामक रोगों, कुपोषण की समस्याओं से ग्रस्त भारत जैसे निर्धन कहे जाने वाले राष्ट्र के लिए इन वनौषधियों का प्रचलन ही एकमेव सर्वोपयोगी मार्ग है।

चीन में यही हुआ है। सर्वाधिक जनसंख्या वाले इस राष्ट्र ने अपनी सारी चिकित्सा पद्धति का आधार जड़ी-बूटियों को बनाया है। वहाँ की जनसंख्या है १ अरब १० करोड़ जो विश्व की जनसंख्या की एक चौथाई है। यदि वहाँ प्रति ५००० व्यक्ति के पीछे भी एक चिकित्सक की बात सोची जाती एवं इस व्यवस्था पर यदि प्रतिमाह दस हजार रुपये कम से कम खरच माना जाता तो पूरी जनसंख्या के लिए ढाई लाख चिकित्सक, इतने से दुगने स्वास्थ्य सहायक, चौगुने अन्य कर्मचारी एवं करीब २ अरब २० करोड़ का नियमित मासिक बजट आवश्यक माना जाता। परंतु दूरदर्शितापूर्ण चिंतन कर उन्होंने रोग-निवारण हेतु पाश्चात्य चिकित्सा पद्धति को दो प्रमुख कारणों से नहीं अपनाया। इनके हानिकारक दुष्प्रभाव एवं इनका इतना महँगा होना कि राष्ट्र की अर्थव्यवस्था का ही असंतुलित हो जाना। चीन की स्वास्थ्य व्यवस्था में नंगे पैर डॉक्टर (बेयर फूटेड डॉक्टर) को प्रमुखता दी गई है। ऐसे प्रायः १८ लाख व्यक्ति स्वयं सेवक के नाते निर्धारित सुदूर ग्रामीण क्षेत्रों में सतत घूमते रहते हैं। अपने ३ माह के प्रशिक्षण एवं प्राकृतिक रूप में प्रचुर मात्रा में उपलब्ध वनौषधियों के माध्यम से स्वच्छ-स्वस्थ बने रहने की शिक्षा एवं छोटे-छोटे शारीरिक असंतुलनों में वनौषधि उपचार के रूप में स्वास्थ्य परामर्श बराबर देते रहते हैं। अधिकांश रोग इतने मात्र से ही ठीक हो जाते हैं। अपने साथ वे कुछ सामान्य ऐसी जड़ी-बूटियाँ एवं खरल आदि

Free Read/Download & Order 3000+ books authored by Yugrishi Pt. Shriram Sharma Acharya(Founder of All World Gayatri Pariwar) on all aspects of life in Hindi, Gujarati, English, Marathi & other languages at
www.vicharkrantibooks.org http://literature.awgp.org

रखते हैं, जिनकी अधिकतर जरूरत पड़ती रहती है। प्राकृतिक औषधि संपदा की पहचान एवं उनके उपयोग के विषय में भी ये निष्णात होते हैं। कुछ रोग ऐसे हो सकते हैं, जिनमें व्याधि नियंत्रण इन वनौषधियों से संभव न हो अथवा रोग की पहचान ठीक प्रकार से न हो पाए तो ये अपने से वरिष्ठ स्वास्थ्य सहायकों तक रोगी को पहुँचा देते हैं। इस सिस्टम द्वारा चीन ने न केवल अपनी जनता का स्वास्थ्य सुधारा है, उनकी अपेक्षित आयु में वृद्धि की है, अपितु कई ऐसी नई-नई औषधियाँ विश्व को दी हैं जो गुणों में सभी आधुनिक औषधियों से कहीं अधिक सामर्थ्यवान बैठती हैं।

आयुर्वेद का इतिहास खोजें तो ज्ञात होता है कि इसका उद्भव ईसा से ४०० वर्ष पूर्व हुआ, जबकि भारत से इस संदर्भ के ग्रंथ तिब्बत होते हुए चीन पहुँचे। एक तिब्बती पांडुलिपि जो ल्हासा संग्रहालय में पाई गई है, में इसका वर्णन मिलता है। इसमें उद्धृत दस हजार से भी अधिक औषधियों में जगह-जगह चरक एवं सुश्रुत के संदर्भ हैं। इसका नाम है—'रिग् युदब्झी'। इसमें ऋक् और उद्भिज दो शब्दों की सम्मिलित ध्वनियाँ हैं। यह ग्रंथ सन् ८२० ईसवी का लिखा माना जाता है।

इसी चिरपुरातन आयर्वेद को चीन ने जिंदा बनाए रखा और परिणाम सामने है। अधिकांश रोगों में ऑपरेशन आवश्यक नहीं माना जाता। केवल वनौषधि उपचार से ही आंत्र-अवरोध जैसी अपातकालीन व्याधि को मिटाने में चीनी चिकित्सक सफल हुए हैं। (चिंग हाओ सू बर्म बुड), मूचिंग (वायटेक्स निगुंडो अर्थात निर्गुंदी), सल्विया मिल्टीओराइजा (हृदय आघात में), सिफेलोटॉक्सस हेनानेन्सिस ली (रक्त कैंसर में), जिनसैंग (एलोपैथी के दुष्प्रभावों को कम करने में, नव स्फूर्ति प्रदान करने में तथा वार्द्धक्य मिटाने में) जैसी जड़ी-

Free Read/Download & Order 3000+ books authored by Yugrishi Pt. Shriram Sharma Acharya(Founder of All World Gayatri Pariwar) on all aspects of life in Hindi, Gujarati, English, Marathi & other languages at
www.vicharkrantibooks.org http://literature.awgp.org

बूटियाँ चीन में बहुत प्रचलित हैं। इनका संदर्भ इंडियन फार्मेकोपिया में भी विशद रूप में मिलता है। रियम टांगुर्टक, मैग्नोलिया ऑफसिनेलिया जैसी औषधियों से बिना चीर-फाड़ के पेट की व्याधियों (आंत्र अवरोध आदि) का उपचार कर लिया जाता है। यह सारा वनस्पति संबंधी ज्ञान जिस प्रकार आधुनिक संदर्भ में चीन द्वारा प्रयुक्त हो रहा है, उसके प्रत्यक्ष सत्परिणाम सारे विज्ञान जगत के समक्ष हैं।

इस प्रकार निष्कर्ष यही निकलता है कि चिकित्सा के उन्हीं आधारों को जीवित किया जाना एवं जीवंत बनाए रखना चाहिए जो मानव की जीवनीशक्ति को बढ़ाने में सहायक हों। उसके लिए मानव को प्रकृति की शरण में जाना होगा। हरीतिमा संवर्द्धन सभी दृष्टि से मनुष्य के लिए लाभकारी है। इस हरीतिमा में रोग निवारक औषधियाँ भी हैं और शरीर की कमियाँ दूर करने वाले पौष्टिक तत्त्व भी। सोवियत रूस व पूर्व जर्मनी, हंगरी जैसे राष्ट्रों ने भी वनौषधियों को पूरा महत्त्व दिया है एवं खेल जगत में एथलीटों-धावकों की, अंतरिक्ष यात्रियों व सेना के जवानों की कार्यक्षमता-वायटेलिटी को काष्ठ औषधियों के प्रयोग द्वारा काफी सीमा तक बढ़ाया है। 'एल्यूथैरोकोकस सेण्टीकोसस' नामक वानस्पतिक नाम से प्रसिद्ध आकार में जिनसैंग से मिलती-जुलती औषधि के प्रयोग द्वारा वे खेल जगत में अपना वर्चस्व स्थापित कर चुके हैं। इन औषधियों का वर्णन कहीं पाश्चात्य फार्मेकोपिया में तो नहीं आता पर इसकी विशेषताएँ सोम से काफी मिलती-जुलती हैं। लंबी खोखला कर देने वाली व्याधियों जैसे क्षय, एनीमिया, कैंसर आदि में प्रयोग कर रूसी वैज्ञानिकों ने इनके निवारण में अभूतपूर्व सफलता प्राप्त की है। यह मात्र प्रकृति की चिकित्सा का अवसर देने की चमत्कारी फलश्रुति है।

Free Read/Download & Order 3000+ books authored by Yugrishi Pt. Shriram Sharma Acharya(Founder of All World Gayatri Pariwar) on all aspects of life in Hindi, Gujarati, English, Marathi & other languages at
www.vicharkrantibooks.org http://literature.awgp.org

भारत की स्थिति को देखते हुए वह चिकित्सा पद्धति ही उपयुक्त जान पड़ती है जो जनसुलभ हो। एक अनुमान के अनुसार देश में ६ करोड़ से भी अधिक क्षय रोगग्रस्त व्यक्ति हैं, कुपोषण से ग्रस्त तथा उनकी संख्या भी करोड़ों में ही है जो किसी न किसी व्याधि से पीड़ित होने के कारण माह में एक सप्ताह काम योग्य नहीं रहते। यदि इन्हें मात्र प्रारंभिक उपचार की सुविधा उपलब्ध हो जाए तो वे नीम-हकीमों के हाथ पड़कर अपना स्वास्थ्य और भी बिगाड़ने से स्वयं को बचा सकें व करोड़ों रुपए की आर्थिक हानि को भी बचाया जा सके। उच्च शिक्षा प्राप्त चिकित्सक तो विदेश बसना या शहरों में निजी प्रैक्टिस करना अधिक पसंद करते हैं। सम्मिश्रण व मिलावट के कारण आयुर्वेद पर से लोगों की श्रद्धा घटती जा रही है। ऐसे में मूलतः देहातों व कसबों तक स्वास्थ्य संरक्षण का सही शिक्षण कैसे पहुँचे, यही सोचकर ब्रह्मवर्चस शोध संस्थान ने इस घरेलू उपचार पद्धति को प्रतिपादित व प्रचारित किया है। इस चिकित्सा पद्धति के वैज्ञानिक आधार इतने सशक्त हैं कि बिना किसी ऊहापोह के इसे बहुसंख्यक व्यक्तियों (ज्ञातव्य है कि लगभग ५४ करोड़ व्यक्ति देहातों या कस्बों में बसते हैं) तक पहुँचाया जा सकता है एवं एक समानांतर चिकित्सा-व्यवस्था खड़ी की जा सकती है।



Free Read/Download & Order 3000+ books authored by Yugrishi Pt. Shriram Sharma Acharya(Founder of All World Gayatri Pariwar) on all aspects of life in Hindi, Gujarati, English, Marathi & other languages at
www.vicharkrantibooks.org http://literature.awgp.org

वनौषधि चिकित्सा के वैज्ञानिक आधार

मानव शरीर वनस्पतियों से ही विनिर्मित है। उसे विधाता ने मात्र शाकाहार पर स्वयं को सबल समर्थ बनाने व जीवन यात्रा चलाने योग्य बनाया है। वनस्पति ही हमें संतुलित आहार के माध्यम से वह प्राण-शक्ति देती है, जो जीवनीशक्ति के रूप में शरीर में संव्याप्त है। शरीर में किस खनिज, जलांश, विटामिन आदि की कमी है, इसे ही पूरा करने का दायित्व वनस्पति-शाकादि वर्ग पर आता है। आश्चर्य यह है कि ये पदार्थ अपने आप में सर्वांगपूर्ण होते हुए भी मनुष्य उन्हें कृत्रिम रूप में विकृत बनाकर ग्रहण करता है और आधि-व्याधियों को आमंत्रित करता है। गन्ने का रस अपने स्वाभाविक रूप में ही लाभकारी है। पर जब वही शक्कर बन जाता है व सम्मिश्रण द्वारा मिठाई के रूप में लिया जाता है तो पाचन संस्थान पर जबरदस्त दबाव पड़ता है और मनुष्य अपच-बदहजमी का शिकार होता चला जाता है।

शाकों के ही वर्ग में काष्ठ औषधियाँ भी होती हैं, जिन्हें एकाकी ही अनुपान भेद से ग्रहण किए जाने का यहाँ प्रतिपादन किया जा रहा है। प्रत्येक जड़ी-बूटी स्वयं में समग्र है। मिश्रित योगौषधियों की अपेक्षा अमिश्रित एकौषधि रोगों को मिटाने में कितनी लाभदायक सिद्ध होती है, इसका वर्णन चिरपुरातन आयुर्वेद ग्रंथों में मिलता है। धीरे-धीरे योगों-सम्मिश्रणों की संख्या बढ़ती चली गई व गत ३ सहस्र वर्षों में एकौषधि विज्ञान तो लुप्त हो गया, योगौषधि विज्ञान का प्राधान्य हो गया। आज भी ऐसे विद्वान योग्य चिकित्सक हैं, जो मात्र एक ही औषधि अपने रोगियों पर प्रयुक्त करते हैं व उन्हें निरापद पद्धति से स्वस्थ कर देते हैं।

Free Read/Download & Order 3000+ books authored by Yugrishi Pt. Shriram Sharma Acharya(Founder of All World Gayatri Pariwar) on all aspects of life in Hindi, Gujarati, English, Marathi & other languages at
www.vicharkrantibooks.org http://literature.awgp.org

हर जड़ी-बूटी स्वयं में एक पूर्ण योग है, जिसमें उसके उपयोगी तत्त्वों के साथ-साथ दुष्प्रभावों को निरस्त करने वाला एंटीडोट भी साथ में मिला हुआ है। इस प्रकार एक ही औषधि रोग विशेष में प्रयुक्त होने पर पूर्ण प्रभावी सिद्ध होती है। शोथ (इडीमा) से पीड़ित किसी रोगी को यदि मूत्र विरेचक द्रव्य (डाययूरेटिक औषधि) दी जाए तो उसकी शोथ तो तुरंत उतर जाती है, परंतु साथ ही अधिक मूत्र आने के कारण रक्त में विद्यमान हृदय की मांसपेशियों व सारे शरीर के कोशों में रासायनिक क्रिया के लिए उत्तरदायी पोटेशियम भी मूत्र मार्ग से बाहर चला जाता है। इसकी रक्त में कमी की पूर्ति के लिए पाश्चात्य चिकित्सा पद्धति में हमेशा पोटेशियम लवण भी साथ-साथ दिए जाते हैं। मुँह से दिया गया संश्लेषित पोटेशियम अनेकों अवांछनीय लक्षण उत्पन्न करता है, क्योंकि यह आमाशय की श्लेष्मा झिल्ली के लिए उत्तेजक है। यदि इसी शोथ को उतारने के लिए पुनर्नवा दी जाए जो शाक वर्ग की सर्वोपलब्ध औषधि है तो यह समस्या खड़ी नहीं होती। एक ही औषधि सर्वांगपूर्ण होने के कारण रोग के अनेकानेक पक्षों से स्वयं ही मोर्चा ले लेती है। वैज्ञानिक प्रयोगों ने यह प्रमाणित कर दिया है कि पुनर्नवा में विद्यमान पोटेशियम मुक्त अवस्था में न होने से धीरे-धीरे उत्सर्जित हो, श्लेष्मा झिल्ली के पार रक्त में प्रविष्ट होता रहता है एवं जितना बाहर गया है, उतनी ही पूर्ति कर देता है। इस प्राकृतिक टाइम रिलीज कैप्सूल की तुलना में संश्लेषित स्लोरिलीज कैप्सूल व श्लेष्मा उत्तेजना को मिटाने वाली एंटेसिड (अम्ल पित्त निवारक) औषधियाँ निश्चित ही नुकसानदायक और महँगी हैं तथा विवेकहीनता का परिचय देती हैं।

गन्ने का रस या उससे बनी राव एवं शक्कर की तुलना करने पर भी इसी निष्कर्ष पर पहुँचना पड़ता है। रस में ग्लूकोज-फ्रूक्टोस

Free Read/Download & Order 3000+ books authored by Yugrishi Pt. Shriram Sharma Acharya(Founder of All World Gayatri Pariwar) on all aspects of life in Hindi, Gujarati, English, Marathi & other languages at
www.vicharkrantibooks.org http://literature.awgp.org

धीरे-धीरे अवशोषित होता रहता है। रक्त शर्करा एकदम नहीं बढ़ने पाती। इंग्लैंड के डेनीमीड हैल्थ सेंटर के डॉ० टी०जे० गोल्डर ने सामान्य मनुष्यों और मधुमेह के रोगियों पर प्रयोग से पाया कि गन्ने का रस या राव खिलाने पर रक्त की शर्करा में उल्लेखनीय वृद्धि नहीं होती जब कि शक्कर जो इसी रस के कृत्रिम विधि द्वारा संश्लेषित की जाती है, देने पर रक्त में एकदम बढ़ती है व लीवर आदि अंगों की कार्यक्षमता में बाधक बनती है। लेसेंट पत्रिका (१/६/२/१९७९) में प्रकाशित उनके लेख के अनुसार यदि स्वस्थ व्यक्ति इस स्वाभाविक शर्करा को नियमित रूप से लेता भी रहे, तो आनुवंशिकता की दृष्टि से उनके 'डायबिटीज-प्रोन' होने पर भी रक्त में पायरुवेट, लैक्टेट जैसे अम्लवर्द्धक विष कम मात्रा में जन्म लेते हैं व तुरंत निष्कासित भी कर दिए जाते हैं। उनका कहना है कि रेशे के साथ मिलकर शर्करा मानव की स्वाभाविक खुराक बन जाती है। इसी कारण उन्होंने शकर को इसके स्वाभाविक स्वरूप रस, राव या गुण के रूप में ग्रहण करने का समर्थन किया है।

मुलहठी ऊँचे इलाकों में पैदा होने वाली सर्वोपलब्ध औषधि है। सदियों से इसे आमाशय के रोगों में सफलता से प्रयुक्त किया जाता रहा है। आधुनिक चिकित्सा विज्ञान ने इसके गुणों को दृष्टिगत रख उसके जैव सक्रिय संघटक (एक्टिव-प्रिंसिपल) कार्बोनोक्सोलोन के कैप्सूल व गोलियाँ बनाकर अम्लपित्त के रोगियों में उसका प्रयोग किया तो परिणाम प्राकृतिक रूप से दिए जाने पर होने वाले लाभों की तुलना में कतई उत्साहवर्द्धक नहीं थे। ड्यूडनल अल्सर नामक पेट के छालों में इसका प्रभाव नहीं के बराबर व गैस्ट्रिक अल्सर में कुछ मात्रा में पाया गया है। वैज्ञानिकों ने जब कारण खोजे तो पाया कि जब तक कैप्सूल रूप में दी गई औषधि आमाशय में अपना प्रभाव डालती है, वहाँ

Free Read/Download & Order 3000+ books authored by Yugrishi Pt. Shriram Sharma Acharya(Founder of All World Gayatri Pariwar) on all aspects of life in Hindi, Gujarati, English, Marathi & other languages at
www.vicharkrantibooks.org http://literature.awgp.org

उत्सर्जित अन्य एन्जाइम्स, रसायन उसे प्रभावहीन कर देते हैं। इस पर कुछ चिकित्सकों का ध्यान प्राकृतिक रूप से औषधि को कैप्सूल में रखकर खिलाने पर गया। डॉ० डेविड एवं डॉ० रीड के इस संबंध में शोध निष्कर्षों का विवरण गुडमैन-गिलमैन की पुस्तक द फार्मेकॉलॉजीकल बेसिस ऑफ थेरोप्यूटिक्स (१९८० संस्करण) में छपा है, जिसमें उन्होंने कार्बोनिक्सोलोन के विशिष्ट प्रयोगों की कण्ट्रोल्डट्रायल से कई अम्ल पित्त व आमाशय व्रण के रोगियों को स्वस्थ किया। अपने रेशों में सक्रिय संघटक के सम्मिश्रण प्रभाव से मुलहठी अब एक ख्याति प्राप्त औषधि का दर्जा प्राप्त कर चुकी है।

प्राकृतिक रूप से पाया जाने वाला आँवला विटामिन 'सी' से लबालब भरा पड़ा है। १०० ग्राम आँवले के रस में ९२१ मिली ग्राम विटामिन सी पाया जाता है जो कि बाजार में उपलबध आधे ग्राम की दो गोलियों के बराबर है। मात्रा ही नहीं गुणवत्ता में भी आँवला प्राकृतिक रूप में ही अधिक लाभकारी व श्रेष्ठ बैठता है। इसका प्रमाण वेल्थ ऑफ इंडिया (३/१६९) में उद्धृत वैज्ञानिक संदर्भ देता है। पाया यह गया है कि यदि क्षय रोग (फेफड़ों की टी.वी.) के रोगियों को कृत्रिम विटामिन सी न देकर प्राकृतिक रूप में उपलब्ध आँवला खिलाया जाए तो विटामिन सी की क्षतिपूर्ति शीघ्र ही हो जाती है। व्रण को भरने व जीवाणु रोधक सामर्थ्य बढ़ाने में आँवला जो योगदान देता है, वह संश्लेषित विटामिन सी नहीं दे पाता। इसका कारण लेखक ने यही बताया कि आँवला में विटामिन सी के अतिरिक्त ऐसे अन्य घटक भी होते हैं, जो उसे घुलनशील बनाकर उसकी अवशोषक-एसिमिलेशन प्रक्रिया में सहायता करते हैं। ऐसा घुलनशील तत्त्व निर्धारित स्थलों (टारगेट ऑरगन्स) पर पहुँचकर अत्यंत लाभकारी प्रभाव डालता है। यहाँ तो आँवले का एक ही उदाहरण दिया गया है। इस प्राकृतिक

Free Read/Download & Order 3000+ books authored by Yugrishi Pt. Shriram Sharma Acharya(Founder of All World Gayatri Pariwar) on all aspects of life in Hindi, Gujarati, English, Marathi & other languages at
www.vicharkrantibooks.org http://literature.awgp.org

विटामिन संपदा के अन्यान्य गुण भी ऐसे विलक्षण हैं कि यह अकेला अपने आप में एक औषधि है।

औषधि की दृष्टि से पूर्णता का एक और उदाहरण 'नीम' है। स्केबीज (कंडु) नामक एक संक्रामक कीटजन्य रोग में नीम स्थानीय लेप के रूप में लगाए जाने पर अपनी कीटनाशक क्षमता के कारण उत्तरदायी संक्रामक कीटों (सारकोप्टिस स्केबिआई) को तो मारता ही है, एक तीव्र जीवाणुनाशी होने के कारण साथ में होने वाले आनुषंगिक जीवाणु संक्रमण (सेकेंडरी पायोजेनिक इन्फेक्शन) को भी समाप्त कर देता है। यही संक्रमण अनेकानेक विकट परिस्थितियों को जन्म देकर एलोपैथिक औषधि प्रयोगों को बारंबार विफल कर देता है, आर्थिक दृष्टि से रोगी को हानि अलग होती है। इसके अतिरिक्त यह एक अच्छा एण्टी-हिस्टामिनिक खुजली-निवारक भी है। एक ही औषधि किस प्रकार अपने बहुविध प्रयोगों से लाभ दिखा सकती है, इसका सर्वोपलब्ध 'नीम' एक अच्छा उदाहरण है। आंतरिक प्रयोगों में यह एक सर्वश्रेष्ठ रक्त शोधक एवं एंटी बायोटिक की भूमिका निभाता ही है।

यहाँ विभिन्न उदाहरणों से यह सिद्ध करने का प्रयास किया जा रहा है कि वनौषधियाँ प्रकृति की देन होने के नाते अपने आप में समग्र हैं एवं उनके एकाकी प्रयोग से अन्य उपचारों की तुलना में कई गुने अधिक लाभ मिलते हैं। समग्रता के अतिरिक्त एक दूसरा महत्त्वपूर्ण तथ्य यह है कि वनौषधियाँ समस्थिति पुनर्स्थापक (होमिओस्टेसिस रिस्टोरर) हैं अर्थात वे शरीर की विभिन्न क्रिया-प्रतिक्रियाओं में बिना अधिक हस्तक्षेप किए उन्हें सामान्य स्थिति में ला सकने में बहुमूल्य योगदान देती हैं। एलोपैथिक औषधियों के अवांछनीय दुष्प्रभावों एवं जड़ी-बूटियों के निरापद होने का आधार यही है। कृत्रिम संश्लेषित रसायन होमिओस्टेसिस से छेड़छाड़ करते हैं, जबकि प्राकृतिक औषधियाँ

Free Read/Download & Order 3000+ books authored by Yugrishi Pt. Shriram Sharma Acharya(Founder of All World Gayatri Pariwar) on all aspects of life in Hindi, Gujarati, English, Marathi & other languages at
www.vicharkrantibooks.org http://literature.awgp.org

शरीर संस्थान को जैसे थे की स्थिति में बनाए रखने में सहायक सिद्ध होती हैं।

अवांछनीय दुष्प्रभावों की चर्चा चली तो यहाँ कुछ उदाहरणों द्वारा औषधि के प्राकृतिक स्वरूप व रासायनिक घटक की तुलना करना अप्रासंगिक न होगा। उच्च रक्तचाप के लिए प्रयुक्त औषधियाँ शक्तिशाली प्रक्रिया द्वारा 'न्यूरो ह्यूमरल' केंद्रों पर कार्य करके उसे बलात नीचे ले आती हैं। दवा बंद होते ही वह उछलकर वापस अपने पिछले स्तर से कहीं और ऊँचे व रेसीस्टेण्ट स्थिति में पहुँच जाता है। 'क्लोनीडीन' जैसी औषधियाँ जब बाजार में आईं तो उन्होंने खूब ख्याति पाई, परंतु अब उनके प्रयोग पर धीरे-धीरे निषेध लगता जा रहा है। वैज्ञानिक फार्मेकॉलोजी के लब्ध प्रतिष्ठित ग्रंथ गुडमैन-गिलमैन की 'द फार्मेकॉलॉजीकल बेसिस ऑफ थेरोप्यूटिक्स' में लिखते हैं कि क्लोनीडीन यदि एकाएक बंद कर दी जाए तो रोगी को हाइपरटेन्सिव ब्राइसिस का खतरा मोल लेना पड़ सकता है जो कि जान तक ले लेता है। यह स्थिति हृदय के लिए प्रयुक्त की जाने वाली विभिन्न काष्ठ औषधियों में नहीं होती। वे सामान्य प्रक्रिया की तरह रक्तचाप को क्रमशः नीचे लाती हैं व बंद किए जाने पर भी किसी प्रकार की क्राइसिस तुरंत उत्पन्न नहीं होती।

अम्ल पित्त रोग के लिए (हाइपर एसीडिटी या पेप्टिक अल्सर) एंटासिड्स (उदाहरणार्थ मिथाइल पॉलीसिलॉक्सॉन एल्यूमीनियम हाइड्राक्सी कार्बोनेट, केल्शियम कार्बोनेट इत्यादि) देने के बाद रिवाइंड हाइपर एसीडिटी (आमाशय की तीव्र प्रतिक्रिया) भी इसी प्रक्रिया का एक स्वरूप है। सीमेटोडीन जैसी तीव्र औषधियाँ तो कुछ ही समय में आमाशय से अम्ल का बनाना ही रोक देती हैं। पेप्टिक अल्सर के भरने पर जब दवा बंद की जाती है तो अल्सर शीघ्र ही पुनः और भी तीव्रता

Free Read/Download & Order 3000+ books authored by Yugrishi Pt. Shriram Sharma Acharya(Founder of All World Gayatri Pariwar) on all aspects of life in Hindi, Gujarati, English, Marathi & other languages at
www.vicharkrantibooks.org http://literature.awgp.org

से अम्ल उत्पादन व आमाशय को खोखला करने की गति बढ़ा देता है। यहाँ तक कि छालों के पेट में फूट जाने जैसी खतरनाक जटिल समस्याएँ जन्म ले सकती हैं। मुलहठी व आँवला, निशोथ व सौंफ जैसी औषधि का एकाकी प्रयोग निरापद ढंग से अम्ल, पित्त, व्रण को भरने में किस प्रकार सहायक सिद्ध होता है, यह वैज्ञानिकों के लिए अभी भी शोध का विषय है।

इन दो उदाहरणों के विस्तार में जाएँ तो ज्ञात होता है कि यह होमियोस्टेसिस (सम स्थिति) में उत्पन्न होने वाला विक्षेप ही है जो रसायन औषधि की प्रतिक्रिया के रूप में निकलता है। शरीर तंत्र में रक्त चाप को घटाने व बढ़ाने वाले दोनों ही साधन विद्यमान हैं, आमाशय में अम्ल बढ़ाने-घटाने वाली दोनों प्रकार की नियंत्रण व्यवस्थाएँ विद्यमान हैं। एक के दबने पर दूसरे की प्रतिक्रिया होना स्वाभाविक है। उसे ओवर शूटिंग फिनामिना नाम से वैज्ञानिक जगत में जाना जाता है। प्रबल रेचक दवाएँ सामान्यतया अधिक मात्रा में ली जाती हैं, परंतु इनका प्रयोग एक प्रकार के दु:साध्य अपरिवर्तनीय कब्ज (ऑव्सटीनेट कांस्टीपेशन) को जन्म देता है। इसी कारण बाद में फिर सामंजस्य स्थापित करने वाली औषधियों की आवश्यकता पड़ती है। वनौषधि वर्ग में यही खूबी है कि इनमें प्रभाव के प्रतिप्रभाव को जन्म देने वाले तत्त्व भी विद्यमान हैं। इसी कारण कोई भी प्रभाव अतिवादी एकांगी हो नहीं पाता। विल्व तथा हरीतिकी जब भी लोअर पाचन संस्थान के लिए दिए जाते हैं होमियोस्टेसिस स्थापना का ही काम करते हैं। महत्त्वपूर्ण रस एन्जाइम्स भी नष्ट नहीं हो पाते तथा साम्य स्थिति पुन: लौट आती है।

विल्व में पेक्टिन, टैनिन व म्यूसिलेज की मात्रा विशेषकर फलों से अत्यधिक होती है। ये तीनों ही विवंधकारक मल को बाँधने वाले

Free Read/Download & Order 3000+ books authored by Yugrishi Pt. Shriram Sharma Acharya(Founder of All World Gayatri Pariwar) on all aspects of life in Hindi, Gujarati, English, Marathi & other languages at
www.vicharkrantibooks.org http://literature.awgp.org

पदार्थ हैं। फलतः बेल पेचिस, अतिसार में लाभ देता है। साथ ही मार्मी लोसिन एवं मार्मीलाइड जैसे विरेचक तत्त्व भी इसमें होते हैं। इसी कारण यह साम्य स्थिति ला सकने में तुरंत कारगर सिद्ध होता है। हरीतकी (हरड़) में भी पाए जाने वाले टैनिन्स विवंधकारक होते हैं पर साथ ही एन्थ्राक्वीनोन जाति के जो ग्लाइकोसाइड्स होते हैं, वे अच्छे विरेचक होने के कारण संतुलित स्थिति को जन्म देने में योगदान देते हैं। दोनों ही औषधियाँ बड़ी आँत पर उत्तेजक एकांगी प्रभाव न डालकर परस्पर विरोधी गुण धर्म के कारण तंत्र में सामंजस्य बिठा देती हैं। इसकी तुलना में विसेकोडिल या डायफिनॉक्सीलेट (लोमोरिल) जैसी तेज रासायनिक औषधियाँ अपने तीव्र प्रभाव द्वारा आँतों के पूरे संस्थान को हिलाकर रख देती हैं। धीरे-धीरे रोगी इनका आदी भी होता जाता है व अपने महत्त्वपूर्ण पाचक एन्जाइम्स भी खोता चला जाता है।

सर्पगंधा का उदाहरण भी इसी संदर्भ में लिया जा सकता है। सर्पगंधा में कुल ८० एल्केलॉइड होते हैं। इनमें दो विरोधी गुण धर्म वाले हैं। रेजर्पीन वर्ग के एल्केलॉइड मस्तिष्क में से एक महत्त्वपूर्ण न्यूरल हारमोन सिरोटोनिन का क्षरण कर रक्तचाप घटाते हैं, परंतु दूसरे अल्मेलीन वर्ग के एल्केलॉइड ऐसा नहीं करते। वस्तुतः रॉवल्फीनीन नामक एल्केलॉइड तो रक्तचाप को बढ़ाता है अर्थात यदि रोगी को सर्पगंधा चूर्ण दिया जाए तो वह उच्च रक्तचाप घटाने के साथ अवांछनीय प्रभाव उत्पन्न नहीं करता, क्योंकि पहले समूह से होने वाली हानियाँ दूसरे वर्ग के एल्केलॉइड के कारण निरस्त हो जाती हैं। इस सामंजस्य या समस्थिति के कारण एलोपैथिक औषधि रिजर्पीन की तुलना में सर्पगंधा चूर्ण अधिक लाभकारी है। रिजर्पीन एक रसायन है जो मस्तिष्क के न्यूट्रॉन्स व न्यूटोह्यूमरल संधि स्थलों से हारमोन्स का क्षय करके

Free Read/Download & Order 3000+ books authored by Yugrishi Pt. Shriram Sharma Acharya(Founder of All World Gayatri Pariwar) on all aspects of life in Hindi, Gujarati, English, Marathi & other languages at
www.vicharkrantibooks.org http://literature.awgp.org

भयंकर अवसाद की स्थिति उत्पन्न कर देता है। मात्र एक घटक का चयन कर चिकित्सकों ने कोई बुद्धिमत्ता का कार्य नहीं किया, यह अब सभी अनुभव कर रहे हैं।

आर्षकालीन औषधियाँ पूर्णतः विज्ञान सम्मत हैं, यह इन पंक्तियों में बताने का प्रयास किया गया है। वस्तुतः इसे पंसारियों के हाथ से निकालकर अब 'मास प्लांटिंग' के माध्यम से घर-घर पहुँचाना होगा। जहाँ पाश्चात्य चिकित्सा के विद्वानों को उन पंसारियों से जो अनुपयोगी निरर्थक वनस्पतियों को औषधि के नाम पर बेचकर वस्तुतः इस विद्या पर कलंक का धब्बा लगाते हैं। जड़ी-बूटियाँ अंधविश्वास नहीं, समग्र रूप से वैज्ञानिक तथ्यों पर प्रभावी निरापद औषधियाँ हैं। इन्हें बड़ी सुगमता से सबको उपलब्ध कराया जा सकता है, यह सभी को आज समझाए जाने की महती आवश्यकता है। यह एक विडंबना ही होगी कि जब सारा विश्व इस विद्या को विस्तार से जानने के लिए हमारी ओर मुँह ताक रहा है, हम स्वयं पाश्चात्यभिमुख हो, उन सिद्धांतों को अपनाने का प्रयास करें, जिनकी काट आयुर्वेद ने स्वयं की है व प्रत्यक्षतः दृष्टिगोचर दुष्प्रभाव जिनकी विभीषिका का दर्शन हमें सतत कराते रहते हैं।



Free Read/Download & Order 3000+ books authored by Yugrishi Pt. Shriram Sharma Acharya(Founder of All World Gayatri Pariwar) on all aspects of life in Hindi, Gujarati, English, Marathi & other languages at
www.vicharkrantibooks.org http://literature.awgp.org

वनस्पतियों के मानव को दिव्य अनुदान

सोवियत वनस्पति वैज्ञानिकों के अनुसार अनुमानतः पृथ्वी पर वनस्पतियों का कुल भार २६ खरब २५ अरब टन है। 'तास' द्वारा दी गई एक जानकारी के अनुसार 'इकोलॉजी' संतुलन में महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाने में यह विशाल मात्रा अत्यंत सहायक सिद्ध होती है। मानव जीवित है तो इन वनस्पतियों के कारण। अध्ययन बताता है कि वनस्पतियों का सर्वाधिक भंडार भूमध्य रेखा के क्षेत्र में है। वहाँ प्रतिवर्ग किलोमीटर क्षेत्र में ७० हजार टन वनस्पति पदार्थ होते हैं। अंटार्कटिका क्षेत्र (दक्षिण ध्रुव) में इनकी सघनता न्यूनतम होती है। वहाँ पाई गई वनस्पतियों का भार दो करोड़ टन है, जबकि इससे तीन गुना भार की वनस्पतियाँ उत्तरी ध्रुव पर हैं। हाँ याद रखने योग्य तथ्य है कि पृथ्वी पर रहने वाले मनुष्यों, जीवधारियों का भार ४ खरब किलोग्राम से अधिक नहीं है। ये सभी मिलकर वातावरण में जितना कचरा, मल-मूत्र रूपी दुर्गंध छोड़ते हैं, इसकी गणना नहीं ही की जाए तो ठीक है। वे आँकड़े भले ही अनुमान हों पर रोम कँपकँपा देने वाले होंगे, परंतु सवा २६ खरब टन वनस्पतियाँ इकोलॉजी संतुलन में जो भूमिका निभाती हैं, वह अपने आप में स्तुत्य है एवं इसी कारण आँकड़ों की चर्चा यहाँ की गई है। वे सारे विकारों का गरल पान कर बदले में प्राणवायु देती हैं, यह अपने आप में एक अनुदान है। ४ लाख प्रकार के ये पौधे इसके अलावा औषधीय महत्त्व भी रखते हैं यह तथ्य भी अपनी जगह है। वैज्ञानिकों का कथन है कि इनमें से एक भी ऐसा नहीं है, जिसे उद्देश्यहीन मानकर अलग कर लिया जाए। प्रत्येक पौधा अपने आप में एक समग्र औषधि है। उपयोग जानने वाले लाभ उठाते व अन्यों को भी आरोग्य प्रदान करते देखे जाते हैं।

Free Read/Download & Order 3000+ books authored by Yugrishi Pt. Shriram Sharma Acharya(Founder of All World Gayatri Pariwar) on all aspects of life in Hindi, Gujarati, English, Marathi & other languages at
www.vicharkrantibooks.org http://literature.awgp.org

आधुनिक मटेरिया मेडिका की आवश्यक दवाओं का स्रोत पौधे ही हैं। भारतीय फार्मेकोपिया (१९६६) की करीब चौरासी जीवनोपयोगी (लाइफ सेविंग) औषधियाँ पौधों से ही प्राप्त होती हैं। मारफीन, कोकीन, ब्रूडीन, स्ट्रिकनीन, क्वीनीन, अरगटामीन, हायोसायमीन, स्कोपोलामीन, एमैटीन, कोकेन, एफेंड्रीन, रेसर्पीन, कैफीन, एकोनोटीन, वैसीन, सैन्टीनिन, लोबेलिन, डिजाक्सीन, ग्लिसराइजिन, बार्बोलिन, सेन्नोसाइड, कार्टीकोस्टेराइड, बेलेरीन आदि अनेक ऐसी औषधियाँ हैं, जिन्हें प्राणरक्षक माना जाता है। इनका एकमात्र स्रोत वनस्पति समुदाय है। आखिर क्या कारण है कि विधाता ने इन वनस्पतियों को पृथ्वी पर अन्य जीवधारियों के साथ प्रचुर मात्रा में पैदा किया व उसकी संरचना भी ऐसी बनाई कि उनके अंदर विद्यमान पदार्थ औरों के लिए उपयोगी बन गए।

श्री शिव गोपाल मिश्र अपनी पुस्तक 'पादप विज्ञान' में लिखते हैं कि एल्केलॉइड केवल पौधों में पाए जाते हैं। यह एक विचित्र बात है कि आज तक पौधों में इनके अस्तित्व के कारण व उनकी मानव समुदाय हेतु उपयोगिता की सही-सही व्याख्या कोई नहीं कर पाया है। इसके अतिरिक्त टर्पीस एवं अन्य सौरभीय तेलों की भी कोई उपयोगिता पौधों के स्वयं के लिए कोई विशेष नहीं है। न तो चयापचय प्रक्रिया में भाग लेते हैं, न ही पदार्थ के रूप में प्रयुक्त होते हैं। परंतु यही घटक जीवधारियों-मनुष्य जगत के लिए प्राणरक्षक औषधि बन जाते हैं।

पौधे जिस प्रकार दूषित वायु का गरलपान कर प्राणवायु उत्सर्जित करते हैं, उसी प्रकार अन्यान्य जीवों के लिए औषधि रूपी एल्केलाइड्स का भी निर्माण करते हैं। इकोलॉजिकल संतुलन की यह व्यवस्था अपने आप में संपूर्ण एवं पूर्ण रूपेण व्यवस्थित है। अब धीरे-धीरे यह तथ्य

Free Read/Download & Order 3000+ books authored by Yugrishi Pt. Shriram Sharma Acharya(Founder of All World Gayatri Pariwar) on all aspects of life in Hindi, Gujarati, English, Marathi & other languages at
www.vicharkrantibooks.org http://literature.awgp.org

सभी की समझ में आ भी रहा है कि वृक्ष वनस्पति अपने प्राकृतिक रूप में ग्रहण किए जाने पर ही औषधि की भूमिका निभाते हैं। उनके रासायनिक घटक अलग करने पर तीव्र प्रभावकारी तो हो जाते हैं, पर एंटीडोट की अनुपस्थिति में वे मारक ही सिद्ध होते हैं।

प्रसिद्ध चिकित्सक डॉ० विल्हेल्म पेलीकन ने जुलाई १९७० के ब्रिटिश जनरल ऑफ होम्योपैथिक में अपने विचार व्यक्त करते हुए एक लेख लिखा है—'आर्कीटिपल रिलेशंस बिटवीन प्लांट्स एंड मैन'। इसमें वे बताते है कि पौधों के विभिन्न भाग जड़, काष्ठ, फूल-फल, बीज आदि मनुष्य शरीर की विभिन्न कमियों को पूरा करते हैं। कई उदाहरणों से उन्होंने समझाया है कि एक रोग विशेष में एक ही पौधे को दिए जाने पर उसके अंग विशेष ने तो मूल रोग नष्ट किया तथा अन्य अंगों के साथ में होने वाले व संभावित जटिल कॉम्पलीकेशन्स को मिटाया। इस प्रकार एक जड़ी-बूटी की संरचना ही कुछ इस प्रकार हुई है कि वह समग्र रोग को नष्ट करने में सहायक सिद्ध होती है। ऐसे में सक्रिय घटकों को कृत्रिम संश्लेषण विधि द्वारा अलग करने के झगड़े में न पड़कर यदि पौधे के औषधीय भाग का उसके प्राकृतिक रूप में ही सेवन किया जाए तो वह अधिक श्रेष्ठ है।

रक्त कैंसर के लिए सदाबहार पौधे का प्रयोग होता है। यदि इस विषम व्याधि में पौधे के एल्केलॉइड मात्र विन क्रिस्टीन-विनब्लास्टिन न देकर विन्का पौधे का ही प्रयोग कर लिया जाए तो विशेषज्ञ चिकित्सकों के अनुसार आनुषंगी मारक दुष्प्रभावों (साइड-इफेक्ट्स) से बचाव तो है ही लाभ भी कम नहीं है। तुरंत लाभ की जल्दी व रासायनिक चिकित्सा की थ्योरी ने ही आज एलोपैथी के चिकित्सकों को एल्केलॉइड एक्सट्रेशन, एनीमल एक्सपेरीमेण्टेशन व थेराप्यूटकि ट्रॉयल अपनाने हेतु मजबूर कर दिया है। उनका चिंतन कुछ उदार बने तो वे भी चिकित्सा

Free Read/Download & Order 3000+ books authored by Yugrishi Pt. Shriram Sharma Acharya(Founder of All World Gayatri Pariwar) on all aspects of life in Hindi, Gujarati, English, Marathi & other languages at
www.vicharkrantibooks.org http://literature.awgp.org

क्षेत्र में फिर वही क्रांति ला सकते हैं, जो किसी समय एंटी बायोटिक्स की खोज के समय डॉ० फ्लेमिंग लाए थे।

यह काम जितनी जल्दी हो, उतना ही उत्तम है; क्योंकि एक खतरनाक चेतावनी पर्यावरण विशेषज्ञ गत कई वर्षों से सतत देते आ रहे हैं। उनके अनुसार धीरे-धीरे वन कटते जाने, ऊर्जा उत्पादन व संशोधन दोहन की आतुरता के कारण कई प्रकार के पौधों की नस्लें समाप्त होती जा रही हैं। इन्हें अनुपलब्ध या कठिनाई से उपलब्ध (रेयर) की श्रेणी में रखकर इनके संरक्षण पर अब बहुत अधिक ध्यान दिया जा रहा है। हमारे राष्ट्र के उत्पादन में लगभग १०० करोड़ रुपयों की लागत की औषधियाँ प्रतिवर्ष मात्र वनौषधियों से बनाई जाती हैं। ये बाहर निर्यात की जाती हैं व तृतीय विश्व के देशों के लिए एक सहारा हैं। इसके अतिरिक्त हमारे स्वयं के राष्ट्र की ८० प्रतिशत ग्रामीण जनता का स्वास्थ्य इन्हीं सर्वोपलब्ध औषधियों पर ही निर्भर है। इस प्रकार आधुनिकता की दौड़ में हम कहीं इन्हें भूल न जाएँ, यह भय सदा बना ही रहता है।

आवश्यकता है कि इनकी महत्ता समझते हुए अब इस दिशा में नए सिरे से चिंतन हो। औषधि संग्रह करने वाले भी जड़ी-बूटियों की सही पहचान द्वारा सही लोगों के माध्यम से उन्हें चिकित्सक तक पहुँचाएँ। पंसारियों से यह विभाग छीनकर प्रशिक्षित 'बेयर फुटेड चिकित्सक' या शिक्षा प्राप्त डिगरीधारी चिकित्सकों को सौंप दिया जाए एवं जनमानस को इस प्रकार ढाला जाए कि छोटी-छोटी तकलीफों के लिए एलोपैथी की शरण में जाने के बजाय वे औषधि उपचार से ही प्रारंभ में काम चलाएँ। यह तभी संभव है जब हर व्यक्ति वनस्पति जगत की उपादेयता को, हरीमिता की औषधीय महत्ता को समझेगा, उन्हें अपने जीवन में स्थान देगा तथा अपने आहार-विहार, चिंतन को बदलने के लिए कुछ सीमा तक स्वयं को तैयार कर लेगा। ❐

Free Read/Download & Order 3000+ books authored by Yugrishi Pt. Shriram Sharma Acharya(Founder of All World Gayatri Pariwar) on all aspects of life in Hindi, Gujarati, English, Marathi & other languages at
www.vicharkrantibooks.org http://literature.awgp.org

एकौषधि ही क्यों ?

अभी तक जो विवेचन किया गया उसका मूल प्रतिपादन था वनौषधि चिकित्सा का पुनर्जीवन, उसकी अन्य प्रचलित चिकित्सा पद्धतियों से तुलना तथा परिवेश एवं वैज्ञानिक तथ्यों के संदर्भों के साथ यह मूल्यांकन कि ग्रामीण भारत के लिए सर्वश्रेष्ठ व्यवस्था क्या हो सकती है ? इस निष्कर्ष पर पहुँचने के बाद रोगों की चर्चा के पूर्व एक पक्ष और अछूता रह जाता है—एक औषधि का ही प्रयोग क्यों तथा किस प्रकार किया जाए ? क्या आयुर्वेद के प्रचलित स्वरूप को ही फिर से जन्म दिया जा रहा है ? गुटिका, अवलेह, अरिष्ट, आसव, योगों की चर्चा ही की जा रही है अथवा औषधि के किसी और स्वरूप की ? इसे स्पष्ट करने के लिए यह समझाना यहाँ उचित होगा कि एकौषधि का प्रयोग ही क्यों किया जाए ?

एकौषधि का अर्थ है—रोगी को किसी एक समय में निश्चित अनुपात के साथ एक से अधिक औषधि न देना। पुरातन आयुर्वेदिक वैद्यों, यूनानी हकीमों, होम्योपैथी के जन्मदाता डॉ० सैमुअल हैनीमेन जैसे चिंतक मनीषियों ने तथा अमेरिका की प्रतिष्ठित फूड एंड ड्रग एडिमिनिस्ट्रेशन जैसी आधुनिकतम संस्थाओं ने एक स्वर से एक समय में एक से अधिक औषधि न दिए जाने का ही समर्थन किया है।

किसी औषधि के गुणकारी होने के पीछे रस, गुण, वीर्य, विपाक एवं प्रभाव, इन पाँच आधारों को ही प्रमुख माना जाता है। प्राचीन वैद्यों के अनुसार एक बार में यदि एक से अधिक औषधि मिला दी जाएँ तो उनके प्रभाव में अत्यधिक परिवर्तन आ जाता है। कहीं-कहीं तो योग लाभकारी हो सकते हैं—सिनरजिस्टिक, पर बहुधा

Free Read/Download & Order 3000+ books authored by Yugrishi Pt. Shriram Sharma Acharya(Founder of All World Gayatri Pariwar) on all aspects of life in Hindi, Gujarati, English, Marathi & other languages at
www.vicharkrantibooks.org http://literature.awgp.org

सम्मिश्रण हानिकारक ही सिद्ध होते हैं। एक का प्रभाव दूसरी से कट जाता है, रोगी व वैद्य दोनों के हाथ निराशा लगती है। पाँच मूल आधारों में से डॉ० नादकर्णी प्रभाव को प्रमुख मानते हुए कहते हैं कि अन्य चार पक्ष कमजोर होते हुए भी प्रभाव की तीव्रता के कारण एक ही औषधि वह लाभ दिखा देती है जो अन्य सम्मिश्रणों से दब जाते हैं। आँवले का उदाहरण देते हुए वे कहते हैं कि यह रस, गुण, वीर्य, विपाक में दुर्बल पड़ता है, पर अकेला ग्रहण किए जाने पर त्रिदोषों को दूर करने वाला होता है। इसके प्रभाव पक्ष की महत्ता के कारण यह अन्य औषधियों की तुलना में अकेला कहीं अधिक लाभदायक सिद्ध होता है। यही गुण किसी और औषधि में भी हो सकते हैं, पर प्रभाव कम होने व सम्मिश्रण के कारण उनका उपयोग उन रोग-विशेषों में नहीं हो पाता। इस विषय पर चरक सूत्र में तथा पं० शिव शर्मा जैसे निष्णात आयुर्वेदाचार्य के अभिमत एक औषधि के पक्ष में ही हैं।

आयुर्वेद के विकास का इतिहास देखने पर ज्ञात होता है कि वैदिक काल में वनौषधियों का उपयोग उनके प्राकृतिक रूप में ही होता था। आसव-अरिष्ट आदि का प्रयोग बाद में आरंभ हुआ। धातुओं तक को उनके प्राकृतिक रूप में ही प्रयुक्त किया जाता था। उदाहरणार्थ किसी धातु को गरम करके बुझाना और उस पानी को पी लेना। रसों—पारद योगों आदि का इतिहास मात्र नौ सौ वर्ष पुराना है। वस्तुतः आर्षकाल को ही आयुर्वेद का स्वर्ण युग माना जाता है। आचार्य धन्वंतरि से प्रारंभ होकर यह चरक ऋषि पर समाप्त होता है। अथर्ववेद में १०० सूक्त मात्र आयुर्विज्ञान पर हैं, जिनमें रोग निर्णय, चिकित्सा, लक्षण, शरीर तथा औषधियों का वर्णन है। वैसे तो चारों वेदों में थोड़ा-थोड़ा वर्णन आयुर्विज्ञान संबंधी है, पर मूलतः अथर्ववेद ही आयुर्वेद का

Free Read/Download & Order 3000+ books authored by Yugrishi Pt. Shriram Sharma Acharya(Founder of All World Gayatri Pariwar) on all aspects of life in Hindi, Gujarati, English, Marathi & other languages at
www.vicharkrantibooks.org http://literature.awgp.org

जनक माना जाता है—**इह खलु आयुर्वेदमष्टांगमुपांगमथर्ववेदस्य।** इसी कारण आज की प्रचलित आयुर्वेदिक औषधियों को ही प्रधान न मानकर उनके मूल स्रोत को देखा जाना जरूरी है, जहाँ उन्हें उनके प्राकृतिक स्वरूप में ही ग्रहण किए जाने का वर्णन किया गया है। शेष तो मध्यकाल में जोड़े गए विधान हैं, जिनमें सभी संहिताएँ व निघंटु आ जाते हैं।

मध्यकाल में लंबे-लंबे नुसखों का जो प्रचलन चला, उसने वैद्यों के अहं का पोषण भले ही किया हो, रोगी को लाभ नहीं मिला तथा लोगों का विश्वास धीरे-धीरे विनिर्मित औषधियों पर से उठता चला गया। इनमें सभी गलत थे, यह नहीं कहा जा रहा है। कुछ योग तो विज्ञान सम्मत विधि-विधान से कल्पित कर तैयार किए गए थे, पर अधिकांश में ऐसी अलभ्य औषधियों के नाम जोड़ दिए गए जिनके न मिलने पर योग तो तैयार हो नहीं पाता था, रोगी को लाभ न मिलने का कारण समझाने का सूत्र अवश्य वैद्यों को मिल जाता था। इस प्रचलन में यह भुला दिया गया कि सम्मिश्रण से श्रेष्ठ औषधि है एवं वास्तविक सामर्थ्य तो उनके सक्रिय संघटकों में छिपी पड़ी है। ताजी सूक्ष्म चूर्ण की हुई औषधि कैसे तुरंत असर दिखाती है यह घरेलू चिकित्सा करने वाली घर की महिलाएँ जानती हैं, जिन्होंने किसी मेडीकल कॉलेज में नहीं, अपने ही बुजुर्गों से यह शिक्षण पाया है।

एकौषधि के संबंध में सर्वाधिक मंथन होम्योपैथी के साहित्य में मिलता है। डॉ० सैमुअल हैनीमेन ने बड़े आक्रोशपूर्ण शब्दों में अपने समय के चिकित्सकों के सम्मिश्रण फार्मूले का विरोध करते हुए 'क्रॉनिक डीसिसेज' नामक पुस्तक में लिखा था कि जीर्ण रोगों की उत्पत्ति का प्रधान कारण ही अनावश्यक दवाओं का प्रयोग है। यदि एक समय में एक ही औषधि दी जाए तो वह अधिक लाभ पहुँचा

Free Read/Download & Order 3000+ books authored by Yugrishi Pt. Shriram Sharma Acharya(Founder of All World Gayatri Pariwar) on all aspects of life in Hindi, Gujarati, English, Marathi & other languages at
www.vicharkrantibooks.org http://literature.awgp.org

सकती है। इसलिए होम्योपैथी में पहले शरीर में प्रविष्ट औषधियों के प्रभाव का शमन किया जाता है, फिर रोग विशेष को लक्ष्य करके औषधि दी जाती है। डॉ० हैनीमेन के समकालीन डॉ० बोनिंगहासन, डॉ० ह्यूजेस, बाद में डॉ० कैण्ट एवं डॉ० फैरिंगटन ने भी उनका समर्थन करते हुए एक औषधि को न्यूनतम अपेक्षित मात्रा में दिया जाना ही चिकित्सा का मूल आधार माना है। यहाँ समर्थन किसी पैथी विशेष का नहीं, उन मूलभूत सिद्धांतों का किया जा रहा है, जो किसी रोग के कारण, निदान व चिकित्सा की मूल पृष्ठभूमि बनते हैं। वस्तुतः एक रोग में एक ही समय में एक ही विकार जन्म लेता है एवं वही सारे लक्षणों का जन्मदाता होता है। यदि सब लक्षणों के लिए अलग-अलग दवा दी जाएगी तो फिर आज की एलोपैथी को व लक्षण सुनकर चिकित्सा करने वाली आधुनिक होम्योपैथी को ही सर्वश्रेष्ठ मान लेना चाहिए। हर लक्षण के पीछे भागना छोड़कर प्रत्येक के लिए पृथक औषधि के सिद्धांत को छोड़ दिया जाए तो न केवल सम्मिश्रण से बचा जा सकता है, बल्कि रोगी के कई जटिल रोगों से ग्रसित होने पर भावी संभावना को भी तुरंत लगाम लगाई जा सकती है।

एलोपैथी (आधुनिक चिकित्सा पद्धति) में एक से अधिक औषधियाँ मिलाने से जो अगणित समस्याएँ उठ खड़ी होती हैं, उनके अध्ययन का 'ड्रग इन्कम्फर्टीबिलिटी' नामक ग्रंथ में विस्तृत वर्णन किया गया है। डॉ० इरविन मार्टिन ने अपनी बहुचर्चित पुस्तक 'हेजार्ड्स ऑफ मेडीकेशन' (औषधि सेवन करने के दुष्परिणाम) में लगभग दो सौ पृष्ठों में विभिन्न औषधियों के परस्पर मिलने से होने वाली शरीरगत क्रियाओं व उनसे संस्थान को होने वाली हानि पर विस्तृत सारिणी दी है। इसमें उन्होंने अनेक दवाओं के मिलने से होने वाली सहस्रों संभावनाओं पर प्रकाश डाला है। सबका सार-संक्षेप में देते हुए

Free Read/Download & Order 3000+ books authored by Yugrishi Pt. Shriram Sharma Acharya(Founder of All World Gayatri Pariwar) on all aspects of life in Hindi, Gujarati, English, Marathi & other languages at
www.vicharkrantibooks.org http://literature.awgp.org

लिखते हैं कि हर चिकित्सक को एक समय में दो या अधिक औषधि देने से पूर्व सोच लेना चाहिए कि ये परस्पर मिलकर शरीर में क्या हानि पहुँचा सकती है। चिकित्सक यह निर्णय नहीं ले पाता कि नए लक्षण रोग के विस्तार के कारण हैं या औषधि के कारण। कई बार ऊहापोह में पड़ा चिकित्सक कुछ दवाएँ नए लक्षणों को दबाने के लिए और जोड़ देता है। नतीजा रोगी को भुगतना पड़ता है। इसी कारण एलोपैथिक चिकित्सा प्रणाली में आएट्रोजेनिक मेडीसिन (औषधिजन्य रोगों का विज्ञान) को विस्तार से पढ़ाया जाता है, ताकि स्नातकोत्तर स्तर के निष्णात चिकित्सक यह गलती न कर बैठें।

अमेरिका की एफ० डी० ए० संस्था द्वारा गठित एक समिति की रिपोर्टानुसार एक से अधिक औषधियाँ खिलाने पर तीन प्रकार के दुष्प्रभाव हो सकते हैं—

(१) भौतिक, (२) रासायनिक, (३) भैषजीय।

भौतिक दुष्प्रभावों में औषधियों का परस्पर रूप बिगड़ जाना या एक एवं एक से अधिक सक्रिय संघटकों का परस्पर अवक्षेप (प्रेसिपिटेट) हो जाना माना जाता है। रासायनिक वर्ग में एक से अधिक रसायन परस्पर क्रिया करके ऐसे पदार्थों को जन्म देते हैं, जो प्रभावहीन होकर निष्कासित हो जाते हैं अथवा ऊतकों को हानि पहुँचाकर जीवकोश में विकृति, डी० एन० ए० में परिवर्तन तथा कैंसर की उत्पत्ति जैसे परिणामों का कारण बनते हैं। भैषजीय दुष्प्रभावों का अर्थ है—रोगी के शरीर में एक औषधि का दूसरी के प्रभाव को निरस्त कर देना, बढ़ा देना अथवा नए रोगों को या साइड इफेक्ट्स को जन्म दे देना। इस सभी को अवांछनीय ठहराते हुए समिति ने यही निष्कर्ष निकाला है कि किसी भी स्थिति में एक से अधिक औषधियों का प्रयोग न किया जाए।

Free Read/Download & Order 3000+ books authored by Yugrishi Pt. Shriram Sharma Acharya(Founder of All World Gayatri Pariwar) on all aspects of life in Hindi, Gujarati, English, Marathi & other languages at
www.vicharkrantibooks.org http://literature.awgp.org

होम्योपैथी व एलोपैथी के ऊपर प्रस्तुत किए अभिमतों के बाद यही तथ्य यदि वनौषधियों पर लागू किया जाए तो वह कितना तर्क सम्मत विज्ञानसंगत है तथा आर्ष वचनों की पुष्टि करता है, यह भी देखा जाना चाहिए। वैदिक ग्रंथों के अनुशीलन व आयुर्विज्ञान के प्रसिद्ध वैद्यों के अभिमतों का विवेचन करने पर भी कुछ इसी प्रकार के निष्कर्ष निकलते हैं।

प्रत्येक जड़ी-बूटी अपने आप में एक पूर्ण जैविक तंत्र (काम्प्रेहेन्सिव बायोलॉजिकल सिस्टम) हैं। इनमें सैकड़ों एन्जाइम्स, हारमोन्स, वसा, लवण, ग्लाइकोसाइड्स, एल्केलाइड्स, विटामिन्स, फ्री अमीनो एसिड्स, टैनिन आदि पदार्थ होते हैं। रसायन शास्त्र के सिद्धांत यही बताते हैं कि ये सभी पदार्थ परिवर्तनशील अवस्था में होते हैं व एक दूसरे को प्रभावित करते हैं। विभिन्न टैनिन्स अनेक एल्केलॉइड्स के साथ मिलकर एल्केलॉइड टैनिन कॉम्पलेक्स बनाते हैं और उनकी प्रभावी क्षमता को नष्ट ही कर देते हैं।

उदाहरण के तौर पर चिरायता, गिलोय, अडूसा, शंखपुष्पी, पुनर्नवा जैसी औषधियाँ ली जाएँ। चिरायता में टैनिन बिलकुल नहीं होते व शेष में नगण्य सी मात्रा में होते हैं। इन सभी में एल्केलॉइड्स या ग्लाइकोसाइड्स प्रधान सक्रिय पदार्थ के रूप में होते हैं। यदि इन्हें हरड़, नीम, आँवला, अशोक जैसी औषधियों के साथ खिला दिया जाए तो अधिकांश ग्लाइकोसाइड्स निष्क्रिय हो जाते हैं। ये सभी जटिल कार्बनिक यौगिकों के रूप में प्रेसीपिटेट (आक्षेपित) हो जाते हैं। दो लाभकारी औषधियों के सम्मिश्रण से बना क्वाथ गुणविहीन होकर रह जाता है। इसी प्रकार अश्वगंधा, अशोक जैसी लौह प्रधान तथा गोक्षुर जैसी कैल्शियम प्रधान औषधियों के साथ मिलकर उन्हें निष्प्रभावी बना देती हैं। प्राकृतिक स्थिति में धातु सक्रिय

Free Read/Download & Order 3000+ books authored by Yugrishi Pt. Shriram Sharma Acharya(Founder of All World Gayatri Pariwar) on all aspects of life in Hindi, Gujarati, English, Marathi & other languages at
www.vicharkrantibooks.org http://literature.awgp.org

रहती है पर सम्मिश्रण रासायनिक क्रिया को जन्म देकर औषधि को गुणविहीन कर देता है।

वनौषधि सम्मिश्रण में एक और बड़ी समस्या है, उनमें एन्जाइम्स की प्रचुर संख्या पर स्वल्प मात्रा में होना। एन्जाइम्स अल्प मात्रा में ही अतिसक्रिय होते हैं एवं थोड़े से हेर-फेर से ही औषधि की संरचना में बहुत बड़ा परिवर्तन हो सकता है। यहाँ तक कि एक समय विशेष में तोड़े जाने, अंग विशेष के प्रयुक्त होने तथा समय क्षेप के साथ गुण-धर्म नष्ट होने के पीछे भी एन्जाइम्स की प्रधान भूमिका होती है। कुछ वनौषधियों में परस्पर विपरीत दिशा में सक्रिय एन्जाइम्स होते हैं जो एकदूसरे के जैविक प्रभाव को निरस्त कर देते हैं। इसका उदाहरण देते हुए डॉ० नादकर्णी लिखते हैं कि नीम में ऑक्सीडेस एन्जाइम तंत्र अच्छी विकसित अवस्था में होता है व यही उसकी जीवाणुनाशी क्षमता का मूल कारण है। दूसरी ओर आँवला स्वयं में एंटी ऑक्सीडेस एन्जाइम तंत्र को सँजोए होता है जो आँवले के विटामिन सी व अन्य यौगिकों के सक्रिय होने में महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाता है। किसी कारणवश यदि इन दोनों को संयुक्त रूप से देने की स्थिति आए तो दोनों का ही निष्प्रभावी होना एक स्पष्ट वैज्ञानिक तथ्य है।

हलदी में ट्रिप्सिन तंत्र की सक्रियता समाप्त करने वाला, बेल में 'टायरोसिनेस एन्जाइम' तंत्र की सक्रियता बढ़ाने वाला सक्रिय संघटक होता है। कौन सी जड़ी-बूटी किस व्यक्ति के अंदर प्रविष्ट होकर कैसे निष्क्रिय हो जाएगी, यह इन रासायनिक विवेचनों से स्पष्ट होता है। यदि सभी उपलब्ध आयुर्वेदिक योगों का जिनमें चार से लेकर तीस तक विभिन्न औषधियाँ होती हैं, अध्ययन किया जाए तो रासायनिक विश्लेषण के आधार पर सिद्ध किया जा सकता है कि सम्मिश्रण की तुलना में एक अकेली औषधि का प्रयोग अधिक लाभदायक है।

Free Read/Download & Order 3000+ books authored by Yugrishi Pt. Shriram Sharma Acharya(Founder of All World Gayatri Pariwar) on all aspects of life in Hindi, Gujarati, English, Marathi & other languages at
www.vicharkrantibooks.org http://literature.awgp.org

संयोग से अब लगभग सभी वनौषधियों के रासायनिक विश्लेषण उपलब्ध हैं। यह फाइटोकेमिस्ट्री, मेडीसिनल प्लांटकेमिस्ट्री, बायोकेमिस्ट्री के विशेषज्ञों का कर्त्तव्य है कि वे इनकी परस्पर क्रिया से होने वाले परिणामों से चिकित्सक संप्रदाय को अवगत कराएँ। हो सकता है कुछ योग सहयोगी हों व संभव है कुछ में थोड़ा संशोधन कर उन्हें और अधिक प्रभावकारी बनाया जा सकता हो। अनुभव सिद्ध योगों के स्थान पर प्रयोगशाला में परीक्षित योग ही प्रयुक्त हों अथवा अपनी प्राकृतिक अवस्था में उपलब्ध सूक्ष्मीकृत अकेली एक औषधि, यही इस प्रतिपादन का सार है। इससे आयुर्वेदिक औषधियों पर होने वाला व्यय तो घटेगा ही, वैद्यों को भी योगों से बचकर निरापद औषधि सेवन को बढ़ावा देने में सहायता मिलेगी। एक औषधि के प्रभाव को वैज्ञानिक तथ्यों के प्रकाश में सही प्रकार जाँच-परख कर नए सिरे से चिकित्सा विज्ञान का ढाँचा खड़ा किया जा सकता है। इससे आयुर्वेद की गरिमा बढ़ेगी, घटेगी नहीं; यह सुनिश्चित है।

सूक्ष्मीकरण प्रक्रिया एवं अनुपान भेद से चिकित्सा

एकौषधि चिकित्सा विज्ञान में प्रस्तुत विवेचन के अंतर्गत औषधि को हरे ताजे रूप में या सूखे चूर्ण के रूप में प्रयुक्त किए जाने का विधान बताया गया है। हरे ताजे रूप में औषधि स्थानीय लेप के रूप में प्रयुक्त हो सकती है तथा मुँह से भी ग्रहण की जा सकती है, पर चूर्ण रूप दिए जाने की ही व्यवस्था अधिक सरल रह सकती है, क्योंकि हर स्थान पर अनुपलब्ध औषधियाँ इसी रूप में रोगी व चिकित्सक तक पहुँचाना हमारा लक्ष्य है, दूसरे जिस प्रकार खरल से चूर्ण किए जाने का विधान है, उसमें सूक्ष्मीकरण की विशेषता जुड़ जाने से औषधियों की प्रभाव क्षमता में और भी अधिक वृद्धि होने का सुनिश्चित तथ्य भी जुड़ा हुआ है।



Free Read/Download & Order 3000+ books authored by Yugrishi Pt. Shriram Sharma Acharya(Founder of All World Gayatri Pariwar) on all aspects of life in Hindi, Gujarati, English, Marathi & other languages at
www.vicharkrantibooks.org http://literature.awgp.org

सूक्ष्मीकरण का विज्ञान

आयुर्वेद में खरल में दवा को पीसने व इससे उन औषधियों के गुण बढ़ने का विवेचन बड़े विस्तार से हुआ है। साधारण पीपल की तुलना में चौंसठ पहर तक पीसी गई सूक्ष्मीकृत 'चौंसठ पहरी पीपल' को अत्यधिक गुणकारी माना गया है। 'डीशेन' की औषधियाँ इसी आधार पर बनाई जाती हैं। घुटाई-पिसाई से किसी भी औषधि के अणु-परमाणु को कैसे सूक्ष्मीकृत किया व प्रभावशाली बनाया जा सकता है, इस तथ्य की ही प्रधानता चूर्ण के रूप में जड़ी-बूटी चिकित्सा में है। यूनानी व आयुर्वेदिक योगों में भी खरलीकरण की व्याख्या इसी प्रयोजन से की जाती है।

पाश्चात्य जगत में इसका प्रयोग करने वालों में डॉ० हैनीमेन को अग्रणी माना जाता है, जिन्होंने बाद में लक्षणों के आधार पर होम्योपैथी चिकित्सा को जन्म दिया। उन्होंने बताया कि यदि दवा को अच्छी तरह पीस दिया जाए तो वह स्वल्प मात्रा में ही अधिक लाभकारी सिद्ध होगी व कोई अवांछनीय प्रभाव भी पैदा नहीं करेगी। इस प्रक्रिया को उन्होंने ट्रिपुरेशन, एटोमाइजेशन और पोटेंशिएटाइजेशन जैसे नाम दिए। वस्तुतः इन सबसे भाव वही निकलता है—सूक्ष्मीकरण। दवा को तनुकृत (डाइल्यूट) करते चले जाने से वे और भी अधिक प्रभावी हो जाती हैं। इस तथ्य को नकारते हुए आधुनिक शोधकर्त्ता कहते हैं कि वस्तुतः ऐसी औषधियों की सफलता का मुख्य कारण है, उनका खरलीकरण-डाइनेमाइजेशन। इससे सूक्ष्म अणु और भी अधिक सूक्ष्मतम हो जाते हैं। अपनी पुस्तक 'सम रीसेंट रिसर्चेज एंड एडवांटेज इन होम्योपैथी' में डॉ० पी० शंकरन लिखते हैं—"इन्फ्रारेड स्पेक्ट्रोस्कोपी से कुछ सफल

Free Read/Download & Order 3000+ books authored by Yugrishi Pt. Shriram Sharma Acharya(Founder of All World Gayatri Pariwar) on all aspects of life in Hindi, Gujarati, English, Marathi & other languages at
www.vicharkrantibooks.org http://literature.awgp.org

औषधियों का अध्ययन करने पर यह पाया गया है कि उनकी सक्रियता का मूल कारण था, उन्हें द्रव्य रूप देने के पूर्व अच्छी तरह घोंटकर पीसा जाना।" इसे उन्होंने 'झकझोरा जाना' कहा है।

डॉ० शुशलर की बायोकेमिक चिकित्सा पद्धति में भी मात्र बारह लवणों के आधार पर उन्हें सूक्ष्मीकृत रूप में देकर शरीर की कमियों को पूरा करने की चेष्टा की जाती है। उनके अनुसार कुछ माइक्रोग्राम लवण की मात्रा भली-भाँति घोंटी जाने पर इतनी सक्रिय हो जाती है कि वह सारे शरीर को समावस्था में लाने में समर्थ बन रोगी को स्वस्थ करने में सहायक सिद्ध होती है। चिकित्सा पद्धति कितनी सफल-असफल है, इस विवाद में न पड़कर यहाँ मात्र उस सिद्धांत की चर्चा की जा रही है, जिसके माध्यम से औषधि को सूक्ष्मीकृत व सक्रिय बनाया जाता है। एलोपैथी में भी अब 'माइक्रोफाइंड' औषधियाँ दिए जाने की वैज्ञानिक स्तर पर चर्चाएँ चल पड़ी हैं तथा 'एस्पिरिन' आदि औषधियों व 'स्लोरिलीज कैप्सूल' के माध्यम से प्रयोग भी हुए हैं।

खरलीकरण को ही क्यों प्रस्तुत चिकित्सा पद्धति में प्रधानता दी गई, इसके कुछ कारण प्रारंभ में बताए गए हैं। यदि इस प्रक्रिया के वैज्ञानिक पक्ष पर थोड़ा विवेचन कर लें तो बात वजनदार और तर्कसम्मत बन जाती है। मेडीसिनल प्लांट केमिस्ट्री व जैव रसायनशास्त्र में हुई शोधों से कई महत्त्वपूर्ण तथ्य हाथ लगते हैं।

वैज्ञानिकों का कथन है कि खरलीकरण प्रक्रिया से काष्ठ औषधियाँ बहुत ही सूक्ष्म कणों में विभक्त हो जाती हैं, जिनके तीन प्रमुख गुण होते हैं—(१) प्रचंड गति, (२) क्षेत्रफल में विशालवृद्धि, (३) अंतः में विद्युतीय परिवर्तन से आयनीकरण की प्रक्रिया।

गति क्यों तेज हो जाती है, इसे समझाते हुए वैज्ञानिक बताते हैं कि खरल करने से वह पदार्थ 'कोलाइडल अवस्था' में परिवर्तित

Free Read/Download & Order 3000+ books authored by Yugrishi Pt. Shriram Sharma Acharya(Founder of All World Gayatri Pariwar) on all aspects of life in Hindi, Gujarati, English, Marathi & other languages at
www.vicharkrantibooks.org http://literature.awgp.org

हो जाता है। यह रूपांतरण कणों को अतिसक्रिय बना देता है। कोलाइडल कण एक सेंटीमीटर के एक लाख से लेकर एक करोड़वें भाग तक छोटे होते हैं। ये अविचल चलते रहते हैं व इनकी गति अत्यधिक तीव्र होती है। एक सेकंड में एक पर घात उनतीस ($१^{२९}$) बार ये कण अपनी गति की दिशा में पलटते हैं। यह गति ही इन्हें शरीर में तेजी से फैलने व औषधि की जैव सक्रियता बढ़ाने में सहायक सिद्ध होती है। गुरुत्वाकर्षण की शक्ति से मुक्त ये कण कोलाइडल स्थिति में अधिक सक्रिय बन जाते हैं। औषधि की प्राणशक्ति बढ़ जाती है व जिस स्थान पर जाकर उन्हें सक्रिय होना है, वे मुक्तावस्था में तुरंत पहुँच जाते हैं। इसे वैज्ञानिकों ने आधुनिक उपकरणों की मदद से 'आयोनिक टैनिंग' के बाद होते पाया है व वे आश्चर्यचकित भी हुए हैं।

क्षेत्रफल की वृद्धि के विषय में 'सारनेक लेबोरेटरी न्यूयार्क' के डॉ० यंग ने कई प्रयोग किए हैं व पाया है कि कणों का माप सूक्ष्मीकरण से घटता चला जाता है व उसी अनुपात में क्षेत्रफल में गुणात्मक वृद्धि होती चली जाती है। यह एक सुविदित तथ्य है कि किसी भी औषधीय कण का सक्रिय भाग उसकी सतह ही होती है। जैसे-जैसे ये सूक्ष्म होते चले जाते हैं, इनका अधिकाधिक भाग बाह्य वातावरण के संपर्क में आता है व सक्रियता बढ़ जाती है।

ऊपर के दोनों परिवर्तनों की तुलना में तीसरा विद्युतीय परिवर्तन कहीं अधिक महत्त्वपूर्ण है। डाइनेमाइजेशन प्रक्रिया जो खरलीकरण के बाद होती समझी जाती है और कुछ नहीं विद्युत्सक्रियता में वृद्धि ही है। आणविक व परमाणविक स्तर पर विद्युतीय शक्ति सक्रिय हो जाती है व यही औषधि कणों को चीरकर जीवकोशों में प्रवेश करने (पेनिट्रेशन) का आधार बनती है।

Free Read/Download & Order 3000+ books authored by Yugrishi Pt. Shriram Sharma Acharya(Founder of All World Gayatri Pariwar) on all aspects of life in Hindi, Gujarati, English, Marathi & other languages at
www.vicharkrantibooks.org http://literature.awgp.org

फ्रांस के डॉक्टर गे एवं वायरान ने पाया है कि सूक्ष्मीकृत कणों की विद्युतीय प्रतिबाधा में (इलेक्ट्रिकल इम्पीनेन्स) अत्यधिक वृद्धि होती है व इस अब तक अज्ञात भौतिक शक्ति को औषधि की परवैद्युत सामर्थ्य (डाइलेक्ट्रिक केपेसिटी) के रूप में नापा जा सकता है। इंग्लैंड के डॉ० डब्ल्यू० ई० बायड ने अपने प्रयोगों द्वारा यह प्रमाणित कर दिखाया है कि खरलीकरण प्रक्रिया में औषधि की 'लैटीस' बनावट छोटे-छोटे टुकड़ों में टूट जाती है। उन्मुक्त हुई लैटीस ऊर्जा विद्युतीय शक्ति के रूप में उपलब्ध रहती है। पदार्थ के स्थूल रूप में छिपी यह शक्ति घुटाई प्रक्रिया के करण ही अपने सही आणविक स्वरूप में प्रकट हो पाती है। वे कहते हैं कि इस स्वरूप में इन कणों का 'इन्फ्रारेड एब्सार्वेशन स्पेक्ट्रम' पद्धति के प्रयोग द्वारा इनकी क्षमता सक्रियता में वृद्धि को अब अमेरिकन वैज्ञानिक श्री स्मिथ एवं बोरिक भी प्रयोगशाला में सिद्ध कर चुके हैं। उन्होंने इसके अतिरिक्त खरलीकरण प्रक्रिया के बाद १.५ से ०.५ मिलीवोल्ट का विद्युत विभव कोलाइडल कणों की ऊपरी सतह पर पाया है।

इस प्रकार विज्ञान की दृष्टि से भी व शास्त्रोक्त सभी प्रतिपादनों की कसौटी पर भी परखे जाने पर सूक्ष्मीकरण प्रक्रिया खरी उतरती है। चूर्ण रूप में बिना किसी सम्मिश्रण के अनुपान के तीन-चार साधनों के माध्यम से ग्रहण किए जाने पर औषधि परिपाक अच्छी तरह व तेजी से होता है।



Free Read/Download & Order 3000+ books authored by Yugrishi Pt. Shriram Sharma Acharya(Founder of All World Gayatri Pariwar) on all aspects of life in Hindi, Gujarati, English, Marathi & other languages at
www.vicharkrantibooks.org http://literature.awgp.org

अनुपान भेद से चिकित्सा का तत्त्वज्ञान

अनुपान वे पदार्थ कहे जाते हैं जो औषधि के माध्यम या वाहक के नाते रोगी को अनिवार्यतः लेने को कहा जाता है। जल, दूध, मधु जैसे तरल पदार्थों को 'वेहीकल' मानकर अनुपान के रूप में अक्सर प्रयुक्त किया जाता है। औषधिवाहक के गुण तो सौंफ, शुंठी, हरिद्रा आदि के ताजे स्वरस एवं अन्य औषधियों में भी होते हैं, पर प्रस्तुत पद्धति में उन्हीं को अनुपान के रूप में प्रयुक्त किया जा रहा है जो औषधि की क्षमता को प्रखर व ग्रहण करने की सामर्थ्य बढ़ा देते हैं। अनुपान अन्य अर्थों में अर्क, क्वाथ आदि की तरह भी प्रयुक्त हो सकता है, पर जल ठंढा या गरम, दुग्ध एवं मधु जैसे सरल सर्वोपलब्ध तरल माध्यमों को ही औषधिवाहक की तरह प्रयुक्त किया जाता है।

दुग्ध अनुपान के रूप में

दूध एक सुपाच्य एवं स्वयं में पूर्ण आहार है। किन्हीं-किन्हीं औषधियों के साथ प्रयुक्त होने पर यह उनकी क्षमता व प्रभाव को कई गुना बढ़ा देता है। दूध में पाए जाने वाले एन्जाइम्स तथा वसा के छोटे-छोटे कणों का घोल साथ में दी गई किसी भी औषधि को आसानी से घुल सकने व जीवकोशों में प्रवेश करने योग्य बना देता है। आई०सी०ए०आर० के प्रकाशन 'मिल्क प्रोटीन्स' के अनुसार अब तक दूध में कम से कम १२ एन्जाइम्स पहचान लिए गए हैं। इनका होना ही दूध के साथ लिए गए अन्य पदार्थों को सुपाच्य बना देता है। एल्केलाइन फॉस्फेटेस, एसिड फॉस्फेटेस, एल्डोलेस, एल्फा एमाइलेस, वीटाएमाइलेस कार्बोनिक एनाहाइड्रेस, केटेलेस, साइटोक्रोम-डी-रिडक्टेस इत्यादि

Free Read/Download & Order 3000+ books authored by Yugrishi Pt. Shriram Sharma Acharya(Founder of All World Gayatri Pariwar) on all aspects of life in Hindi, Gujarati, English, Marathi & other languages at
www.vicharkrantibooks.org http://literature.awgp.org

एन्जाइम्स लगभग सभी जातियों के कार्बनिक एवं अकार्बनिक यौगिकों को जड़ी-बूटियों के जटिल एल्केलाइडों-ग्लाइकोसाइडों को विखंडित करने की क्षमता रखते हैं। दूध का अनुपान निश्चित ही शरीर की सहायता को आगे आता है व औषधि को और ग्राह्य बना देता है। दूध उबला न हो, कच्चा ही हो जरूरी नहीं। गरम होने पर भी उसके विटामिन नष्ट हो सकते हैं, एन्जाइम्स नहीं।

गाय, भैंस व बकरी के दूध का तुलनात्मक अध्ययन भी किया गया है। अधिकांश विश्लेषणकर्त्ता मानते हैं कि गाय का दूध भैंस के दूध से ज्यादा श्रेष्ठ है। यह मात्र गौदुग्ध की शक्ति या पवित्रता ही के कारण नहीं, अपितु वैज्ञानिक दृष्टि से भी सही पाया गया है। बकरी का दूध गाय के दूध से अधिक सुपाच्य होते हुए भी रासायनिक संरचना की दृष्टि से नीचा ही ठहरता है।

दूध में विद्यमान वसा का कोलाइडल घोल सतह का क्षेत्रफल बढ़ जाने के कारण एन्जाइम्स की क्रियाशीलता को बढ़ा देता है। औषधि के कण दूध में मिलकर सूक्ष्मीकृत अवस्था में अंदर पहुँच जाते हैं और अपना प्रभाव दिखा पाने में समर्थ होते हैं।

मधु का अनुपान

फूलों के रसों का परिवर्द्धित स्वरूप ही मधु है जिसे मधुमक्खियाँ अपने पेट की विशेष थैली में जमा करती हैं। इस रस को बाद में वे और भी अधिक सक्रिय हारमोन्स-एन्जाइम्स प्रधान रस बनाकर छत्ते में जमा कर देती हैं। सांद्रता की गति इतनी तीव्र होती है कि मधु में मात्र दस प्रतिशत जल शेष रहता है। पौधों के फूलों तथा मक्खियों दोनों के ही जैव सक्रिय पदार्थों की शहद में प्रचुर मात्रा रहती है। ऐसे में औषधियों को शहद के साथ लेने से उनका पाचन व रक्त में अवशोषण शीघ्र संपन्न हो जाता है। मधु में लगभग ४५ प्रतिशत ग्लूकोज होता है

Free Read/Download & Order 3000+ books authored by Yugrishi Pt. Shriram Sharma Acharya(Founder of All World Gayatri Pariwar) on all aspects of life in Hindi, Gujarati, English, Marathi & other languages at
www.vicharkrantibooks.org http://literature.awgp.org

तथा फ्रुक्टोस व सुक्रोस भी काफी मात्रा में होते हैं। इनसे रोगी को तुरंत ऊर्जा मिलती है। औषधि के प्रवेश की गति तो बढ़ती ही है, आचार्य सुश्रुत ने कहा है—

तद्युक्तं विविधैर्योगैर्विनिहन्त्यामयान् बहून्।
नाना द्रव्यात्तमकत्वाच्च योगवाहि परं मधु॥

मधु एक उत्तम योगवाही द्रव्य है। इसी प्रकार आचार्य प्रियव्रत शर्मा भी मधु को सर्वश्रेष्ठ प्रवाहिका द्रव्य मानते हुए अनुपान के रूप में उसे दिए जाने का समर्थन करते हैं। मधु को जल की सममात्रा में गर्मावस्था में तथा घृत के साथ सममात्रा में दिए जाने का निषेध किया गया है, क्योंकि यह रासायनिक क्रिया द्वारा अंदर विपरीत क्रिया कर सकता है।



प्रथम खंड की चयनित औषधियाँ

यष्टिमधु (मुलहठी)	निर्गुंडी
आँवला	सुंठी
हरड़	नीम
बिल्व	सारिवा
अडूसा	चिरायता
भारंगी	गिलोय
अर्जुन	अशोक
पुनर्नवा	गोक्षुर
शंखपुष्पी	शतावर
ब्राह्मी	अश्वगंधा

Free Read/Download & Order 3000+ books authored by Yugrishi Pt. Shriram Sharma Acharya(Founder of All World Gayatri Pariwar) on all aspects of life in Hindi, Gujarati, English, Marathi & other languages at
www.vicharkrantibooks.org http://literature.awgp.org

१. यष्टिमधु (मुलहठी)

ग्लिसराइजा ग्लेब्रा

कांड और मूल मधुर होने से मुलहठी को यष्टिमधु कहा जाता है। मधुक क्लीतक, जेठीमध तथा लिकोरिस इसके अन्य नाम हैं। इसका बहुवर्षायु क्षुप लगभग डेढ़ मीटर से दो मीटर ऊँचा होता है। जड़ें गोल-लंबी झुर्रीदार तथा फैली हुई होती हैं। जड़ व कांड से कई शाखाएँ निकलती हैं। पत्तियाँ संयुक्त व अंडाकार होती हैं, जिनके अग्रभाग नुकीले होते हैं। फली बारीक छोटी ढाई सेंटीमीटर लंबी चपटी होती है। जिसमें दो से लेकर पाँच तक वृक्काकार बीज होते हैं। इस वृक्ष का भूमिगत तना (कांड) तथा जड़ सुखाकर छिलका हटाकर या छिलके सहित अंग प्रयुक्त होता है।

उत्पत्ति स्थान—सामान्यतया मुलहठी ऊँचाई वाले स्थानों पर ही होती है। भारत में जम्मू-कश्मीर, देहरादून, सहारनपुर तक इसे लगाने में सफलता मिली है। वैसे बाजार में अरब, तुर्किस्तान, अफगानिस्तान से आई मुलहठी ही सामान्यतया पाई जाती है। पर ऊँचे स्थानों पर इसकी सफलता ने वनस्पति विज्ञानियों का ध्यान इसे हिमालय की तराई वाले खुश्क स्थानों पर पैदा करने की ओर आकर्षित किया है। बोटनिकल सर्वे ऑफ इंडिया इस दिशा में मसूरी, देहरादून फ्लोरा में इसे खोजने व उत्पन्न करने की ओर गतिशील है। इसी कारण अब यह विदेशी औषधि नहीं रही।

पहचान, मिलावट एवं सावधानियाँ—प्रयोज्य अंग व मुलहठी नाम से प्रचलित अंग इस वृक्ष की जड़ के लंबे टुकड़े का नाम है। इसमें मिलावट बहुत पाई जाती है। मुख्य मिलावट वेल्थ ऑफ इंडिया के

Free Read/Download & Order 3000+ books authored by Yugrishi Pt. Shriram Sharma Acharya(Founder of All World Gayatri Pariwar) on all aspects of life in Hindi, Gujarati, English, Marathi & other languages at
www.vicharkrantibooks.org http://literature.awgp.org

वैज्ञानिकों के अनुसार मंचूरियन मुलहठी की होती है, जो काफी तिक्त होती है। एक अन्य जड़ जो काफी मात्रा में इस सूखी औषधि के साथ मिलाई जाती है, व्यापारियों की भाषा में एवस प्रिकेटोरियम (रत्ती, घुमची या गुंजा के मूल व पत्र) कहलाती है। इंडियन जनरल ऑफ फार्मेसी के अनुसार वैज्ञानिकद्वय श्री हांडा व भादुरी ने भारतीय बाजारों में मुलहठी का सर्वेक्षण करने पर यही पाया कि इनमें से अधिकांश में मिलावट होती है, यह काफी पुरानी होने के कारण उपयोग योग्य भी नहीं रह जाती, भले ही स्वाद में मीठा होने के कारण वैद्य व अन्य ग्राहक उन्हें सही समझ बैठें।

असली मुलहठी अंदर से पीली, रेशेदार व हलकी गंध वाली होती है। ताजी जड़ तो मधुर होती है, पर सूखने पर कुछ तिक्त और अम्ल जैसे स्वाद की हो जाती है। विदेशी आयातित औषधियों में मिसरी मुलहठी को सर्वोत्तम माना गया है।

मुलहठी की अनुप्रस्थ काट करने पर उसके कटे हुए तल पर कुछ छल्ले स्पष्ट दिखाई देते हैं, जिन्हें कैंबियम रिंग्स कहते हैं। बाहर की ओर पीताभ रंग का वल्कल और अंदर की ओर पीला काष्ठी भाग होता है। वनौषधि निर्देशिका के लेखक के अनुसार उत्तम मुलहठी में किसी भी प्रकार की तिक्तता नहीं पाई जाती है। विद्वान लेखक लिखते हैं कि यदि मुलहठी को गंधकाम्ल (सल्फ्यूरिक एसिड ८० प्रतिशत V.V.) में भिगाया जाए तो वह शेष पीले रंग का हो जाता है। यह पहचान का एक आधार है।

रोपण एवं संरक्षण—इंडियन कौंसिल ऑफ एग्रीकल्चरल रिसर्च की 'हैंडबुक ऑफ एग्रीकल्चर' के अनुसार मुलहठी गर्म एवं खुश्क वातावरण माँगती है। पाला एवं भारी वर्षा इसे हानि पहुँचाते हैं। इससे इसकी वृद्धि की दर उत्तरोत्तर मंद पड़ती जाती है।

Free Read/Download & Order 3000+ books authored by Yugrishi Pt. Shriram Sharma Acharya(Founder of All World Gayatri Pariwar) on all aspects of life in Hindi, Gujarati, English, Marathi & other languages at
www.vicharkrantibooks.org http://literature.awgp.org

इसकी कटिंग वसंत के प्रारंभ में लगाई जानी चाहिए और इसे खाद की बहुतायत मिलनी चाहिए। जब फूल आने लगें तो फूल वाले तनों को काट दिया जाए अन्यथा औषधि गुणहीन हो जाती है। तीन-चार वर्ष बाद इसकी जड़ और जमीन के नीचे के तने को वर्षा के बाद शरद ऋतु में उखाड़ लिया जाता है। जड़ की छाल उखाड़कर उसे १५-२० सेंटीमीटर लंबे और १२ सेंटीमीटर व्यास के टुकड़ों में काट लेते हैं। इन टुकड़ों को ही बारी-बारी से छाया और धूप में सुखाया जाता है और औषधि उपयोग योग्य हो जाती है। इन जड़ों व भौमिक कांडों को मुख बंद डिब्बों में अनार्द्र शीतल स्थान में रखा जाना चाहिए।

कालावधि—जैसे किसी एलोपैथिक औषधि की गुण, धर्म समाप्ति की निश्चित तिथि या समय होता है, उसी प्रकार मुलहठी संग्रह होने की अवधि के बाद दो वर्ष तक उपयोगी रहती है। इसे ही इसकी वीर्य कालावधि कहा जाता है।

गुण-कर्म संबंधी विभिन्न मत—आचार्य सुश्रुत के अनुसार मुलहठी दाहनाशक, पिपासानाशक है। उन्होंने इसे सारिवादि गण में गिना है। आचार्य चरक इसे छर्दिनिग्रहण (एंटीएमेटिक) मानते हैं व इसका प्रधान प्रभाव मधुर रस तथा वात पित्त शामक होने के नाते अम्ल रस उत्पादक ग्रंथियों व स्नायु समूह पर मानते हैं। भावप्रकाश के अनुसार यह वमन नाशक और तृष्णाहर है। सभी आयुर्वेद के विद्वान इसे आमाशयगत अम्लता की कमी में सहायक तथा आमाशय के क्षत व्रणों के हीलिंग में सर्वाधिक उपयोगी मानते हैं। इसके अतिरिक्त यह जीवनीय रसायन एवं वल्य (पौष्टिक औषधि) भी है।

डॉ० जियों एन० कीव के अनुसार तिक्त या अम्लोत्तेजक पदार्थ के खा लेने पर होने वाली पेट की जलन, दरद आदि को दूर करने

Free Read/Download & Order 3000+ books authored by Yugrishi Pt. Shriram Sharma Acharya(Founder of All World Gayatri Pariwar) on all aspects of life in Hindi, Gujarati, English, Marathi & other languages at
www.vicharkrantibooks.org http://literature.awgp.org

में यह चमत्कारिक भूमिका निभाती है। अम्लजनित दुष्प्रभावों को दूर करने में यह क्षारों से भी अधिक अच्छा कार्य करती है। डॉ० चुनेकर भी इस मत से सहमत हैं कि इसके उपयोग से आमाशयिक अम्ल कम होकर शूल दूर होता है। आयुर्वेदिक मतानुसार भी यह वातानुलोमक होने से उदर शूल में, मधुर होने से आमाशयगत अम्लाधिक्य व अम्ल पित्त में लाभकर होती है। विशेषकर पेप्टिक अल्सर व इससे होने वाली रक्त की उल्टी (हिमेटेमेसिस) में यह अत्यंत लाभकारी पाई गई है।

विश्व के अनेक देशों के फार्मेकोपिया में यह अधिकृत दवा के रूप में प्रयुक्त होती है। दवा के औषधीय स्तर का ब्रिटिश फार्मेकोपिया (३०९/१९५३) तथा यूनाइटेड स्टेट्स फार्मेकोपिया (१७८/१९४२) में विस्तृत वर्णन मिलता है।

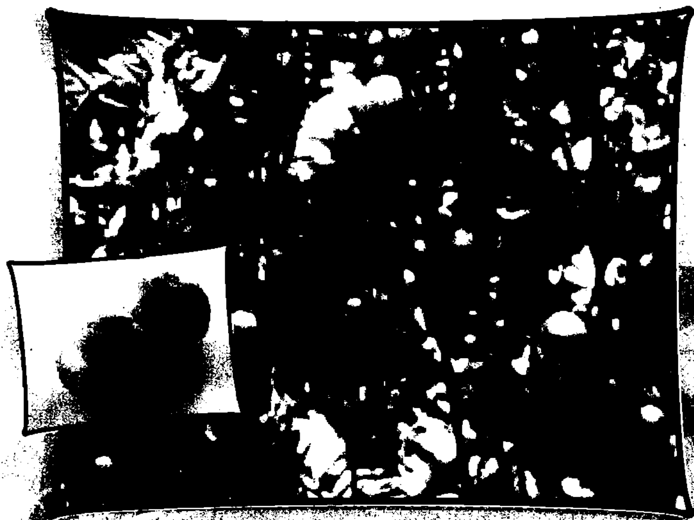
यूनानी में इसे गलूकुर्टीजा कहा जाता है। हिकमत में इसका उपयोग बहुत पुराना है। ग्रंथों में वर्णन मिलता है कि सावफरिस्तुस एवं दिसूकारीदुस जैसे प्राचीन हकीम भी इसे प्रयोग करते थे। इसे दूसरे दरजे में गरम और पहले दरजे में खुश्क माना गया है। यूनानी में मुलहठी अनेक पाचक योगों में डाली जाती है। यकृत रोगों में भी यह गुणकारी है।

रासायनिक संगठन—ताजा मुलहठी में ५० प्रतिशत जल होता है जो सुखाने पर मात्र दस प्रतिशत रह जाता है। इसका प्रधान घटक जिसके कारण यह मीठे स्वाद की होती है, ग्लिसराइजिन होता है जो ग्लिसराइजिक एसिड के रूप में विद्यमान होता है। यह साधारण शक्कर से भी ५० गुना अधिक मीठा होता है। यह संघटक पौधे के उन भागों में नहीं होता जो जमीन के ऊपर होते हैं। विभिन्न प्रजातियों में २ से १४ प्रतिशत तक की मात्रा इसकी होती है।

Free Read/Download & Order 3000+ books authored by Yugrishi Pt. Shriram Sharma Acharya(Founder of All World Gayatri Pariwar) on all aspects of life in Hindi, Gujarati, English, Marathi & other languages at
www.vicharkrantibooks.org http://literature.awgp.org



1. मुलहठी (ग्लिसराइजा ग्लेब्रा)

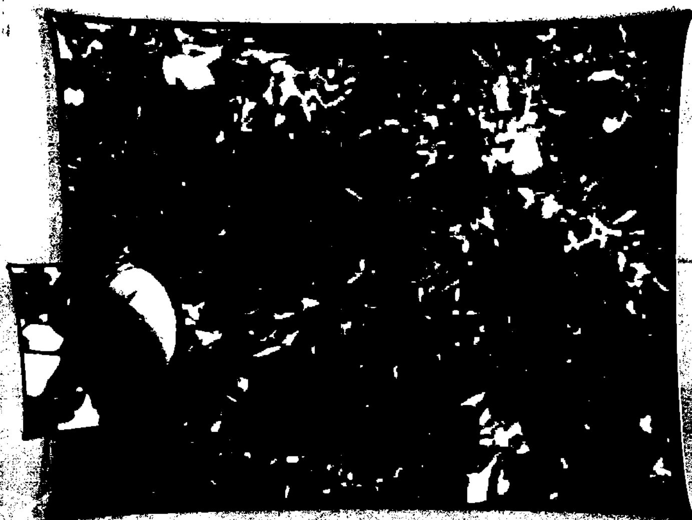


2. [illegible])

Free Read/Download & Order 3000+ books authored by Yugrishi Pt. Shriram Sharma Acharya(Founder of All World Gayatri Pariwar) on all aspects of life in Hindi, Gujarati, English, Marathi & other languages at
www.vicharkrantibooks.org http://literature.awgp.org



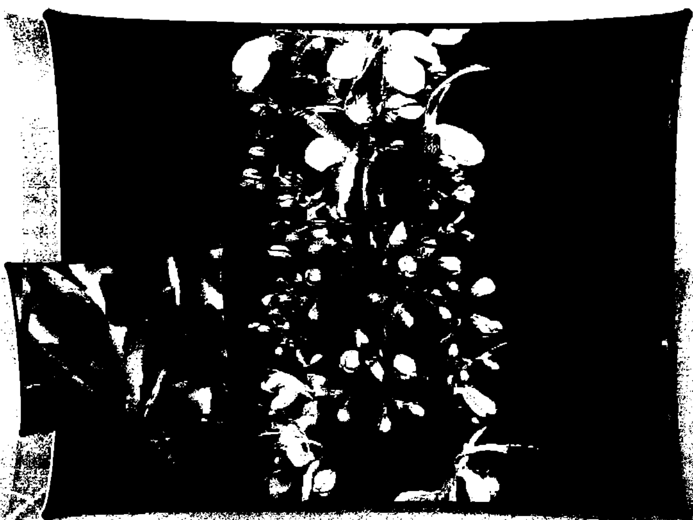
3. हरड़ (टर्मिनेलिया चेब्यूला)



Free Read/Download & Order 3000+ books authored by Yugrishi Pt. Shriram Sharma Acharya(Founder of All World Gayatri Pariwar) on all aspects of life in Hindi, Gujarati, English, Marathi & other languages at
www.vicharkrantibooks.org http://literature.awgp.org



5. अडूसा (एढेटोडा वेसाइका)

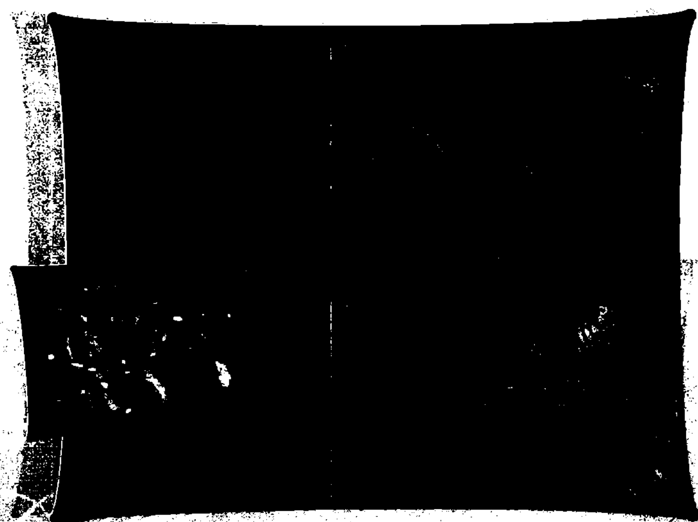


[illegible]

Free Read/Download & Order 3000+ books authored by Yugrishi Pt. Shriram Sharma Acharya(Founder of All World Gayatri Pariwar) on all aspects of life in Hindi, Gujarati, English, Marathi & other languages at
www.vicharkrantibooks.org http://literature.awgp.org



7. अर्जुन (टर्मिनेलिया अर्जुन)



8. पुनर्नवा (बोअरहविया डिफ्यूजा)

Free Read/Download & Order 3000+ books authored by Yugrishi Pt. Shriram Sharma Acharya(Founder of All World Gayatri Pariwar) on all aspects of life in Hindi, Gujarati, English, Marathi & other languages at
www.vicharkrantibooks.org http://literature.awgp.org



9. ब्राह्मी (बकोपा मोनिएरा)



10. [illegible]

Free Read/Download & Order 3000+ books authored by Yugrishi Pt. Shriram Sharma Acharya(Founder of All World Gayatri Pariwar) on all aspects of life in Hindi, Gujarati, English, Marathi & other languages at
www.vicharkrantibooks.org http://literature.awgp.org



11. निर्गुण्डी (वाइटेक्स निर्गुण्डी)





13. नीम (एजाडिरेक्टा इण्डिका)



[illegible]

Free Read/Download & Order 3000+ books authored by Yugrishi Pt. Shriram Sharma Acharya(Founder of All World Gayatri Pariwar) on all aspects of life in Hindi, Gujarati, English, Marathi & other languages at
www.vicharkrantibooks.org http://literature.awgp.org



15. चिरायता (सुआर्शिया चिरायता)

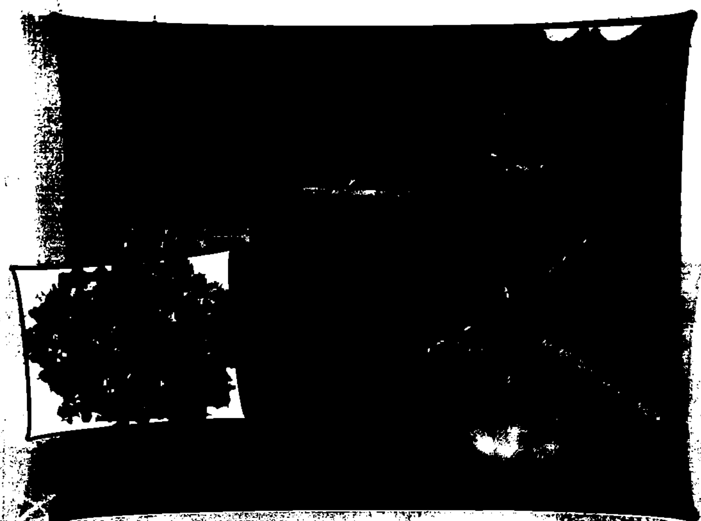


16. [redacted])

Free Read/Download & Order 3000+ books authored by Yugrishi Pt. Shriram Sharma Acharya(Founder of All World Gayatri Pariwar) on all aspects of life in Hindi, Gujarati, English, Marathi & other languages at
www.vicharkrantibooks.org http://literature.awgp.org



17. अशोक (साराका इण्डिका)



[illegible]

Free Read/Download & Order 3000+ books authored by Yugrishi Pt. Shriram Sharma Acharya(Founder of All World Gayatri Pariwar) on all aspects of life in Hindi, Gujarati, English, Marathi & other languages at
www.vicharkrantibooks.org http://literature.awgp.org



19. शतावर (एस्पेरेगस रेसिमोसस)

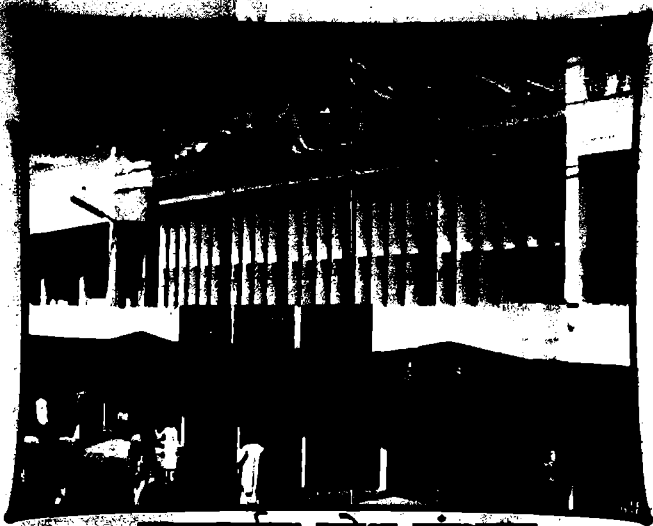


20. [illegible] ([illegible]िया [illegible])

Free Read/Download & Order 3000+ books authored by Yugrishi Pt. Shriram Sharma Acharya(Founder of All World Gayatri Pariwar) on all aspects of life in Hindi, Gujarati, English, Marathi & other languages at
www.vicharkrantibooks.org http://literature.awgp.org



Free Read/Download & Order 3000+ books authored by Yugrishi Pt. Shriram Sharma Acharya(Founder of All World Gayatri Pariwar) on all aspects of life in Hindi, Gujarati, English, Marathi & other languages at
www.vicharkrantibooks.org http://literature.awgp.org



ब्रह्मवर्चस शोध संस्थान

[illegible] प्रतिक्रियामुक्त उपचार पद्धति को पुनर्जीवित करने के उद्देश्य से चरक परंपरा के चिकित्सा सिद्धांतों का प्रचलन



वनौषधि कल्क

[illegible]

Free Read/Download & Order 3000+ books authored by Yugrishi Pt. Shriram Sharma Acharya(Founder of All World Gayatri Pariwar) on all aspects of life in Hindi, Gujarati, English, Marathi & other languages at
www.vicharkrantibooks.org http://literature.awgp.org

ग्लिसराइजिन के अतिरिक्त इसमें आइसो लिक्विरिटिन (एक प्रकार का ग्लाइकोसाइड), स्टेराइड इस्ट्रोजन (गर्भाशयोत्तेजक हारमोन), ग्लूकोज (लगभग ३.८ प्रतिशत), सुक्रोज (लगभग ३ से ७ प्रतिशत), रेसिन (२ से ४ प्रतिशत), स्टार्च (लगभग ३० प्रतिशत), उड़नशील तेल (०.०३ से ०.३५ प्रतिशत) आदि रसायन घटक भी होते हैं।

मुलहठी के यौगिक इतने मीठे होते हैं कि १ : २,००० की स्वल्पसांद्रता में भी इसकी मिठास पता लग जाती है। मुलहठी का पीला रंग ग्लाइकोसाइड आइसोलिक्विरिटिन के कारण है। यह २.२ प्रतिशत की मात्रा में होता है एवं मुख में विद्यमान लार ग्रंथियों को उत्तेजित कर भोज्य पदार्थों के पाचन परिपाक में सहायक सिद्ध होता है। मुलहठी का घनसत्व काले या लाल रंग के टुकड़ों में मिलता है व इसका उत्पत्ति स्थान अफगान प्रदेश होने के कारण सामान्यतया वहीं की भाषा में 'रब्बुस्सूस' नाम से पुकारते हैं।

आधुनिक मत एवं वैज्ञानिक प्रयोग निष्कर्ष—मुलहठी की जड़ का चूर्ण पेट के व्रणों व क्षतों पर (पेप्टिक अल्सर सिंड्रोम) लाभकारी प्रभाव डालता है। इससे वे जल्दी भरने लगते हैं। आधुनिक भेषज विशेषज्ञों ने 'डबल ब्लाइंड ट्रायल्स' के आधार पर यह सिद्ध कर दिया है कि प्राकृतिक रूप में मुलहठी चूर्ण गैस्ट्रिक व ड्यूओडनल दोनों प्रकार के अल्सरों के भरने की गति को बढ़ा देता है।

डी० आर० लारेन्स की क्लीनिकल फार्मेकालॉजी के अनुसार मुलहठी में पेप्टिक अल्सर को भरने के लिए उत्तरदायी पदार्थ एक ग्लाइकोसाइड है, जो ग्लिसराइजिन से संबद्ध है एवं दूसरा वह है जो मुलहठी में से एक अम्ल (एक ट्राईटर्पीन) बचता है, जिसे कार्बीक्सोलोन के नाम से एलोपैथिक चिकित्सा में प्रयुक्त किया जाता है। यह पदार्थ

Free Read/Download & Order 3000+ books authored by Yugrishi Pt. Shriram Sharma Acharya(Founder of All World Gayatri Pariwar) on all aspects of life in Hindi, Gujarati, English, Marathi & other languages at
www.vicharkrantibooks.org http://literature.awgp.org

आमाशय में श्लेष्मा की मात्रा बढ़ा देता है, जिससे अल्सर शीघ्र भर जाता है। यह प्रभाव स्थानीय होता है। जब अन्य अम्ल निरोधक एंटेसिड्स रोगी को लाभ नहीं दे पाते, तब मुलहठी इसमें बड़ी लाभकारी होती देखी गई है।

ग्लिसराइजिन निकाल देने पर बचे हुए निष्कर्ष (लिकोरिस डिग्लिसरीजनेटेड) में भी अनेकों प्रकार की उपयोगी भेषजीय सामर्थ्य पाई गई है। पेप्टिक अल्सर भरने के अतिरिक्त यह मरोड़ निवारण में भी मदद करता है। आमाशय व आँत में किसी भी कारण से होने वाली मरोड़ (स्पाज्म) इससे दूर हो जाती है। अब तक पाश्चात्य जगत में मुलहठी के आमाशय व आंत्रगत प्रभावों पर ३० रिपोर्टें प्रकाशित हो चुकी हैं। वैज्ञानिकों का कथन है कि इससे आमाशय की रस ग्रंथियों से ग्लाइकोप्रोटीन्स नामक रस का स्राव बढ़ जाता है जो जीवकोशों के जीवनकाल को भी बढ़ाता है, छोटी-मोटी टूट-फूट को भी तुरंत ही ठीक कर देता है।

धीरे-धीरे विस्तृत विश्लेषण से अब यह स्पष्ट हो गया है कि मुलहठी न केवल गैस्ट्रिक अल्सर वरन छोटी आँत के प्रारंभिक भाग ड्यूओडनल अल्सर में भी पूरी तरह से प्रभावशाली है। वस्तुतः यह दूसरी वाली व्याधि ही गंभीर व असाध्य मानी जाती रही है। परफोरेशन, स्तिनोसिस जैसी परिणतियाँ इसी रोग की होती हैं। इंडियन मेडीकल गजट (११३,६, १९७९) के अनुसार पूर्ण परीक्षित रोगियों को जब मुलहठी चूर्ण दिया गया तो ड्यूओडनल अल्सर के अपच हाइपर एसिडिटी आदि लक्षणों में भारी लाभ हुआ तथा एक्स-रे वोरियम परीक्षा द्वारा बाद में पाया गया कि घाव भरने में इतनी तेजी से काम करने वाली कोई और औषधि नहीं।

Free Read/Download & Order 3000+ books authored by Yugrishi Pt. Shriram Sharma Acharya(Founder of All World Gayatri Pariwar) on all aspects of life in Hindi, Gujarati, English, Marathi & other languages at
www.vicharkrantibooks.org http://literature.awgp.org

ग्राह्य अंग—जड़, भौमिक तना।

मात्रा—३ से ६ ग्राम चूर्ण एक बार में। दिन में दो या तीन बार। सत्व एक बार में आधे से एक ग्राम।

निर्धारण के अनुसार उपयोग—(१) रक्त वमन में दूध के साथ मुलहठी चूर्ण १ से ४ माशे की मात्रा में अथवा मधु के साथ।

(२) हिचकी में मुलहठी चूर्ण शहद में मिलाकर नाक में टपकाएँ तथा मुँह से ५ ग्राम दें।

(३) आमाशय के रोगों में मुलहठी चूर्ण-क्वाथ या स्वरस रूप में ५ मिली लीटर से १० मिली लीटर दिन में तीन बार। तृषा एवं उदरशूल में भी यह तुरंत लाभ देता है। विशेषकर आमाशयिक व्रणों में विशेष लाभकारी है। अम्लाधिक्य अम्ल पित्त को तो शांत करता ही है।

अन्य उपयोग—शिरो रोगों में पीड़ा निवारण हेतु, बुद्धिवर्द्धन के लिए, एनीमिया (रक्तल्पता) में, कास (कफ), श्वास (दमा) तथा लेरिंजाइटिस में फेफड़ों की ट्यूबरक्लोसिस में, वर्ण विकारों तथा दुर्बलता में पुष्टिवर्द्धक होने के नाते भी इसका प्रयोग किया जाता है।



Free Read/Download & Order 3000+ books authored by Yugrishi Pt. Shriram Sharma Acharya(Founder of All World Gayatri Pariwar) on all aspects of life in Hindi, Gujarati, English, Marathi & other languages at
www.vicharkrantibooks.org http://literature.awgp.org

२. आँवला (आमलकी)

एंबलीका ऑफीसिनेलिस या फिलेंथस एंबलिका

संस्कृत में आँवले को आमलकी, आदिफल, अमरफल, धात्री फल आदि नामों से संबोधित कर सम्मानित किया गया है। कहा जाता है कि इसी का प्रयोग करके च्यवन ऋषि पुन: यौवन को प्राप्त हुए थे, इसी कारण 'च्यवनप्राशावलेह' का यह मुख्य घटक भी है जो एक चिरपुरातन, सर्वप्रचलित योग है। भावप्रकाश निघंटु में ग्रंथकार ने सही ही लिखा है—

हरीतकीसमं धात्रीफलं किन्तु विशेषत:।
रक्तपित्तप्रमेहघ्नं परं वृष्यं रसायनम्॥

वानस्पतिक परिचय—आँवले का वृक्ष मध्यम ऊँचाई का लगभग २० से २५ फीट ऊँचाई का होता है। इसकी त्वचा पतली परत छोड़ती है। पत्ते लंबे, आयताकार, व्यवस्थित और इमली के पत्तों की तरह होते हैं। पीले रंग के फूल गुच्छों में लगते हैं। फल गोलाकार, ३/४ से १ इंच व्यास के मांसल, हरा तथा पकने पर रक्ताभ होते हैं। इनके बाह्य आवरण पर ६ रेखाएँ ६ खंडों की परिचायक होती हैं। अंदर का बीज षट्कोण आकार का होता है।

सामान्यतया फल अक्टूबर से अप्रैल तक मिलते हैं। मार्च-अप्रैल में नई पत्तियाँ आती हैं।

यह भारत में सर्वत्र पाया जाता है व ४५०० फीट की ऊँचाई तक भी होता है। आँवला दो प्रकार का होता है—

(१) **बागी**—बाग-बगीचों में होने वाला। इसके भी दो भेद होते हैं—**बीजू**-बीज से उत्पन्न होने वाला तथा **कलमी**—जिसकी

Free Read/Download & Order 3000+ books authored by Yugrishi Pt. Shriram Sharma Acharya(Founder of All World Gayatri Pariwar) on all aspects of life in Hindi, Gujarati, English, Marathi & other languages at
www.vicharkrantibooks.org http://literature.awgp.org

कलम लगाई जाती है। बीजू के फल छोटे होते हैं, कलमी के बहुत बड़े अमरूद तक के आकार के।

(२) **जंगली**—यह सर्वाधिक पाया जाता है। फल छोटे होते हैं। इसमें औषधीय गुण बागी की तुलना में अधिक होते हैं, ऐसा विभिन्न वैज्ञानिकों का मत है। जंगली के भी **वन्य** तथा **ग्राम्य** दो भेद हैं। वन्य आँवला छोटा एवं कठोर तथा ग्राम्य आँवला बड़ा, मृदु एवं नरम होता है।

शुद्धाशुद्ध परीक्षण एवं संरक्षण—आँवले के ताजे फल अखरोट के फलों के समान होते हैं। इन्हें पहचानना मुश्किल नहीं। स्वाद में यह थोड़ा खट्टा, कसैला होता है। बाजार में पाए जाने वाले आँवले में कच्चे-पक्के दोनों ही प्रकार के सुखाए फल मिले होते हैं। पके शुष्क फल भूरे रंग के व सुखाए कच्चे फल कालिमा लिए होते हैं। जहाँ तक संभव हो पके फलों का ही प्रयोग होना चाहिए।

इनका संग्रह माघ व फाल्गुन में करके, छाया में सुखाकर धूल रहित, अनार्द्र-शीतल स्थान में रख दिया जाता है। छाया में सुखाए आँवले से विटामिन सी कम से कम नष्ट होती है। वनौषधि निर्देशिका के विद्वान लेखक के अनुसार संग्रहीत आँवलों की कालावधि एक वर्ष तक होती है।

गुण-कर्म संबंधी विभिन्न मत—आँवले की सबने एक स्वर से प्रशंसा की है। आचार्य चरक के मतानुसार आँवला तीनों दोषों का नाश करने वाला, अग्निदीपक और पाचक है। कामला, अरुचि तथा वमन में यह विशेष लाभकारी है। यह मेध्य है एवं नाड़ियों तथा इंद्रियों का बल बढ़ाने वाला पौष्टिक रसायन है।

सुश्रुत ने इसे पित्तशामक और पिपासा शांत करने वालों में अग्रणी माना है। भाव मिश्र के अनुसार आँवला छर्दिहर (एंटीएमेटिक) तथा हिचकी रोकने वाला है। चक्रदत्त ने आँवले का रस वमन में विशेष

Free Read/Download & Order 3000+ books authored by Yugrishi Pt. Shriram Sharma Acharya(Founder of All World Gayatri Pariwar) on all aspects of life in Hindi, Gujarati, English, Marathi & other languages at
www.vicharkrantibooks.org http://literature.awgp.org

लाभकारी माना है। श्री भंडारी के अनुसार यह अम्लपित्त, रक्तपित्त, अजीर्ण एवं अरुचि की एकाकी व सफल औषधि है।

डॉ० बनर्जी कहते हैं कि आमाशय के अधिक अम्ल उत्पादन करने पर तथा गर्भवती स्त्रियों के वमन आदि में आँवला सबसे अच्छी व निरापद औषधि है। यह पाचक है, सारे आंत्र संस्थान को मजबूत बनाता है तथा पीलिया, अरुचि में विशेष लाभदायक है। डॉ० नादकर्णी मानते हैं कि 'डिसपेप्सिया' जिसमें पित्त की उलटियाँ होती हैं, छाती में जलन एवं अपच होता है, आँवला बहुत आराम देता है।

'वेल्थ ऑफ इंडिया' ग्रंथ के अनुसार आँवले का गूदा पीलिया व अपच में लाभकारी है तथा बीज पित्तशामक है। बी० एच० यू० के डॉ० बी० एन० सिंह ने अपना शोध प्रबंध इसी विषय पर लिखा है। वे भी अपने प्रयोगों द्वारा इसी निष्कर्ष पर पहुँचे हैं कि रसायन एवं पित्तशामक होने के अतिरिक्त यह कफशामक, वातशामक भी है तथा दीपन-अनुलोमन एवं यकृत उत्तेजक भी है। इस विशेषता के कारण ही यह पाचन संस्थान के विभिन्न रोगों में सात्मीकरण की प्रक्रिया द्वारा विशिष्ट भूमिका निभाता है।

श्री जे० एफ० दस्तूर ने 'मेडीसिनल प्लांट्स ऑफ इंडिया' पुस्तक में लिखा है कि आँवला तृष्णा हरता है तथा पित्त की अधिकता को कम करता है। यह वमन, हिचकी, अपच व पेट के अन्य रोगों में विशेष लाभकारी है। सूखा आँवला भूख बढ़ाता है व इसके बीजों का निष्कर्ष पित्त को कम करता तथा मितली में आराम देता है।

होम्योपैथी में भी आँवला मदरटिंक्चर का प्रयोग किया जाता है। यह विशेषकर अपच के कारण हुए सिरदरद, पेट में जलन व दरद में विशेष लाभदायक है, ऐसा मत श्री प्रसाद बनर्जी ने अपनी पुस्तक 'मटेरिया मेडिका ऑफ इंडिया ड्रग्स' में प्रस्तुत किया है।

Free Read/Download & Order 3000+ books authored by Yugrishi Pt. Shriram Sharma Acharya(Founder of All World Gayatri Pariwar) on all aspects of life in Hindi, Gujarati, English, Marathi & other languages at
www.vicharkrantibooks.org http://literature.awgp.org

यूनानी चिकित्सा पद्धति भी आँवले को आमलज नाम से व सूखे गुठली भाग को आमल मुनक्का नाम से प्रयुक्त करती है। दो-तीन बार दूध में धोकर भिगोकर रखने के उपरांत सुखाए गए आँवले को शीरपरवर्दा कहते हैं। इससे माजूम व रुब्बे आँवला बनाया जाता है। यूनानी सिद्धांतानुसार आँवले को शीतल व रुक्ष दीपक मानते हैं। अग्निमंदता की यह अच्छी दवा है। इसके अतिरिक्त यह पित्त के उद्वेग को शांत करता है, प्यास बुझाता है व पेट में घूमने वाले शूल के समान दरद को शांत करता है। पेट से गैस को बाहर निकालने और आंत्र संस्थान को आराम देने में हकीम दलजीतसिंह जी (निदेशक तिब्बी यूनानी उ० प्र०) के अनुसार आँवले से श्रेष्ठ कोई औषधि नहीं है।

रासायनिक संगठन—आँवले के ताजे फल में जल ८१.२ प्रतिशत, प्रोटीन ०.५ प्रतिशत, वसा ०.१ प्रतिशत, खनिज ०.७ प्रतिशत, रेशे ३.४ प्रतिशत, कार्बोहाइड्रेट १४.१ प्रतिशत तथा अनेकों प्रकार के विटामिन होते हैं, जिनमें निकोटिनिक एसिड तथा विटामिन सी प्रमुख हैं। फल के कल्क व स्वरस में क्रमशः ७२० और ९२१ मिलीग्राम प्रति १०० ग्राम में विटामिन 'सी' पाया गया है। इस विटामिन का यह सर्वश्रेष्ठ स्रोत है। इसके अतिरिक्त फल में मुख्य खनिज लोहा (१.२ मिलीग्राम प्रति १०० ग्राम), कैल्शियम (५० मिलीग्राम प्रति १०० ग्राम) तथा फास्फोरस (२० मिलीग्राम प्रति १०० ग्राम) होते हैं। प्रमुख कार्बोहाइड्रेटें में 'पेक्टिन' है। आँवला इसका अच्छा स्रोत माना जाता है। ये टैनिन सूखी अवस्था में लगभग २८ प्रतिशत जल के सूखने पर गैलिक, इगैलिक अम्ल व ग्लूकोज बनाते हैं। गूदे में इस प्रकार के १३ टैनिन पाए गए हैं तथा फाइलेंबिन नामक पदार्थ भी जो जैव सक्रियता की दृष्टि से उल्लेखनीय है।

Free Read/Download & Order 3000+ books authored by Yugrishi Pt. Shriram Sharma Acharya(Founder of All World Gayatri Pariwar) on all aspects of life in Hindi, Gujarati, English, Marathi & other languages at
www.vicharkrantibooks.org http://literature.awgp.org

बीजों में भी लिनोलिक, लिनोलेनिक, ओलिक तेल जैसे महत्त्वपूर्ण घटक पाए गए हैं, जिसकी भूमिका पाचन संस्थान की दृष्टि से महत्त्व रखती है। ये सभी वसा यौगिक 'इसेंशियल फैटीएसिड' समूह में आते हैं तथा आहार के आवश्यक अम्लों की पूर्ति कर देते हैं। तेल की मात्रा बीजों में १६ प्रतिशत होती है।

आधुनिक मत एवं वैज्ञानिक प्रयोग निष्कर्ष—आँवले में पाया जाने वाला पदार्थ 'फिलेंबिन' प्रायोगिक दृष्टि से प्रयुक्त किए जाने पर शूल निवारक 'स्पास्मोलिटिक' पाया गया है। श्री खुराना ने 'इंडियन जनरल ऑफ फिजियोलॉजी एवं फार्मेकॉलाजी' में लिखा है (१४, ३९, १९७०) कि 'स्पाज्म' (मरोड़) पैदा करने में सक्रिय भाग लेने वाले एलिटाइल कोलोन, ब्रेडीकाइनिन आदि के प्रभाव को यह रसायन नष्ट कर देता है।

पित्तशामक प्रभाव का वैज्ञानिक अध्ययन करने पर पाया गया कि अम्लपित्त के रोगियों में 'आँवला चूर्ण' अधिक लाभकारी है। ३ ग्राम चूर्ण रूप आँवला दिन में ३ बार दिए जाने पर पेट में जलन, अम्लाधिक्य के कारण होने वाली अन्य तकलीफों को १५ दिन में समाप्त कर देता है।

तीसरा वैज्ञानिक दृष्टि से सफल प्रयोग इस औषधि का स्कर्वीनिरोध प्रभाव सिद्ध करने वाला रहा है। 'स्कर्वी' विटामिन सी की कमी के कारण होने वाला रोग है, जिसके कारण सारे शरीर से कहीं भी रक्त स्राव होने लगता है। मसूड़े सूज जाते हैं, हड्डियों में अपने आप फ्रेक्चर होने लगते हैं, सारे शरीर में कमजोरी व चिड़चिड़ाहट होने लगती है।

इस रोग की प्रतिक्रियास्वरूप पाचन संस्थान भी गड़बड़ाता है व सारा शरीर भी। स्कर्वी रोग को दूर करने की क्षमता की दृष्टि से एक आँवला दो संतरों के समकक्ष ठहरता है। प्रतिदिन भोजन में १० मिलीग्राम

Free Read/Download & Order 3000+ books authored by Yugrishi Pt. Shriram Sharma Acharya(Founder of All World Gayatri Pariwar) on all aspects of life in Hindi, Gujarati, English, Marathi & other languages at
www.vicharkrantibooks.org http://literature.awgp.org

विटामिन सी भी मिलता रहे तो यह रोग न हो। रोग की स्थिति में तो १०० मिलीग्राम प्रतिदिन देना जरूरी है। विटामिन सी आँवले में इतना अधिक है (९२१ मिलीग्राम प्रति १०० ग्राम) कि इसे नियमित रूप से लेने पर रोग होना तो दूर, अन्य कई रोगों की संभावनाएँ भी टल जाती हैं। दूसरे सुखाए जाने पर भी इसका विटामिन सी नष्ट नहीं होता। प्राकृतिक रूप में इसके साथ जो अन्य तत्त्व पाए जाते हैं, उनसे इसके ऑक्सीकरण होने व विटामिन सी नष्ट होने की प्रक्रिया रुकती है। जबकि संश्लेषित गोलियों का विटामिन सी शीघ्र ही ऑक्सीडाइज होकर निष्क्रिय हो जाता है।

आँवले के फल को संपूर्ण रूप में लिया जाना ही श्रेष्ठ है। बीजों में वसा अम्लों के अतिरिक्त आवश्यक पाचक एन्जाइम्स भी पाए जाते हैं। इससे पाचन तंत्र मजबूत होता है। इन एन्जाइम्स के कारण ग्रहण किए गए वसा व प्रोटीनों का पाचन कोई कठिन कार्य नहीं रह जाता।

ग्राह्य अंग—फल, बीज।

मात्रा—फल चूर्ण ३ से १० ग्राम सुबह-शाम, आँवला का ताजा रस २५ ग्राम दिन में २ बार।

निर्धारण के अनुसार प्रयोग

(१) हिचकी तथा उलटी में—आँवले का रस मिसरी की चाशनी के साथ तुरंत तथा दिन में २-३ बार। चूर्ण १० से १५ ग्राम पानी के साथ दिया जा सकता है।

(२) रक्त पित्त में—रक्त के वमन का कारण यदि आमाशयिक व्रण है तो आँवला चूर्ण दही के साथ अथवा चूर्ण क्वाथ बनाकर गुड़ के साथ दिया जा सकता है।

(३) अम्ल पित्त में—ताजा आँवला मिसरी के साथ या स्वरस २५ ग्राम सम भाग शहद के साथ प्रातः-सायं देने पर खट्टी डकारें तथा अम्लाधिक्य की शिकायतें दूर हो जाती हैं।

Free Read/Download & Order 3000+ books authored by Yugrishi Pt. Shriram Sharma Acharya(Founder of All World Gayatri Pariwar) on all aspects of life in Hindi, Gujarati, English, Marathi & other languages at
www.vicharkrantibooks.org http://literature.awgp.org

श्री नादकर्णी एक प्रयोग में लिखते हैं कि आँवले के बीज १०ग्राम रातभर जल में भिगोकर रखने पर व अगले दिन गौ-दुग्ध में पीसकर पावभर गौ-दुग्ध के साथ देने पर पित्ताधिक्य में लाभ होता है।

इन सभी ऊपरी पाचन संबंधी विकारों, जिन्हें डिसपेप्सिया या पी०यू० सिण्ड्रोम नाम से जाना जाता है—हेतु रात्रि में भिगोया गया ५ ग्राम आँवला अगले दिन ७० ग्राम दूध के साथ देने पर १ माह में अच्छा आराम देता है।

(४) यकृत की दुर्बलता, पीलिया निवारण की स्थिति में आँवले की शहद के साथ चटनी बनाकर सुबह-शाम लिया जाना चाहिए।

अन्य उपयोग—पाचन संस्थान को सशक्त बनाने एवं स्कर्वी रोग-निवारण कर अंत:संस्थान को मजबूत करने के अतिरिक्त त्रिदोष हर के नाते इसके अन्य भी उपयोग हैं।

पैत्तिक शिरोशूल, मूत्रावरोध में इसका लेप करते हैं, तो नेत्रों के रोगों में रस आँखों में डालते हैं। आँवले से सिर धोकर रूसी व खाज मिटाना घरेलू प्रयोग है।

इंद्रिय दुर्बलता, मस्तिष्क दौर्बल्य, बवासीर, हृदय रोग जन्य रक्त वमन, खाँसी, श्वांस तथा महिलाओं के प्रमेह रोगों में भी यह उपयोगी है। क्षय, शरीर-शोथ तथा कुष्ठ जैसे चर्म रोगों में भी वैद्य इसका सफल प्रयोग करते हैं।

आँवला एक समग्र औषधि है। पाचन संस्थान मात्र तक उसका कार्यक्षेत्र सीमित नहीं है। त्रिफला रूप में उसके योगों से सभी अवगत हैं। पर प्रस्तुत विधान में एकौषधि प्रयोग में आँवले को अकेले ऊपरी पाचन संस्थान के रोगों में ही प्रयोग किया जा रहा है एवं उसी की पुष्टि हेतु वैज्ञानिक मत भी दिए गए हैं।



Free Read/Download & Order 3000+ books authored by Yugrishi Pt. Shriram Sharma Acharya(Founder of All World Gayatri Pariwar) on all aspects of life in Hindi, Gujarati, English, Marathi & other languages at www.vicharkrantibooks.org http://literature.awgp.org

३. हरीतकी (हरड़)
टर्मिनेलिया चेब्यूला

हरीतकी को वैद्यों ने चिकित्सा साहित्य में अत्यधिक सम्मान देते हुए उसे अमृतोपम औषधि कहा है। राज बल्लभ निघंटु के अनुसार—

यस्य माता गृहे नास्ति, तस्य माता हरीतकी।
कदाचित् कुप्यते माता, नोदरस्था हरीतकी॥

हरीतकी मनुष्यों की माता के समान हित करने वाली है। माता तो कभी-कभी कुपित भी हो जाती है, परंतु उदर स्थित अर्थात खाई हुई हरड़ कभी भी अपकारी नहीं होती।

आयुर्वेद के ग्रंथकार हरीतकी की इसी प्रकार स्तुति करते हैं। वे कहते हैं कि तू हर (महादेव) के भवन में उत्पन्न हुई है इसलिए अमृत से भी श्रेष्ठ है। वस्तुतः यह मूल रूप से गंगा के किनारे बसने वाला वृक्ष भी है। ड्यूथी ने अपने प्रसिद्ध 'फ्लोरा ऑफ द अपर गैंगेटिक प्लेन' ग्रंथ में लिखा भी है कि हरड़ का मूल स्थान गंगातट ही है। यहीं से यह सारे भारत और विश्व में फैली है। मदनपाल निघंटु में ग्रंथकार लिखता है—

हरस्य भवने जाता हरिता च स्वभावतः।
हरते सर्वरोगांश्च तस्मात् प्रोक्ता हरीतिकी॥

श्री हर के घर में उत्पन्न होने से, स्वभाव से हरित वर्ण की होने से तथा सब रोगों का नाश करने में समर्थ होने से इसे हरीतकी कहा जाता है।

वानस्पतिक परिचय—यह एक ऊँचा वृक्ष होता है एवं मूलतः निचले हिमालय क्षेत्र में रावी तट से लेकर पूर्व बंगाल-आसाम तक

Free Read/Download & Order 3000+ books authored by Yugrishi Pt. Shriram Sharma Acharya(Founder of All World Gayatri Pariwar) on all aspects of life in Hindi, Gujarati, English, Marathi & other languages at
www.vicharkrantibooks.org http://literature.awgp.org

पाँच हजार फीट की ऊँचाई पर पाया जाता है। यह ५० से ६० फीट ऊँचा वृक्ष है। इसकी छाल गहरे भूरे रंग की होती है, पत्ते आकार में वासा के पत्र के समान ७ से २० सेंटीमीटर लंबे, डेढ़ इंच चौड़े होते हैं। फूल छोटे, पीताभ श्वेत लंबी मंजरियों में होते हैं। फल एक से तीन इंच लंबे, अंडाकार होते हैं, जिसके पृष्ठ भाग पर पाँच रेखाएँ होती हैं। कच्चे फल हरे तथा पकने पर पीले धूमिल होते हैं। बीज प्रत्येक फल में एक होता है। अप्रैल-मई में नए पल्लव आते हैं। फल शीतकाल में लगते हैं। पके फलों का संग्रह जनवरी से अप्रैल के मध्य किया जाता है।

हरड़ बाजार में दो प्रकार की पाई जाती है—बड़ी और छोटी। बड़ी में पत्थर के समान सख्त गुठली होती है, छोटी में कोई गुठली नहीं होती। वे फल जो पेड़ से गुठली पैदा होने से पहले ही गिर पड़ते हैं या तोड़कर सुखा लिए जाते हैं, उन्हें छोटी हरड़ कहते हैं। आयुर्वेद के जानकार छोटी हरड़ का उपयोग अधिक निरापद मानते हैं, क्योंकि आँतों पर उनका प्रभाव सौम्य होता है, तीव्र नहीं। इसके अतिरिक्त वनस्पतिशास्त्रियों के अनुसार हरड़ के ३ भेद और किए जा सकते हैं। पक्व फल या बड़ी हरड़, अर्द्धपक्व फल पीली हरड़ (इसका गूदा काफी मोटा तथा स्वाद में कसैला होता है।), अपक्व फल जिसे ऊपर छोटी हरड़ नाम से बताया गया है। इसका वर्ण भूरा-काला तथा आकार में यह छोटी होती है। यह गंधहीन व स्वाद में तीखी होती है। फल के स्वरूप, प्रयोग एवं उत्पत्ति स्थान के आधार पर भी हरड़ को कई वर्ग भेदों में बाँटा गया है पर छोटी स्याह, पीली जर्द, बड़ी काबुली ये ३ ही सर्वप्रचलित हैं।

शुद्धाशुद्ध परीक्षा—औषधि प्रयोग हेतु फल ही प्रयुक्त होते हैं एवं उनमें भी डेढ़ तोले से अधिक भार वाली भरी हुई छिद्र रहित,

Free Read/Download & Order 3000+ books authored by Yugrishi Pt. Shriram Sharma Acharya(Founder of All World Gayatri Pariwar) on all aspects of life in Hindi, Gujarati, English, Marathi & other languages at
www.vicharkrantibooks.org http://literature.awgp.org

छोटी गुठली व बड़े खोल वाली हरड़ उत्तम मानी जाती है। भावप्रकाश निघंटु के अनुसार जो हरड़ जल में डूब जाए वह उत्तम है।

गुण, कर्म संबंधी मत—चरक संहिता के अनुसार हरड़ त्रिदोष हर व अनुलोमक है। यह संग्रहणी शूल, अतिसार (डायरिया), बवासीर तथा गुल्म का नाश करती है एवं पाचन अग्निदीपन में सहायक है।

श्री खगेंद्र नाथ वसु के अनुसार हरड़ के गुण-कर्मों के अनुसार विभिन्न भेद हैं। किसी हरड़ को खाने, सूँघने, छूने अथवा देखने मात्र से तीव्र रेचन क्रिया होने लगती है। हिमाचल व तराई में उत्पन्न होने वाली चेतकी नामक हरड़ इतनी तीव्र रेचक है कि इसकी छाया में बैठने मात्र से दस्त होने लगते हैं। यह शास्त्रोक्त उक्ति कहाँ तक सत्य है, इसकी परीक्षा तो शुद्ध चेतकी हरड़ प्राप्त होने पर ही की जा सकती है, परंतु वृहद् आंत्र संस्थान पर इसके प्रभाव को नकारा नहीं जा सकता।

भावप्रकाश निघंटु के अनुसार हरड़ बवासीर, सभी प्रकार के उदर रोगों, कृमियों, संग्रहणी, विबंध, गुल्म आदि रोगों में लाभ पहुँचाती है व सात्मीकरण की स्थिति लाती है। वैद्यराज चक्रदत्त के अनुसार आँतों की नियमित सफाई हेतु हरड़ों का नियमित प्रयोग किया जाना चाहिए। हर ऋतु में इसे अलग-अलग अनुपान से लेने का विधान है। नित्य प्राय: नियमित रूप से हरड़ लेते रहने से बुढ़ापा कभी नहीं आता, शरीर थकता नहीं तथा स्फूर्ति बनी रहती है, ऐसा शास्त्रों का मत है।

श्री नादकर्णी के अनुसार हरड़ एक निरापद, सौम्य विरेचक औषधि है। साथ ही यह ग्राही भी है अर्थात मल निष्कासन को यह सुव्यवस्थित करती है। अंदर के रसों की अनावश्यक हानि नहीं होने देती। ये दोनों (रेचक व ग्राही) प्रभाव परस्पर विरोधी हैं, फिर भी

Free Read/Download & Order 3000+ books authored by Yugrishi Pt. Shriram Sharma Acharya(Founder of All World Gayatri Pariwar) on all aspects of life in Hindi, Gujarati, English, Marathi & other languages at
www.vicharkrantibooks.org http://literature.awgp.org

एक औषधि में इनका पाया जाना व शरीर स्थिति के अनुसार उस प्रभाव का ही फलित होना अपने आप में इसकी एक विलक्षणता है। इसे इसी कारण आल्सरेटिव (रसायन) भी मानते हैं। कच्चे फल पके फलों की अपेक्षा अधिक रेचक होते हैं। इससे पित्त कम होता है, आमाशय व्यवस्थित तथा बवासीर के मस्से उभरना तथा शिराओं का फूलना बंद हो जाता है।

श्री नादकर्णी के अनुसार लंबे समय से चली आ रही पेचिश एवं दस्त आदि में यह बहुत लाभकारी है। वृहद् आंत्र को संकुचित कर रुके मल को हरड़ निकालती है एवं ग्राही होने के कारण रस स्रावों को रोक देती है, जिससे रोगी को आराम मिलता है। महत्त्वपूर्ण रस द्रव्यों-इलेक्ट्रोलाइट्स की हानि नहीं होती। कृमि सभी प्रकार के हरीतकी के दुश्मन हैं। उन्हें समूल नष्ट करने में, वायु निष्कासित करने तथा उदर शूल में भी यह महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाती है। कर्नल चोपड़ा कहते हैं कि हरड़ कषाय प्रधान है, विरेचक तथा बलवर्द्धक है। डॉ० घोष की 'ड्रग्स ऑफ हिंदुस्तान' के अनुसार यह आँतों की जीर्ण व्याधियों में विशेष लाभकारी है। पाश्चात्य जगत में अभी तक इसे पेचिश आदि में ही लाभकारी माना जाता था। पर अब डॉ० ए० प्री जैसे वैज्ञानिकों ने अपनी शोध द्वारा यह स्पष्ट कर दिया है कि यह अनियंत्रित विरेचन क्रिया में भी लाभकारी है तथा आँतों को सुव्यवस्थित करने में सहायता करती है।

होम्योपैथी में भी बवासीर, कब्ज, पेचिश आदि के लिए हरड़ के मदर टिंक्चर का प्रयोग किया जाता है। यूनानी चिकित्सा पद्धति में 'स्लैल स्याह' नाम से छोटी हरड़ प्रयुक्त होती है। हकीम इसे आमाशय व आँतों को बल देने वाली संग्राही मानते हैं। अतिसार बंद करने के लिए इसे घी में भूनकर चूर्ण बनाकर खिलाते हैं।

Free Read/Download & Order 3000+ books authored by Yugrishi Pt. Shriram Sharma Acharya(Founder of All World Gayatri Pariwar) on all aspects of life in Hindi, Gujarati, English, Marathi & other languages at
www.vicharkrantibooks.org http://literature.awgp.org

रासायनिक संगठन—हरड़ में ग्राही (एस्ट्रिन्जेंट) पदार्थ हैं—टैनिक अम्ल (बीस से चालीस प्रतिशत), गैलिक अम्ल, चेबूलीनिक अम्ल और म्यूसीलेज। रेचक पदार्थ हैं—एंथ्राक्वीनिन जाति के ग्लाइकोसाइड्स। इनमें से एक की रासायनिक संरचना सनाय के ग्लाइकोसाइड्स सिनोसाइड 'ए' से मिलती-जुलती है। इसके अलावा हरड़ में दस प्रतिशत जल, १३.९ से १६.४ प्रतिशत नॉन टैनिन्स और शेष अघुलनशील पदार्थ होते हैं। वेल्थ ऑफ इंडिया के वैज्ञानिकों के अनुसार ग्लूकोज, सार्बिटाल, फ्रुक्टोस, सुक्रोस, माल्टोस एवं अरेबिनोज हरड़ के प्रमुख कार्बोहाइड्रेट हैं। १८ प्रकार के मुक्तावस्था में अमीनो अम्ल पाए जाते हैं। फास्फोरिक तथा सक्सीनिक अम्ल भी उसमें होते हैं। फल जैसे पकता चला जाता है, उसका टैनिक एसिड घटता एवं अम्लता बढ़ती है। बीज मज्जा में एक तीव्र तेल होता है।

आधुनिक मत एवं वैज्ञानिक प्रयोग निष्कर्ष—हरड़ में पाए गए विभिन्न ग्राही पदार्थ प्रोटीन समुदाय को परस्पर संबद्ध कर देते हैं। डॉ० आर० घोष अपने 'मटेरिया मेडिका' में लिखते हैं कि टैनिक एसिड श्लेष्मा झिल्लियों पर श्लेष्मा और अल्व्यूमन को कोएगुलेट करके उसकी एक परत वहाँ बना देते हैं, जिससे उस कोमल भाग की रक्षा होती है। यह अम्ल आँतों को संकुचित करता है तथा रक्तस्राव को कम कर देता है। अतिसार में यह रसस्राव ही अधिक मात्रा में निकालकर रोगी को कमजोर कर देता है।

टैनिक अम्ल से यीस्ट और अन्य जीवाणु भी प्रेसिपिटेट हो जाते हैं। जीवाणुनाशी प्रभाव बाह्य रोगाणुओं को नष्ट करता व दुर्गंध को समाप्त करता है। इस प्रभाव के कारण ही हरड़ के एनिमा से (क्वाथ या स्वरस) अल्सरेटिव कोलाइटिव, कोलाइटिस जैसे असाध्य रोग भी

Free Read/Download & Order 3000+ books authored by Yugrishi Pt. Shriram Sharma Acharya(Founder of All World Gayatri Pariwar) on all aspects of life in Hindi, Gujarati, English, Marathi & other languages at
www.vicharkrantibooks.org http://literature.awgp.org

शांत होते देखे गए हैं। पेपेक्रीन के समान शूल निवारण स्पास्मोलिटिक क्षमता भी हरड़ में पाई गई है।

हरड़ का मुख्य रेचक पदार्थ एंथ्राक्वीनोन अपना प्रभाव बड़ी आँत पर ही दिखाता है। सेवन करने के ६ घंटे बाद ही इसका प्रभाव शुरू होता है। पुराने कब्ज वाली जीर्ण आँतों को बिना कोई हानि पहुँचाए यह तुरंत लाभ पहुँचाता है।

हरड़ वैसे वात, पित्त, कफ तीनों का ही शमन करती है पर मूलतः इसे वातशामक माना गया है। इसी कारण इसका प्रभाव समग्र संस्थान पर पड़ता है। दुर्बल नाड़ियों को यह समर्थ बनाती है तथा इंद्रियों को सामर्थ्यवान। शोथ-निवारण में भी इसकी प्रमुख भूमिका होती है, चाहे वह कोषीय हो अथवा अंतर्कोषीय।

ग्राह्य अंग—फल ही प्रयोग में आता है। उत्तम फलों को चैत्र-वैशाख में ग्रहण कर सुखा लिया जाता है तथा अनार्द्र-शीतल स्थान में बंद कर रख दिया जाता है।

कालावधि—१ से ३ वर्ष तक इन्हें प्रयुक्त किया जा सकता है।

मात्रा—हरड़ का चूर्ण ३ से ५ ग्राम प्रत्येक बार। आवश्यकतानुसार इसे २ या ३ बार लिया जा सकता है। फल का बाहरी खोल वाला अंश अधिक उपयोगी माना जाता है।

निर्धारणानुसार प्रयोग—हरड़ को वैसे रसायन, नाड़ीवर्द्धक, पाचक कई प्रकार से प्रयुक्त किया जा सकता है, पर वृहद् आँत्र पर सर्वाधिक प्रभाव होने से वहीं के रोगों में इसे विशेषतया उपयोग में लाते हैं। विवंध (कब्ज) में पीसकर चूर्ण रूप बनाकर या घी सेंकी हुई हरड़ डेढ़ से तीन ग्राम मात्रा में मधु अथवा सेंधा नमक के साथ दी जा सकती है। अतिसार में हरड़ को उबालकर देते हैं। संग्रहणी में हरड़ चूर्ण को गरम जल के साथ भी दे सकते हैं।

Free Read/Download & Order 3000+ books authored by Yugrishi Pt. Shriram Sharma Acharya(Founder of All World Gayatri Pariwar) on all aspects of life in Hindi, Gujarati, English, Marathi & other languages at
www.vicharkrantibooks.org http://literature.awgp.org

बवासीर में अथवा खूनी पेचिश में चरक के अनुसार हरड़ का चूर्ण व गुड़ दोनों गोमूत्र मिलाकर रात्रिभर रखकर प्रातः पिलाना चाहिए। इसके अलावा इस रोग में हरड़ चूर्ण को दही या मट्ठे के साथ भी दे सकते हैं। अर्श की सूजन उतारने तथा वेदना कम करने के लिए स्थान विशेष पर हरड़ को जल में पीसकर लगाते हैं। रक्त-स्राव भी इससे रुकता है व मस्से भी सूखते हैं।

कामला, लीवर, स्प्लीन बढ़ने तथा कृमि-रोगों में ३ से ६ ग्राम चूर्ण प्रातः सायं देने से २ सप्ताह में आराम हो जाता है। अग्निमंदता में चबाने पर तथा त्रिदोष विकार जन्य वृहद् आंत्र के जीर्ण रोगों में भूनकर सेवन किए जाने पर तुरंत लाभ दिखाती है।

अन्य उपयोग—सेंधा नमक के साथ कफज, शक्कर के साथ पित्तज तथा घी के साथ वातज रोगों में यह लाभ पहुँचाती है। व्रणों में लेप के रूप में, मुँह के छालों में क्वाथ से कुल्ला करके, मस्तिष्क दुर्बलता में चूर्ण रूप में, रक्त विकार शोथ में उबालकर, श्वास रोग में चूर्ण, जीर्ण ज्वरों में चूर्ण रूप में इसका प्रयोग होता है। रसायन के रूप में इसका प्रयोग डॉ० प्रियव्रत शर्मा के अनुसार विभिन्न अनुपानों के साथ दिया जाता है।

जीर्णकाया, अवसादग्रस्त मनःस्थिति, लंबे उपवास में, पित्ताधिक्य वाले तथा गर्भवती स्त्रियों के लिए इस औषधि का निषेध है।



Free Read/Download & Order 3000+ books authored by Yugrishi Pt. Shriram Sharma Acharya(Founder of All World Gayatri Pariwar) on all aspects of life in Hindi, Gujarati, English, Marathi & other languages at
www.vicharkrantibooks.org http://literature.awgp.org

४. बिल्व (बेल)
इगल मार्मेलोज

कहा गया है—**'रोगान बिलत्ति-भिनत्ति इति बिल्व'**। अर्थात रोगों को नष्ट करने की क्षमता के कारण बेल को बिल्व कहा गया है। इसके अन्य नाम हैं—शांडिल्रू (पीड़ा निवारक), श्री फल, सदाफल इत्यादि। मज्जा 'बिल्वकर्कटी' कहलाती है तथा सूखा गूदा बेलगिरी।

वानस्पतिक परिचय—सारे भारत में विशेषत: हिमालय की तराई में, सूखे पहाड़ी क्षेत्रों में ४ हजार फीट की ऊँचाई तक पाया जाता है। मध्य व दक्षिण भारत में बेल जंगल के रूप में फैला पाया जाता है। आध्यात्मिक दृष्टि से महत्त्वपूर्ण होने के कारण इसे मंदिरों के पास लगाया जाता है।

१५ से ३० फीट ऊँचे कँटीले वृक्ष फलों से लदे अलग ही पहचान में आ जाते हैं। पत्ते संयुक्त त्रिपत्रक व गंध युक्त होते हैं। स्वाद में वे तीखे होते हैं। गरमियों में पत्ते गिर जाते हैं तथा मई में नए पुष्प आ जाते हैं। फल अगले वर्ष मार्च से मई के बीच आ जाते हैं। फूल हरी आभा लिए सफेद रंग के होते हैं। सुगंध इनकी मन को भाने वाली होती है। फल ५ से १७ सेंटीमीटर व्यास के होते हैं। खोल (शेल) कड़ा व चिकना होता है। पकने पर हरे से सुनहरे पीले रंग का हो जाता है। खोल को तोड़ने पर मीठा रेशेदार सुगंधित गूदा निकलता है। बीज छोटे-बड़े व कई होते हैं।

बाजार में दो प्रकार के बेल मिलते हैं—छोटे जंगली और बड़े उगाए हुए। दोनों के गुण समान हैं। जंगलों में फल छोटा

Free Read/Download & Order 3000+ books authored by Yugrishi Pt. Shriram Sharma Acharya(Founder of All World Gayatri Pariwar) on all aspects of life in Hindi, Gujarati, English, Marathi & other languages at
www.vicharkrantibooks.org http://literature.awgp.org

व काँटे अधिक तथा उगाए गए फलों में फल बड़ा व काँटे कम होते हैं।

शुद्धाशुद्ध परीक्षा पहचान—बेल का फल अलग से पहचान में आ जाता है। इसकी अनुप्रस्थ काट करने पर यह १०-१५ खंडों में विभक्त सा मालूम होता है, जिनमें प्रत्येक में ६ से १० बीज होते हैं। ये सभी बीज सफेद लुआव से परस्पर जुड़े होते हैं। प्राय: सर्वसुलभ होने से इसमें मिलावट कम होती है। कभी-कभी इसमें गार्मीनिया मेंगोस्टना तथा कैथ के फल मिला दिए जाते हैं, परंतु इसे काट कर इसकी परीक्षा की जा सकती है।

संग्रह-संरक्षण एवं कालावधि—छोटे कच्चे बेल के फलों का संग्रह कर, उन्हें अच्छी तरह छीलकर गोल-गोल कतरेनुमा टुकड़े काटकर सुखाकर मुख बंद डिब्बों में नमी रहित शीतल स्थान में रखना चाहिए। औषधि प्रयोग हेतु जंगली बेल ही प्रयुक्त होते हैं। खाने, शरबत आदि के लिए ग्राम्य या लाए हुए फल ही प्रयुक्त होते हैं। इनकी वीर्य कालावधि लगभग एक वर्ष है।

गुण-कर्म संबंधी विभिन्न मत—आचार्य चरक और सुश्रुत दोनों ने ही बेल को उत्तम संग्राही बताया है। कफ-वात शामक मानते हुए इसे ग्राही गुण के कारण पाचन संस्थान के लिए समर्थ औषधि माना गया है। आयुर्वेद के अनेक औषधीय गुणों एव योगों में बेल का महत्त्व बताया गया है, परंतु एकाकी बिल्व चूर्ण, मूलत्वक, पत्र स्वरस भी बहुत अधिक लाभदायक है।

चक्रदत्त बेल को पुरानी पेचिश, दस्तों और बवासीर में बहुत अधिक लाभकारी मानते हैं। बंगसेन एवं भावप्रकाश ने भी इसे आँतों के रोगों में लाभकारी पाया है। डॉ० खोरी लिखते हैं कि बेल का फल बवासीर रोकता व कब्ज की आदत को तोड़ता है। आँतों

Free Read/Download & Order 3000+ books authored by Yugrishi Pt. Shriram Sharma Acharya(Founder of All World Gayatri Pariwar) on all aspects of life in Hindi, Gujarati, English, Marathi & other languages at
www.vicharkrantibooks.org http://literature.awgp.org

की कार्य-क्षमता बढ़ती है, भूख सुधरती है एवं इंद्रियों को बल मिलता है।

डॉ० नादकर्णी ने इसे गेस्ट्रोएंट्राइटिस एवं हैजे के ऐपीडेमिक प्रकोपों (महामारी) में अत्यंत उपयोगी अचूक औषधि माना है। विषाणु के प्रभाव को निरस्त करने तक की इसमें क्षमता है। डॉ० डिमक के अनुसार बेल का फल कच्ची व पकी दोनों ही अवस्थाओं में आँतों को लाभ करता है। कच्चा या अधपका फल गुण में कषाय (एस्ट्रीन्जेंट) होता है तथा अपने टैनिन एवं श्लेषम (म्यूसीलेज) के कारण दस्त में लाभ करता है। पुरानी पेचिस, अल्सरेटिव कोलाइटिस जैसे जीर्ण असाध्य रोग में भी यह लाभ करता है। पका फल हलका रेचक होता है। रोग निवारक ही नहीं यह स्वास्थ्य संवर्द्धक भी है।

पाश्चात्य जगत में इस औषधि पर काफी काम हुआ है। डॉ०एक्टन एवं नोल्स ने 'डीसेंट्रीस इन इंडिया' पुस्तक में तथा डॉ० हेनरी एवं ब्राउन ने 'ट्रांजेक्सन्स ऑफ रॉयल सोसाइटी फॉर ट्रापिकल मेडीसन एंड हायजीन' पत्रिका में बेल के गुणों का विस्तृत हवाला दिया है एवं संग्रहणी, हैजे जैसे संक्रामक मारक रोगों के लिए बेल के गूदे को अन्य सभी औषधियों की तुलना में वरीयता दी है। ब्रिटिश फार्मेकोपिया में इसके तीन प्रयोग बताए गए हैं—ताजे कच्चे फल का स्वरस १/२ से १ चम्मच एक बार, सुखाकर कच्चे बेल के कतलों का जल निष्कर्ष १ से २ चम्मच दो बार, बिल्व चूर्ण २ से ४ ग्राम। ये सभी प्रकारांतर से संग्रहणी व रक्तस्राव सहित अतिसार में तुरंत लाभ करते हैं। पाश्चात्य वैज्ञानिकों ने बेल के छिलके के चूर्ण को 'कषाय' मानते हुए ग्राहीगुण का पूरक उसे माना है व गूदे तथा छिलके दोनों के चूर्ण को दिए जाने की सिफारिश की है। पुरानी पेचिश में जहाँ रोगी को कभी कब्ज होता है, कभी अतिसार, अन्य औषधियाँ काम नहीं करतीं। ऐसे

Free Read/Download & Order 3000+ books authored by Yugrishi Pt. Shriram Sharma Acharya(Founder of All World Gayatri Pariwar) on all aspects of life in Hindi, Gujarati, English, Marathi & other languages at
www.vicharkrantibooks.org http://literature.awgp.org

में बिल्व का उपयोग बहुत लाभ देता है व इस जीर्ण रोग से मुक्ति दिलाता है।

बेल में म्यूसिलेज की मात्रा इतनी अधिक होती है कि डायरिया के तुरंत बाद वह घावों को भरकर आँतों को स्वस्थ बनाने में पूरी तरह समर्थ रहती है। मल संचित नहीं हो पाता और आँतें कमजोर होने से बच जाती हैं।

होम्योपैथी में बेल के फल व पत्र दोनों को समान गुण का मानते हैं। खूनी बवासीर व पुरानी पेचिश में इसका प्रयोग बहुत लाभदायक होता है। अलग-अलग पोटेंसी में बिल्व टिंक्चर का प्रयोग कर आशातीत लाभ देखे गए हैं।

यूनानी मतानुसार इसका नाम है-सफरजले हिंद। यह दूसरे दरजे में सर्द व तीसरे में खुश्क है। हकीम दलजीत सिंह के अनुसार बेल गर्म और खुश्क होने से ग्राही है व पेचिश में लाभकारी है।

रासायनिक संगठन—बेल के फल की मज्जा में मूलतः ग्राही पदार्थ पाए जाते हैं। ये हैं-म्युसिलेज पेक्टिन, शर्करा, टैनिन्स। इसमें मूत्र रेचक संघटक है—मार्मेलोसिन नामक एक रसायन, जो स्वल्प मात्रा में ही विरेचक है। इसके अतिरिक्त बीजों में पाया जाने वाला एक हलके पीले रंग का तीखा तेल (करीब १२ प्रतिशत) भी रेचक होता है। शकर ४.३ प्रतिशत, उड़नशील तेल तथा तिक्त सत्व के अतिरिक्त २ प्रतिशत भस्म भी होती है। भस्म में कई प्रकार के आवश्यक लवण होते हैं। बिल्व पत्र में एक हरा-पीला तेल, इगेलिन, इगेलिनिन नामक एल्केलाइड भी पाए गए हैं। कई विशिष्ट एल्केलाइड यौगिक व खनिज लवण त्वक में होते हैं।

आधुनिक मत एवं वैज्ञानिक प्रयोग निष्कर्ष—पेक्टिन जो बिल्व मज्जा का एक महत्त्वपूर्ण घटक है, एक प्रामाणिक ग्राही पदार्थ

Free Read/Download & Order 3000+ books authored by Yugrishi Pt. Shriram Sharma Acharya(Founder of All World Gayatri Pariwar) on all aspects of life in Hindi, Gujarati, English, Marathi & other languages at
www.vicharkrantibooks.org http://literature.awgp.org

है, पेक्टिन अपने से बीस गुने अधिक जल में एक कोलाइडल घोल के रूप में मिल जाता है, जो चिपचिपा व अम्ल प्रधान होता है। यह घोल आँतों पर अधिशोषक (एड्सारवेंट) व रक्षक (प्रोटेक्टिव) के समान कार्य करता है। बड़ी आँत में पाए जाने वाले मारक जीवाणुओं को नष्ट करने की क्षमता भी इस पदार्थ में है। डॉ० धर के अनुसार बेल मज्जा के घटक घातक विषाणुओं के विरुद्ध मारक क्षमता भी रखते हैं। 'इंडियन जनरल ऑफ एक्सपेरीमेंटल बायोलॉजी' (६-२४१-१९६८) के अनुसार बिल्व फल हुकवर्म जो भारत में सबसे अधिक व्यक्तियों को प्रभावित करता पाया गया है, को मारकर बाहर निकाल सकने में समर्थ है। पके फल को वैज्ञानिकों ने बलवर्द्धक तथा हृदय को सशक्त बनाने वाला पाया है तो पत्र स्वरस को सामान्य शोथ तथा मधुमेह में एवं श्वास रोग में लाभकारी पाया है।

ग्राह्य अंग—फल का गूदा एवं बेलगिरी। पत्र, मूल एवं त्वक (छाल) का चूर्ण। चूर्ण के लिए कच्चा, मुरब्बे के लिए अधपका एवं ताजे शरबत के लिए पका फल लेते हैं। कषाय प्रयोग हेतु मात्र दिन में २ या ३ बार।

स्वरस—१० से २० मिलीलीटर (२ से ४ चम्मच)।

शरबत—२० से ४० मिलीलीटर (४ से ८ चम्मच)।

पाचन संस्थान में प्रयोग हेतु मूलतः बिल्व चूर्ण ही लेते हैं। कच्चा फल अधिक लाभकारी होता है। इसीलिए चूर्ण को शरबत आदि की तुलना में प्राथमिकता दी जाती है।

निर्धारणानुसार प्रयोग—मूल अनुपान शहद या मिसरी की चाशनी होते हैं।

दाँत निकलते समय जब बच्चों को दस्त लगते हैं, तब बेल का १० ग्राम चूर्ण आधा पाव पानी में पकाकर, शेष २० ग्राम सत्व को ५ ग्राम

Free Read/Download & Order 3000+ books authored by Yugrishi Pt. Shriram Sharma Acharya(Founder of All World Gayatri Pariwar) on all aspects of life in Hindi, Gujarati, English, Marathi & other languages at
www.vicharkrantibooks.org http://literature.awgp.org

शहद में मिलाकर २-३ बार दिया जाता है। पुरानी पेचिश व कब्जियत में पके फल का शरबत या १० ग्राम बेल १०० ग्राम गाय के दूध में उबालकर ठंढा करके देते हैं। संग्रहणी जब खून के साथ व बहुत वेगपूर्ण हो तो मात्र कच्चे फल का चूर्ण ५ ग्राम १ चम्मच शहद के साथ २-४ बार देते हैं। कब्ज व पेचिश में पत्र-स्वरस लगभग १० ग्राम २-३ घंटे के अंतर से ४-५ बार दिए जाने पर लाभ करता है। हैजे की स्थिति में बेल का शरबत या बिल्व चूर्ण गर्म पानी के साथ देते हैं।

कोष्ठबद्धता में सायंकाल बेल फल मज्जा मिसरी के साथ ली जाती है। इसमें मुरब्बा भी लाभ करता है। अग्निमंदता, अतिसार व गूदा गुड़ के साथ पकाकर या शहद मिलाकर देने से रक्तातिसार व खूनी बवासीर में लाभ पहुँचाते हैं। पके फल का जहाँ तक हो सके, इन स्थितियों में प्रयोग नहीं करना चाहिए। इसकी ग्राही क्षमता अधिक होने से हानि भी पहुँच सकती है। कब्ज निवारण हेतु पका फल उपयोगी है। पत्र का स्वरस आषाढ़ व श्रावण में निकाला जाता है। दूसरी ऋतुओं में निकाला गया रस उतना लाभकारी नहीं होता। काली मिरच के साथ दिया गया पत्रस्वरस पीलिया तथा पुराने कब्ज में आराम पहुँचाता है। हैजे के बचाव हेतु भी फल मज्जा प्रयुक्त हो सकती है।

अन्य उपयोग—आँखों के रोगों में पत्र स्वरस, उन्माद-अनिद्रा में मूल का चूर्ण, हृदय की अनियमितता में फल, शोथ रोगों में पत्र स्वरस का प्रयोग होता है।

श्वास रोगों में एवं मधुमेह निवारण हेतु भी पत्र का स्वरस सफलतापूर्वक प्रयुक्त होता है। विषम ज्वरों के लिए भी मूल का चूर्ण व पत्र स्वरस उपयोगी है। सामान्य दुर्बलता के लिए टॉनिक के समान प्रयोग करने के लिए बेल का उपयोग पुराने समय से ही होता आ रहा है। समस्त नाड़ी संस्थान को यह शक्ति देता है तथा कफ-वात के प्रकोपों को शांत करता है। 

Free Read/Download & Order 3000+ books authored by Yugrishi Pt. Shriram Sharma Acharya(Founder of All World Gayatri Pariwar) on all aspects of life in Hindi, Gujarati, English, Marathi & other languages at
www.vicharkrantibooks.org http://literature.awgp.org

५. अडूसा (वासा)
एढेटोडा बेसाइका

'वासयति आच्छादयति इति वासकः वासा' अर्थात जो सघन होने के कारण प्रदेश को आच्छादित कर ले, उसे वासक या वासा कहा जाता है। इसे वृष (फूलों में मधु अधिक होने से), वासक एवं मलाबार नट नाम से भी जाना जाता है।

वानस्पतिक परिचय—इसके झाड़ीदार, समूहगत क्षुप ४ से ८ फीट ऊँचे होते हैं, पत्ते ३ से ८ इंच लंबे तथा फूल सफेद रंग के २-३ इंच लंबी मंजरियों में लगे होते हैं। ये फरवरी-मार्च में आते हैं। तने पर पीले रंग की छाल होती है। फली तीन चौथाई इंच लंबी, रोम सहित होती है। प्रत्येक में ४ बीज होते हैं। यह क्षुप जड़ के ही ऊपर पृथ्वी के समीप शाखाओं-उपशाखाओं के रूप में फैलना आरंभ कर देता है। पत्ते रोमयुक्त कुछ हलकी सी दुर्गंध लिए होते हैं।

यह सारे भारत में १२०० से १४०० मीटर की ऊँचाई तक कंकरीली भूमि में उगता है। स्वयं ही समूहबद्ध क्षुप उग आते हैं। इसकी कुछ जातियाँ बंगाल व केरल में भी प्रचलित हैं। पर बहु प्रयुक्त वासा वही है, जिसे हम क्षुप रूप में जंगलों में समूह में लगा पाते हैं।

रोपण—इसे कलम के रूप में भी लगाया जा सकता है। गरम व रेतीली भूमि में यह जल्दी उगता है।

मिलावट की संभावना अधिक न होने से इसकी शुद्धाशुद्ध परीक्षा की कोई आवश्यकता नहीं।

संग्रह-संरक्षण, कालावधि—वासा के सदा हरित पौधे सर्वत्र सुलभ हैं। अतः पत्तों को ताजी अवस्था में ग्रहण कर संग्रह किया

Free Read/Download & Order 3000+ books authored by Yugrishi Pt. Shriram Sharma Acharya(Founder of All World Gayatri Pariwar) on all aspects of life in Hindi, Gujarati, English, Marathi & other languages at
www.vicharkrantibooks.org   http://literature.awgp.org

जाए। पत्र-पुष्पादि को छाया में सुखाकर अनार्द्र शीतल स्थान में मुख बंद पात्र में रखा जाए। औषधि कार्य हेतु उसे ही प्रयुक्त करना चाहिए। सामान्यतया ताजे पत्ते, सूखे पत्तों का चूर्ण, मूल की छाल का चूर्ण एवं पुष्प प्रयुक्त होते हैं। ६ माह तक संग्रहीत औषधि में गुण बने रहते हैं।

गुण, कर्म संबंधी मत—आचार्य सुश्रुत ने वासा को क्षय तथा कासनाशक माना है। आचार्य ने स्वयं अपने शब्दों में लिखा है—"शोष क्षय में इसके पंचांग व पुष्पों के कल्क से सिद्ध किया घृत-शहद मिलाकर सेवन करने से (दुगनी मात्रा में) प्रबल वेग युक्त कास व श्वास को तुरंत नष्ट करता है।"

यहाँ तक कहा गया है कि '**वासायां विद्यमानायामाशायां जीवितस्य च। रक्तपित्ती क्षयी कासी किमर्थमवसीदति।**' (वृंद माधव) अर्थात जीवन अवशेष और अडूसा के विद्यमान रहते हुए रक्त पित्त (रक्त वमन, हृदय, फेफड़ों से) क्षय तथा खांसी के रोगी किस लिए दुःख पा रहे हैं।

आचार्य चरक कहते हैं कि खाँसी के साथ कफ व रक्त हो तो वासा अकेली ही समर्थ औषधि है।

राज निघंटु के मतानुसार अडूसा खाँसी, रक्त पित्तनाशक, कफ निकालने वाली तथा ज्वर, श्वास व क्षय रोग को नष्ट करने वाली है।

श्री भाव मिश्र के अनुसार वासा श्वास हर, खाँसी का नाश करने वाली, कफ निवारक तथा ज्वर युक्त श्वास व क्षय रोग को नष्ट करती है।

आधुनिक वैज्ञानिकों में अग्रणी डॉ० चोपड़ा ने अपना मत व्यक्त करते हुए कहा है—इसके ताजे सुखाए गए पत्तों के चूर्ण को देने पर श्वास नली की शोथ (एक्यूट ब्रोंकाइटिस) से ग्रस्त रोगियों को तुरंत आराम मिला। वे रोगमुक्त हो गए व उनकी जीवनीशक्ति में अत्यधिक

Free Read/Download & Order 3000+ books authored by Yugrishi Pt. Shriram Sharma Acharya(Founder of All World Gayatri Pariwar) on all aspects of life in Hindi, Gujarati, English, Marathi & other languages at www.vicharkrantibooks.org http://literature.awgp.org

वृद्धि (एंटीबॉडी स्तर बढ़ने के रूप में) पाई गई है। क्रानिक ब्रोंकाइटिस (पुराने लंबे समय से चली आ रही खाँसी) में इसने लाभ किया। रोगियों का कफ पतला हो गया तथा आराम मिलने लगा। वेगस नाड़ी पर अपने तीव्र प्रभाव के कारण रोगी साँस भी आराम से ले सकने में समर्थ हो सके।

डॉ० देसाई का मत है कि पत्तों से भी अधिक कफ निस्सारक क्षमता मूल में है। मूल में विद्यमान घटक कफ को पतला करते हैं। रक्तवाही नलिकाओं को संकुचित कर रक्तस्राव रोकते हैं। इस प्रकार क्षय रोग में कफ के साथ आने वाले रक्त को रोकने में यह अति लाभकारी है।

डॉ० बसु व कीर्तिकर का कथन है कि वासा वायु नलिकाओं के फैलकर व्रणों का स्थान बनने जैसी स्थितियों में (ब्रांकिएक्टेसिस) व लंग एव्सेस में बहुत लाभकारी है। मटेरिया मेडिका ऑफ इंडिया में डॉ० आर०एन० खोरी लिखते हैं कि दमे के रोग में वासा की पत्तियों का धूम्रपान बहुत लाभ करता है। डॉ० दत्ता जैसे वैज्ञानिकों ने वासा की उपयोगिता को चिकित्सा जगत के समक्ष आज से लगभग सौ वर्ष पूर्व रख दिया था व क्षय रोग के रोगियों पर प्रयोग कर उन्हें लाभ होते बताया था।

पाश्चात्य चिकित्सा पद्धति के प्रणेता ही नहीं, होम्योपैथिक के भारतीय व जर्मन विद्वान वासा की प्रशंसा करते थकते नहीं। उनके अनुसार एलर्जी, नाक से छींक आना, सरदी से खाँसी हो जाना, गला बैठ जाना जैसी तकलीफों में तीसरी व ऊँची पोटेंसी में अडूसा का प्रयोग बहुत लाभ पहुँचाता है। निष्णात होम्योपैथी चिकित्सक अडूसा के मदर टिंक्चर को कुकुर खाँसी व साइनोसाइटिस जैसे रोगों में सफलता से प्रयुक्त करते हैं।

Free Read/Download & Order 3000+ books authored by Yugrishi Pt. Shriram Sharma Acharya(Founder of All World Gayatri Pariwar) on all aspects of life in Hindi, Gujarati, English, Marathi & other languages at www.vicharkrantibooks.org http://literature.awgp.org

यूनानी चिकित्सा पद्धति में इसे बांस, ख्वाजा और हशीश तुस्सुआल (खाँसी की बूटी—कास तृण) कहा गया है। उष्ण व रुक्ष मानते हुए हकीम लोग इसका प्रयोग श्लेषमा निस्सारक तथा जीवाणुनाशी—श्वास संस्थान की औषधि के रूप में करते हैं। यह स्वर शोधक भी है। यूनानी हकीम जड़ की छाल का काढ़ा तथा पत्रों का काढ़ा प्रयोग करते हैं। नकसीर व रक्तपित्त को यह तुरंत रोकता है, ऐसा हकीम दलजीत सिंह का मत है।

रासायनिक संगठन—इसकी पत्तियों में ०.२ से ०.४ प्रतिशत तक तिक्त एल्केलॉइड वासिकिन होता है। पत्तियों में वासा अम्ल (एढेटोडिक एसिड), इसेंशियल आइल्स, वसा, राल, शर्करा तथा रंजक पदार्थ व अमोनिया पाए गए हैं। पत्तियों में प्रचुर मात्रा में लवण होते हैं, जिनमें पोटेशियम नाइट्रेट प्रमुख है। वासा की जड़ में भी वासिकिन की मात्रा काफी होती है। इस औषधि के गुण इन्हीं घटकों वासिकिन तथा वासा अम्ल व सुगंधित तेल के कारण हैं।

आधुनिक मत एवं वैज्ञानिक प्रयोग-निष्कर्ष—अध्ययन बताते हैं कि वासा की पत्तियों का सारभूत तेल (इसेंशियल ऑइल) जीवाणु-नाशक क्षमता रखता है। यह कफ निस्सारक भी है। वासिकिन नामक एल्केलॉइड फेफड़ों की श्वास नलियों को फैलाता है, उसका यह प्रभाव थोड़ी देर नहीं, काफी समय तक बना रहता है। इसका कारण संभवत: वेगस नाड़ी के प्रभाव से प्रतिकूल इस रसायन का प्रभाव होना है। वेगस के उत्तेजन से उत्सर्जित रसायन जहाँ श्वास नलियों को सिकोड़ते हैं वहाँ इस औषधि के एल्केलॉइड्स इस प्रभाव को निरस्त कर देते हैं। पाइलोकार्पीन नामक औषधि वासा के प्रभाव को रोक देती है एवं यह हर प्रकार के प्रभाव में वेगस से मिलती-जुलती है। एल्केलॉइड व सारभूत तेल का कफ निस्सारक प्रभाव मिलकर श्वास

Free Read/Download & Order 3000+ books authored by Yugrishi Pt. Shriram Sharma Acharya(Founder of All World Gayatri Pariwar) on all aspects of life in Hindi, Gujarati, English, Marathi & other languages at
www.vicharkrantibooks.org http://literature.awgp.org

रोगों के लिए इसे एक प्रभावशाली औषधि बना देते हैं। इंडियन जनरल ऑफ फारमेसिट्यूकल साइन्स (४१,६, १९७९) के अनुसार वासा का यह मुख्य घटक तेल श्वास नलिकाओं को फैलाता है तथा वासिकिन सहायक भूमिका निभाता है।

ग्राह्य अंग—पत्र, पुष्प, मूल की छाल एवं पंचांग, चारों रूपों में यह प्रयुक्त हो सकता है।

मात्रा—पत्र का स्वरस (ताजा) १० से २० मिलीलीटर (२ से ४ चम्मच)। पुष्प स्वरस (ताजा) १० से २० मिलीलीटर। मूल क्वाथ १ औंस से २ औंस तक। पंचांग चूर्ण १० से २० ग्राम।

निर्धारणानुसार प्रयोग—(१) खाँसी के लिए वासा के पत्रों का स्वरस १० ग्राम, शहद ५ ग्राम के साथ मिलाकर प्रातः सायं सेवन कराया जाता है। ताजे पत्र न मिल पाने की स्थिति में अडूसा के छाया में सुखाए फूलों का चूर्ण मधु के साथ देते हैं (निघंटु आदर्श) अथवा अडूसे की छाल का क्वाथ १ औंस सुबह-शाम देते हैं।

(२) बच्चों की काली खाँसी (कुकुर खाँसी) में वासा जड़ का क्वाथ डेढ़ से दो चम्मच २ से ३ बार दिया जाता है।

(३) कास एवं श्वास साथ हों तो छाल का चूर्ण १० से २० ग्राम मात्रा में कफ निकालने के लिए दें। वासा मूल १ पाव लेकर यदि उसे विधिपूर्वक शरबत रूप में बना लिया जाए व उसे नित्य उचित मात्रा में सेवन कराएँ तो पुरानी खाँसी व दमा जड़ से नष्ट हो जाते हैं।

(४) क्षय रोग में वासा पत्र स्वरस १० ग्राम शहद के साथ दें। वासा पंचांग का चूर्ण या सिद्ध घृत भी शहद के साथ देने पर तुरंत लाभ करता है।

वासा के फूलों को दुगनी मात्रा में मिसरी में मिलाकर मिट्टी या कांच के पात्र में मिलाकर रखने पर गुलकंद तैयार हो जाता है। ६ से

Free Read/Download & Order 3000+ books authored by Yugrishi Pt. Shriram Sharma Acharya(Founder of All World Gayatri Pariwar) on all aspects of life in Hindi, Gujarati, English, Marathi & other languages at
www.vicharkrantibooks.org http://literature.awgp.org

१० ग्राम मात्रा में नित्य लिए जाने पर कास-श्वास, रक्त पित्त, पीनस, पुराना जुकाम, साइनोसाइटिस राजयक्ष्मा में लाभ पहुँचाता है।

(५) ज्वर युक्त दमा में यह कफ को पतला कर तुरंत बाहर निकालता है, वेग कम करता है तथा रक्त नलिकाओं के वायु कोशों में प्रवाह को कम करता है।

अन्य उपयोग—स्थानीय रोगों में, नाड़ी शूल तथा व्रणों में कल्क का; चर्मरोगों में पत्र का तथा स्वरस का बाहरी कृमियों को मारने में लेप के रूप में प्रयोग करते हैं।

आंतरिक प्रयोग में श्वसन संस्थान में इसके उपयोग के अतिरिक्त यह रक्तस्राव रोकने वाला भी है। यह पसीना लाता है, इस कारण ज्वर उतारता है। सारे शरीर में धातु निर्माण क्रिया को बढ़ाने के कारण कमजोरी के बाद टॉनिक के रूप में प्रयुक्त होता है।



शुम्भनी द्यावापृथिवी अन्ति सुम्ने महिव्रते।
आपः सप्त सुस्रुवुर्देवीस्ता नो मुञ्चन्त्वंहसः॥

जिस प्रकार सूर्य, पृथिवी एक नियत व्यवस्था से वर्षा, प्रकाश और अन्न द्वारा प्रजा का हित संपादन करते हैं, वैसे ही मनुष्यों को भी चाहिए कि वे इंद्रियों को नियमित बनाकर अपराधों से बचने का प्रयत्न करते रहें।

—*अथर्ववेद ७/११७/१*

Free Read/Download & Order 3000+ books authored by Yugrishi Pt. Shriram Sharma Acharya(Founder of All World Gayatri Pariwar) on all aspects of life in Hindi, Gujarati, English, Marathi & other languages at
www.vicharkrantibooks.org http://literature.awgp.org

६. भारंगी (भार्ङ्गी ब्राह्मणयष्टिका)
क्लेरोडेण्ड्रान सेरेटम

यह झाड़ीदार क्षुप सारे भारत में होता है। इसका पौधा अधिक नमी पसंद करता है। उसी कारण यह घास के मैदानों एवं नदी-नालों के आस-पास विशेषकर हिमालय की तराई में नेपाल, कुमाऊँ, बंगाल, बिहार में ४००० फीट की ऊँचाई तक अधिक पाया जाता है। गढ़वाल-देहरादून की पहाड़ियों में भी यह प्रचुरता से मिलता है।

वानस्पतिक परिचय—बहुवर्षायु गुल्म रूपी क्षुप ५ से ८ फीट ऊँचे होते हैं। ये शाखा रहित अथवा कम शाखाओं वाले होते हैं। शाखाएँ अनियमित क्रम में फैली पीले रंग की होती हैं। तना १ से २ मीटर तक लंबा होता है। पत्तियाँ ३ से ६ इंच लंबी लगभग इतनी ही चौड़ी, नोकदार, तीखी, ऊपर की ओर काले धब्बों से युक्त होती हैं। पिछला भाग रोम युक्त होता है। फूलों की मंजरी रोम युक्त ६ इंच लंबी व एक इंच चौड़ी होती है। इनकी पृष्ठ शाखाओं पर सफेद या नीले सुगंधित पुष्प आते हैं। फल गोल, मांसल आधे इंच व्यास के जामुनी रंग के होते हैं। अप्रैल से नवंबर तक पुष्प व फल आते हैं। वर्षा में पक जाते हैं। इसकी जड़ ग्रंथियुक्त होती है। इस अंग मूल को ही प्रयुक्त करते हैं।

मिलावट—इस औषधि के गुण, धर्म इस जाति की अन्य औषधियों से बिलकुल ही भिन्न हैं। इसी कारण अग्निमंथा या क्लेरोडेण्ड्रान, फ्लोमिडस, इण्डिकस तथा बमनहाटी (प्रेमला हर्वोसिया) से अलग पहचानना बहुत अनिवार्य है, क्योंकि एक से दीखने के कारण इनमें मिलावट बहुधा की जाती है। अग्निमंथा का प्रयोग वृहत पंचमूल तथा दशमूल में होता है एवं श्वास संस्थान पर इसका कोई

Free Read/Download & Order 3000+ books authored by Yugrishi Pt. Shriram Sharma Acharya(Founder of All World Gayatri Pariwar) on all aspects of life in Hindi, Gujarati, English, Marathi & other languages at
www.vicharkrantibooks.org http://literature.awgp.org

प्रभाव नहीं होता। पिक्राज्मा की छाल भी भारंगी के नाम से बेची जाती है। इन्हें परस्पर पहचानना वानस्पतिक परिचय से ही संभव है।

रोपड़—इसके तनें या शाखाओं की ३ से ६ इंच लंबी कलमें जमीन में विशेषकर रेत प्रधान भूमि में शीघ्र ही जड़ पकड़ लेती हैं। 'डिक्सनरी ऑफ गार्डनिंग' के अनुसार भारंगी धूप, गरमी और जल प्रचुरता से चाहती है।

संग्रह तथा संरक्षण—शीत ऋतु में भारंगी की जड़ का संग्रह कर छाया में सुखा लेते हैं तथा सूखे मुखबंद पात्रों में सुरक्षित कर लेते हैं।

कालावधि—६ माह से एक वर्ष तक इस औषधि को प्रयुक्त किया जा सकता है।

गुण-कर्म संबंधी मत—इस औषधि को श्वास रोगों में अत्यंत लाभकारी बताया गया है। भावप्रकाश ने शोथ, काश, कफ, श्वास, पीनस, ज्वर में इसे प्रयुक्त करने का विधान बताया है तथा इससे शत प्रतिशत लाभ होने की बात कही है। इसका प्रधान कर्म कफ, वात शमन, शोथ हरण, स्वेद जनन, कफघ्न तथा श्वास-कास हरण माना गया है।

डॉ० खोरी ने भारंगी को फुफ्फुसीय श्लेष्म रोगों को हरने वाला माना है तथा डॉ० कोमान के अनुसार भारंगी अनेकानेक कारणों से उत्पन्न फेफड़ों की विकृति मिटाने के लिए उपयोग में लाई जाती है। श्री नादकर्णी मानते हैं कि भारंगी की जड़ का क्वाथ दमा, एक्यूट व क्रोनिक ब्रोंकाइटिस तथा फेफड़ों के अन्य श्लेष्म स्रावी रोगों में तुरंत लाभ पहुँचाता है।

यूनानी चिकित्सा पद्धति में इसका प्रयोग मुख्यत: कफयुक्त रोगों में तथा दमे में होता है। इस औषधि के विषय में अधिक शास्त्रीय व

Free Read/Download & Order 3000+ books authored by Yugrishi Pt. Shriram Sharma Acharya(Founder of All World Gayatri Pariwar) on all aspects of life in Hindi, Gujarati, English, Marathi & other languages at
www.vicharkrantibooks.org http://literature.awgp.org

आधुनिक मत नहीं मिलते, परंतु आधुनिक समय के वैद्यों ने प्रयोग कर पाया है कि श्वास का वेग शांत करने की यह एक अति लाभकारी औषधि है। वैसे अरुचि अग्निमंदता में पाचक, दीपक, वात शामक होने के अपने गुण के कारण प्रयुक्त तो होती रही है पर श्वास संस्थान पर इसकी कार्य करने की विधि क्या होती है, यह एक शोध का विषय है।

रासायनिक संगठन—प्रयोज्य अंग मूल की छाल में अनेक जैव सक्रिय पदार्थ पाए जाते हैं। इनमें प्रमुख हैं—मैनिटॉल एवं ग्लाइकोसाइड्स। केलकटा स्कूल ऑफ ट्रॉपिकल मेडीसिन के शोध कार्यों के अनुसार (डॉ० वासवद्, बुलेटिन-१५, ६१, १९६२) भारंगी की जड़ की छाल में लगभग १०.९ प्रतिशत डी-मैनिटॉल होता है।

ग्लाइकोसाइड्स की रचना काफी जटिल है। इनमें से ओलियानोलिक अम्ल, क्वेरेटेरोइक अम्ल और एक नवीनतम सिरोटोजेनिक अम्ल होता है। यह अंतिम घटक अपनी क्रिया द्वारा एलर्जी के लिए उत्तरदायी रसस्रावों के प्रभाव को कम करता है तथा विशिष्ट स्थानों पर उन्हें प्रभावहीन बनाता है। यह प्रक्रिया ठीक उसी प्रकार होती है जैसी कि पाश्चात्य चिकित्सा पद्धति की एंटी हिस्टामिनिक औषधियों की होती है। कोलीनेस्टरेज नामक रसायन भी एलर्जी प्रक्रिया द्वारा छींके लाने तथा दमे जैसी स्थिति उत्पन्न करने के लिए उत्तरदायी है। पौधे के सैपोनिन्स में इस रसायन की प्रतिरोधी क्रिया जैसे गुण-धर्म पाए गए हैं।

आधुनिक मत एवं वैज्ञानिक प्रयोग निष्कर्ष—आधुनिक शोधों ने यह प्रमाणित कर दिखाया है कि इस औषधि के प्रधान भेषजीय गुण फेफड़ों पर इसकी क्रिया के कारण हैं। मेडीसिनल प्लांट्स ऑफ इंडिया के अनुसार भारंगी के जड़ की छाल का निष्कर्ष फेफड़ों से

Free Read/Download & Order 3000+ books authored by Yugrishi Pt. Shriram Sharma Acharya(Founder of All World Gayatri Pariwar) on all aspects of life in Hindi, Gujarati, English, Marathi & other languages at
www.vicharkrantibooks.org http://literature.awgp.org

हिस्टामिन उत्सर्जित करता है। हिस्टामिन रहित फेफड़ों के टारगेट अंग काफी सीमा तक 'एनाफाइलेक्सिस' या एलर्जी जैसी स्थिति से बच जाते हैं। गिनीपिगों पर इस प्रकार के प्रयोग सफलतापूर्वक किए गए हैं। श्री सचदेव आदि के अनुसार (इंडियन जनरल ऑफ फार्मेकालॉजी-२६,१०५,१९६४) के अनुसार भारंगी की जड़ के जल निष्कर्ष में तीव्र एण्टीएलर्जिक गुण होते हैं।

इसी प्रकार श्री मोधे व गुप्ता जैसे वैज्ञानिकों ने भारंगी से निकाले गए सैपोनिन को रक्त में स्यूडो कोलीनेस्टेरस की सक्रियता बढ़ाते तथा मास्ट कोशों को प्रभावित करते पाया है। बनारस हिंदू यूनिवर्सिटी में श्वास रोगियों पर किए गए एक कंट्रोल ट्रायल से सिद्ध हो गया है कि भारंगी के रासायनिक घटक रक्त में घुलकर श्वसन रोकने की अवधि को बढ़ाते हैं। रक्त कोशिकाओं के बैठने की गति (ई०एस०आर०) कम करते हैं तथा श्वेत कणों में वृद्धि करते हैं। इससे रक्त में दौड़ रहे हिस्टामिन एन्जाइम के स्तर में कमी आती है, जिससे श्वास की गहराई बढ़ जाती है। (गुजरात आयुर्वेदिक यूनीवर्सिटी जामनगर-सेमीनार, नवंबर १९७७)

ग्राह्य अंग—जड़-पर्ण अथवा छाल।

मात्रा—३ से ६ ग्राम प्रत्येक बार। दिन में २ या ३ बार रोगी की स्थिति के अनुसार।

निर्धारणानुसार उपयोग—सूखी खांसी में भारंगी जड़ का स्वरस २ भाग तथा दही ४ भाग मिलाकर देते हैं। श्वास रोग में मूल का कपड़छन चूर्ण ३ ग्राम आधे घंटे से २ या ३ बार इतनी ही मात्रा में शहद के साथ देते हैं। भारंगी का कल्प व शरबत भी प्रयुक्त होता है। परंतु चूर्ण व शहद का अनुपान श्रेयस्कर माना गया है। हिचकियों में भी मूल का चूर्ण मधु के साथ तुरंत लाभ पहुँचाता है। डॉ० प्रियव्रत शर्मा के

Free Read/Download & Order 3000+ books authored by Yugrishi Pt. Shriram Sharma Acharya(Founder of All World Gayatri Pariwar) on all aspects of life in Hindi, Gujarati, English, Marathi & other languages at
www.vicharkrantibooks.org http://literature.awgp.org

अनुसार मूल का स्वरस अदरक के स्वरस में मिलाकर देने से श्वास का वेग शांत हो जाता है तथा कफ निकलकर तुरंत राहत मिलती है। शोथनाशक होने के नाते फेफड़ों की श्लेष्मा सूजन-प्रतिश्याय आदि में यह अति लाभकारी पाया गया है। फेफड़ों के व्रणों के साथ ज्वर होने पर यह तुरंत उसे शांत करता है तथा रोगाणुओं के फैलने की गति को रोकता है।

अन्य उपयोग—बाह्य प्रयोग में इसकी पत्तियों का लेप व्रणों को पकाने तथा थाइराइड के गंडमाला रोगों में किया जाता है। अरुचि, अग्निमंदता, क्रानिक गेस्ट्राइटिस, रक्त विकारों तथा हर प्रकार के शोथ युक्त ज्वरों में भी इसका प्रयोग करते हैं।

इस औषधि पर अभी प्रयोग चल रहे हैं। बहुसंख्यक वैद्य परंपरागत रूप से श्वास संस्थान के रोगों में अन्य औषधियों का प्रयोग करते आए हैं, परंतु अब इसकी उपयोगिता व आधुनिक प्रयोगों के निष्कर्ष से इसके प्रयोगों की शृंखला चल पड़ी है। इस औषधि का भविष्य उज्ज्वल है व यह मानकर चलना चाहिए कि एकौषधि प्रयोग से एक नया ही अध्याय आयुर्विज्ञान में और जुड़ेगा।



Free Read/Download & Order 3000+ books authored by Yugrishi Pt. Shriram Sharma Acharya(Founder of All World Gayatri Pariwar) on all aspects of life in Hindi, Gujarati, English, Marathi & other languages at
www.vicharkrantibooks.org http://literature.awgp.org

७. अर्जुन
टर्मिनेलिया अर्जुन

इसे धवल, ककुभ तथा नदीसर्ज (नदी नालों के किनारे होने के कारण) भी कहते हैं। कहुआ तथा सादड़ी नाम से बोलचाल की भाषा में प्रख्यात यह वृक्ष एक बड़ा सदाहरित पेड़ है। लगभग ६० से ८० फीट ऊँचा होता है तथा हिमालय की तराई, शुष्क पहाड़ी क्षेत्रों में नालों के किनारे तथा बिहार, मध्य प्रदेश में काफी पाया जाता है।

वानस्पतिक परिचय—इसकी छाल पेड़ से उतार लेने पर फिर उग आती है। छाल का ही प्रयोग होता है। अत: उगने के लिए कम से कम दो वर्षा ऋतुएँ चाहिए। एक वृक्ष में छाल तीन साल के चक्र में मिलती है। छाल बाहर से सफेद, अंदर से चिकनी, मोटी तथा हलके गुलाबी रंग की होती है। लगभग ४ मिलीमीटर मोटी यह छाल वर्ष में एक बार स्वयमेव निकलकर नीचे गिर पड़ती है। स्वाद कसैला, तीखा होता है तथा गोदने पर वृक्ष से एक प्रकार का दूध निकलता है।

पत्ते अमरूद के पत्तों जैसे ७ से २० सेंटीमीटर लंबे आयताकार होते हैं या कहीं-कहीं नुकीले होते हैं। किनारे सरल तथा कहीं-कहीं सूक्ष्म दाँते वाले होते हैं। वे वसंत में नए आते हैं तथा छोटी-छोटी टहनियों पर लगे होते हैं। ऊपरी भाग चिकना व निचला रुक्ष तथा शिरायुक्त होता है। फल वसंत में ही आते हैं, सफेद या पीले मंजरियों में लगे होते हैं। इनमें हलकी सी सुगंध भी होती है। फल लंबे अंडाकार ५ या ७ धारियों वाले जेठ से श्रावण मास के बीच लगते हैं व शीतकाल में पकते हैं। २ से ५ सेंटीमीटर लंबे ये फल कच्ची अवस्था में

Free Read/Download & Order 3000+ books authored by Yugrishi Pt. Shriram Sharma Acharya(Founder of All World Gayatri Pariwar) on all aspects of life in Hindi, Gujarati, English, Marathi & other languages at
www.vicharkrantibooks.org http://literature.awgp.org

हरे, पीले तथा पकने पर भूरे-लाल रंग के हो जाते हैं। फलों की गंध अरुचिकर व स्वाद कसैला होता है। फल ही अर्जुन का बीज है। अर्जुन वृक्ष का गोंद स्वच्छ सुनहरा, भूरा व पारदर्शक होता है।

शुद्धाशुद्ध परीक्षा—अर्जुन जाति के कम से कम पंद्रह प्रकार के वृक्ष भारत में पाए जाते हैं। इसी कारण कौन सी औषधि हृदय रक्त संस्थान पर कार्य करती है, यह पहचान करना बहुत जरूरी है। 'ड्रग्स ऑफ हिंदुस्तान' के विद्वान लेखक डॉ० घोष के अनुसार आधुनिक वैज्ञानिक अर्जुन के रक्तवाही संस्थान पर प्रभाव को बता सकने में असमर्थ इस कारण रहे हैं कि इनमें आकृति में सदृश सजातियों की मिलावट बहुत होती है। छाल एक सी दीखने पर भी उनके रासायनिक गुण व भैषजीय प्रभाव सर्वथा भिन्न हैं।

सही अर्जुन की छाल अन्य पेड़ों की तुलना में कहीं अधिक मोटी तथा नरम होती है। शाखारहित यह छाल अंदर से रक्त सा रंग लिए होती है। पेड़ पर से छाल चिकनी चादर के रूप में उतर आती है, क्योंकि पेड़ का तना बहुत चौड़ा होता है।

संग्रह—अर्जुन की छाल को सुखाकर सूखे शीतल स्थान में चूर्ण रूप में बंद रखा जाता है।

कालावधि—इसकी प्रभावी सामर्थ्य २ वर्ष होती है।

गुण-कर्म संबंधी विभिन्न मत—प्राचीन आयुर्वेद शास्त्रियों में वाग्भट्ट एक ऐसे वैद्य हैं, जिन्होंने पहली बार इस औषधि के हृदय रोग में उपयोगी होने की विवेचना की। उनके बाद चक्रदत्त व भाव मिश्र ने भी इसे हृदय रोगों की महौषधि माना। चक्रदत्त का कहना है कि घी, दूध या गुड़ के साथ जो अर्जुन की त्वचा का चूर्ण नियमित रूप से लेता है, उसे हृदय रोग, जीर्णज्वर, रक्त पित्त कभी नहीं सताते तथा वह चिरंजीवी होता है। भाव मिश्र के अनुसार—

Free Read/Download & Order 3000+ books authored by Yugrishi Pt. Shriram Sharma Acharya(Founder of All World Gayatri Pariwar) on all aspects of life in Hindi, Gujarati, English, Marathi & other languages at
www.vicharkrantibooks.org http://literature.awgp.org

ककुभोऽर्जुन नामाख्यो नदीसर्जश्च कीर्त्तितः।
इन्द्रदुर्वीरवृक्षश्च वीरश्च धवलः स्मृतः॥
ककुभो शीतलो हृद्यः क्षतक्षयविपाश्रजित्।
मेदोमेह वृणान् हन्ति तुवरः कफपित्त कृत्॥

अनेकों निघंटुओं में अर्जुन सिद्ध घृत को हृदय रोगों की, चाहे वे किसी भी प्रकार के हों, अचूक दवा माना गया है। हृदयशूल के लिए अर्जुन की छाल का क्वाथ या चूर्ण विभिन्न अनुपानों के साथ लिए जाने का विधान जगह-जगह बताया गया है। निघंटु रत्नाकर के अनुसार अर्जुन बलकारक है तथा अपने लवण-खनिजों के कारण हृदय की मांसपेशियों को सशक्त बनाता है।

डॉ० खोरी अपनी पुस्तक 'मटेरिया मेडिका ऑफ इंडिया' में लिखते हैं कि अर्जुन हृदय रोगों में कषाय होने के कारण मांसपेशियों के लिए एक टॉनिक का काम करता है।

डॉ० देसाई के अनुसार अर्जुन से रक्तवाही नलिकाओं का संकुचन होता है। विशेषकर सूक्ष्म कोशिकाओं व छोटी धमनियों पर इसके प्रभाव से रक्ताभिषरण क्रिया बढ़ती है। हृदय को ठीक पोषण मिलता है व धड़कन नियमित-व्यवस्थित होने लगती है। 'डिजिटेलिस परप्यूरा' नामक पौधे से प्राप्त व बाद में कृत्रिम संश्लेषण से बनी 'डिजॉक्सिन' नामक पाश्चात्य औषधि से तुलना करते हुए वे लिखते हैं कि अर्जुन हृदय के विराम काल को बढ़ाते हुए उसे बल भी पहुँचाता है तथा शरीर में संचित नहीं होता। मूत्र की मात्रा बढ़ाकर यह मूत्र द्वारा ही बाहर निकल जाता है। किसी भी रोग की जटिल परिणति हार्ट फैल्योर में इसका यह कर्म अति लाभकारी सिद्ध होता है।

पेट के बढ़ने का रोग आयुर्वेद विद्वान हृदय की दुर्बलता के कारण मानते हैं तथा मेदोवृद्धि से हृदय दुर्बल होता है। यह तथ्य भी

Free Read/Download & Order 3000+ books authored by Yugrishi Pt. Shriram Sharma Acharya(Founder of All World Gayatri Pariwar) on all aspects of life in Hindi, Gujarati, English, Marathi & other languages at
www.vicharkrantibooks.org http://literature.awgp.org

सत्य मानते हैं। अर्जुन इस दूषित चक्र की गति बंद कर मेदोवृद्धि का नाश करता है व हृदय के रक्तस्त्रोतों को बल प्रदान करता है।

डॉ० नादकर्णी आदि का मत है कि यदि हृदय पेशियाँ अशक्त हों, रक्त न मिल पाने के कारण मृतप्राय हों (वैज्ञानिक भाषा में मायोकार्डियल इन्फारक्शन), धमनियों में रक्त दाब कम हो गया हो व हृदय फूला हुआ हो (डाइलेटेड, हाइपर ट्रॉफीड) इन लक्षणों से युक्त हृदय रोगों में अर्जुन कार्य कर सामान्य स्थिति वापस लाता है। यह वह कार्य हृदय की कोरोनरी धमनियों में रक्तप्रवाह बढ़ाकर तथा प्रतिरक्त स्तंभन (एंटीकोएगुलैंट) प्रभाव द्वारा करता है।

डॉ० के० सी० बोस के अनुसार हृदय की प्राकृत स्थिति में तो अर्जुन का विशेष परिणाम दृष्टिगोचर नहीं होता, लेकिन यदि उसकी क्रिया मंद हो गई हो तो अर्जुन तत्काल प्रभाव दिखाता है।

'वैल्थ ऑफ इंडिया' में वैज्ञानिकों ने एक स्वर से अर्जुन की प्रशंसा की है व अपने प्रयोगों द्वारा पाया है कि इसकी छाल का चूर्ण उच्च रक्तचाप में लाभ करता है। यह चूर्ण मूत्र विरेचक भी है। इस प्रकार यह हृदय पर अतिरिक्त भार को अपने द्विमुखी प्रभाव से तुरंत कम कर देता है।

होम्योपैथी में अर्जुन एक प्रचलित ख्याति प्राप्त औषधि है। हृदयरोग संबंधी सभी लक्षणों में विशेषकर क्रिया विकार जन्य तथा यांत्रिक गड़बड़ी के कारण उत्पन्न हुए विकारों में इसके तीन एक्स व तीसवीं पोटेन्सी में प्रयोग को होम्योपैथी के विद्वानों ने बड़ा सफल बताया है।

अर्जुन संबंधी मतों में प्राचीन व आधुनिक विद्वानों में पर्याप्त मतभेद है। फिर भी धीरे-धीरे शोध कार्य द्वारा शास्त्रोक्त प्रतिपादन अब सिद्ध होते चले जा रहे हैं।

Free Read/Download & Order 3000+ books authored by Yugrishi Pt. Shriram Sharma Acharya(Founder of All World Gayatri Pariwar) on all aspects of life in Hindi, Gujarati, English, Marathi & other languages at
www.vicharkrantibooks.org http://literature.awgp.org

रासायनिक संगठन—अर्जुन की छाल में पाए जाने वाले मुख्य घटक हैं—बीटा साइटोस्टेरॉल, अर्जुनिक अम्ल तथा फ्रीडेलीन। अर्जुनिक अम्ल ग्लूकोज के साथ एक ग्लूकोसाइड बनाता है, जिसे अर्जुनेटिक कहा जाता है। इसके अलावा अर्जुन की छाल में पाए जाने वाले अन्य घटक इस प्रकार हैं—(१) टैनिन्स—छाल का २० से २५ प्रतिशत भाग टैनिन्स से ही बनता है। पायरोगेलाल व केटेकॉल दोनों ही प्रकार के टैनिन होते हैं। (२) लवण—कैल्शियम कार्बोनेट लगभग ३४ प्रतिशत की मात्रा में इसकी राख में होता है। अन्य क्षारों में सोडियम, मैग्नीशियम व एल्युमीनियम प्रमुख हैं। इस कैल्शियम सोडियम पक्ष की प्रचुरता के कारण ही यह हृदय की मांसपेशियों में सूक्ष्म स्तर पर कार्य कर पाता है। (३) विभिन्न पदार्थ हैं—शकर, रंजक पदार्थ, विभिन्न अज्ञात कार्बनिक अम्ल व उनके ईस्टर्स।

आधुनिक मत एवं वैज्ञानिक प्रयोग निष्कर्ष—अभी तक अर्जुन से प्राप्त विभिन्न घटकों के प्रायोगिक जीवों पर जो प्रभाव देखे गए हैं, उससे इसके वर्णित गुणों की पुष्टि ही होती है। विभिन्न प्रयोगों द्वारा पाया गया है कि अर्जुन से हृदय की पेशियों को बल मिलता है, स्पंदन ठीक व सबल होता है तथा उसकी प्रति मिनट गति भी कम हो जाती है। स्ट्रोक वाल्यूम तथा कार्डियक आउटपुट बढ़ती है। हृदय सशक्त व उत्तेजित होता है। इनमें रक्त स्तंभक व प्रतिरक्त स्तंभक दोनों ही गुण हैं। अधिक रक्तस्राव होने की स्थिति से या कोशिकाओं की रुक्षता के कारण टूटने का खतरा होने पर यह स्तंभक की भूमिका निभाता है, लेकिन हृदय की रक्तवाही नलिकाओं (कोरोनरी धमनियों) में थक्का नहीं बनने देता तथा बड़ी धमनी से प्रति मिनट भेजे जाने वाले रक्त के आयतन में वृद्धि करता है। इस प्रभाव के कारण यह शरीर व्यापी तथा वायु कोषों में जमे पानी को मूत्र मार्ग से बाहर निकाल देता है। खनिज लवणों के सूक्ष्म रूप में उपस्थित होने के कारण यह एक तीव्र हृत्पेशी उत्तेजक भी है।

Free Read/Download & Order 3000+ books authored by Yugrishi Pt. Shriram Sharma Acharya(Founder of All World Gayatri Pariwar) on all aspects of life in Hindi, Gujarati, English, Marathi & other languages at
www.vicharkrantibooks.org http://literature.awgp.org

ग्राह्य अंग—अर्जुन की छाल, पत्र तथा फल।

मात्रा—छाल का चूर्ण ३ से ६ ग्राम दूध, गुड़ या घी के साथ २ या ३ बार। छाल का क्वाथ ५० से १०० मिलीलीटर। पत्र स्वरस १० से २० मिलीलीटर। क्षीरपाक ५ से १० ग्राम।

निर्धारणानुसार प्रयोग—हृदय में शिथिलता आने पर या शोथ होने पर (क्रानिक कन्जेस्टिव फैल्योर) अर्जुन की छाल व गुड़ को दूध में मिलाकर औटा कर पिलाते हैं। हृदयाघात, हृदय शूल में अर्जुन की छाल से सिद्ध दूध अथवा ३ से ६ ग्राम छाल घी या गुड़ के शरबत के साथ देते हैं।

अर्जुन घृत बनाने के लिए आधा किलो अर्जुन की छाल जौकुट करके ४ किलो जल में पकाई जाती है। चौथाई जल शेष रहने पर अर्जुन कल्क ५० ग्राम व गाय का घी २५९ ग्राम मिलाकर पाक करते हैं। जब जल उड़ जाता है, मात्र घी शेष रह जाता है तो यह सिद्ध घृत बन जाता है। ६ से ११ ग्राम मात्रा दी जाती है। यह समस्त प्रकार के हृदय रोगों में उपयोगी है। यह रक्त पित्त भी रोकता है तथा वासा पत्र के स्वरस के साथ मिलकर देने पर टी०वी० के रोगी की खाँसी तुरंत दूर करता है।

अन्य उपयोग—कफ-पित्त शामक है। स्थानीय लेप के रूप में बाह्य रक्तस्राव में तथा व्रणों में पत्र स्वरस या त्वक चूर्ण का प्रयोग करते हैं। खूनी बवासीर में खून बहना रोकता है। वक्षदाह व जीर्ण खाँसी में लाभ पहुँचाता है। पेशाब की जलन, श्वेत प्रदर तथा चर्म रोगों में चूर्ण रूप में लिए जाने पर लाभकारी है। सामान्य दुर्बलता के निवारण तथा विशेषोपचार में भी यह सामंजस्य की स्थिति लाने के लिए प्रयुक्त होता है। हड्डी टूटने पर इसकी छाल का स्वरस दूध के साथ देते हैं। इससे रोगी को आराम मिलता है, सूजन व दरद कम होता है तथा शीघ्र ही सामान्य स्थिति आने में मदद मिलती है।



Free Read/Download & Order 3000+ books authored by Yugrishi Pt. Shriram Sharma Acharya(Founder of All World Gayatri Pariwar) on all aspects of life in Hindi, Gujarati, English, Marathi & other languages at
www.vicharkrantibooks.org http://literature.awgp.org

८. पुनर्नवा
बोअरहेविया डिफ्यूजा

'पुनः पुनर्नवा भवति' अर्थात जो फिर से प्रतिवर्ष नवीन हो जाए अथवा **'शरीरं पुनर्नवं करोति'** अर्थात जो रसायन एवं रक्तवर्द्धक होने से शरीर को पुनः नया बना दे, उसे पुनर्नवा कहते हैं। इस विशेषणात्मक उक्ति की पृष्ठभूमि पूर्णतः वैज्ञानिक है। पुनर्नवा का पौधा जब सूख जाता है तो वर्षा ऋतु आने पर इनसे शाखाएँ पुनः फूट पड़ती हैं और पौधा अपनी मृत जीर्ण-शीर्णावस्था से दोबारा नया जीवन प्राप्त कर लेता है। इस विलक्षणता के कारण ही इसे ऋषिगणों ने पुनर्नवा नाम दिया है। इसे शोथहीन व गदहपूरना भी कहते हैं।

वानस्पतिक परिचय—पुनर्नवा के नामों के संबंध में भारी मतभेद रहा है। कौन सी पुनर्नवा औषधीय क्षमता रखती है व कौन सी नहीं, इस पर भारी विवाद चलता रहा। भारत के भिन्न-भिन्न भागों में तीन अलग-अलग प्रकार के पौधे पुनर्नवा नाम से जाने जाते हैं। ये हैं—बोअरहेविया डिफ्यूजा, इरेक्टा तथा रीपेंडा। आइ०सी०एम०आर० के वैज्ञानिकों ने वानस्पतिकी के क्षेत्र में शोध कर 'मेडीसिनल प्लांट्स ऑफ इंडिया' नामक ग्रंथ में इस विषय पर लिखकर काफी कुछ भ्रम को मिटाया है। उनके अनुसार बोअरहेविया डिफ्यूजा जिसके पुष्प श्वेत होते हैं ही औषधीय है। बाजार में उपलब्ध पुनर्नवा में बहुधा एक अन्य मिलती-जुलती वनस्पति ट्रांएंथीला पॉरचूली कास्ट्रम की मिलावट की जाती है। रक्त पुनर्नवा एक सामान्य पाई जाने वाली घास है जो सर्वत्र सड़कों के किनारे उगी फैली हुई मिलती है। श्वेत पुनर्नवा रक्त वाली प्रजाति बहुत कम सुलभ है इसलिए

Free Read/Download & Order 3000+ books authored by Yugrishi Pt. Shriram Sharma Acharya(Founder of All World Gayatri Pariwar) on all aspects of life in Hindi, Gujarati, English, Marathi & other languages at
www.vicharkrantibooks.org http://literature.awgp.org

श्वेत औषधीय प्रजाति में रक्त पुनर्नवा की अक्सर मिलावट कर दी जाती है।

श्वेत पुनर्नवा का पौधा बहुवर्षायु प्रसरणशील होता है। क्षुप २ से ३ मीटर लंबे होते हैं। ये प्रतिवर्ष वर्षा में नए निकलते हैं व ग्रीष्म में सूख जाते हैं। इस क्षुप के कांड प्रायः ललाई लिए कड़े, पतले व गोल होते हैं। पर्व संधि पर ये मोटे हो जाते हैं। शाखाएँ अनेक लंबी, पतली तथा लालवर्ण की होती हैं। पत्ते छोटे व बड़े दोनों प्रकार के होते हैं। लंबाई २४ से २७ मिलीमीटर होती है। निचला तल श्वेताभ होता है व छूने पर चिकना प्रतीत होता है।

पुष्प पत्रकोण से निकलते हैं, छतरी के आकार के छोटे-छोटे सफेद ५ से १५ की संख्या में होते हैं। फल छोटे होते हैं तथा चिपचिपे बीजों से युक्त होते हैं। ये शीतकाल में फलते हैं। पुनर्नवा की जड़ प्रायः १ फीट तक लंबी, ताजी स्थिति में उँगली के बराबर मोटी गूदेदार व उपमूलों सहित होती है। यह सहज ही बीच से टूट जाती है। गंध उग्र व स्वाद में तीखी होती है। उलटी लाने वाला तिक्त गाढ़ा दूध समान द्रव्य इसमें से तोड़ने पर निकलता है। उपरोक्त गुणों द्वारा सही पौधे की पहचान कर ही प्रयुक्त किया जाता है।

संग्रह—पंचांग शरद ऋतु के आस-पास एकत्र करके शुष्क कर अनार्द्र शीतल स्थान पर रखते हैं, नमी लगने पर खराब होने की संभावना अधिक रहती है।

कालावधि—इसे १ वर्ष तक प्रयोग किया जाता है। शुष्क चूर्ण रूप में पौधे के सूखे होने की स्थिति में तथा ताजा हरा उपलब्ध होने की स्थिति में नए पत्ते आने पर प्रयुक्त होता है। यथासंभव पुनर्नवा की ताजी जड़, पत्ते या पंचांग का ही प्रयोग करते हैं। ताजी न मिलने पर ही शुष्क चूर्ण प्रयुक्त करना चाहिए।

Free Read/Download & Order 3000+ books authored by Yugrishi Pt. Shriram Sharma Acharya(Founder of All World Gayatri Pariwar) on all aspects of life in Hindi, Gujarati, English, Marathi & other languages at
www.vicharkrantibooks.org http://literature.awgp.org

गुण-कर्म संबंधी विभिन्न मत—आचार्य सुश्रुत ने पुनर्नवापत्र को शरीरव्यापी शोथ में अति लाभकारी बताया है व कहा है—

उष्णानि स्वादतिक्तानि वातप्रशमनानि च।
तेषु पौनर्नवं शाकं विशेषाच्छोथनाशनम्॥

धन्वंतरि निघंटुकार ने पुनर्नवा को हृदय रोग, कास, उरक्षत और शूल में भी उपयोगी बतलाया है। कयदेव ने इसे हृदयरोगनाशक बताया है। वनौषधि शतक के लेखक के अनुसार पुनर्नवा से मूत्र का प्रमाण दुगना होता है, हृदय संकोचन बढ़ता है, धमनियों में रक्त-प्रवाह बढ़ जाता है तथा इन सब कारणों से शोथ दूर होती है। डॉ० भंडारी के अनुसार हृदय पर पुनर्नवा की क्रिया अर्जुन की तरह तीव्र तो नहीं पर स्पष्ट होती है। हृदय की मांसपेशियों की कार्य क्षमता में वृद्धि करता है तथा इससे शरीर का संचित जल बाहर निकाल दिया जाता है। हृदय की शिथिलता में भी यह अत्यंत लाभकारी है।

डॉ० चोपड़ा ने पहली बार इसके पंचांग का चूर्ण रासायनिक विश्लेषण कर यह बताया कि इसमें पाया जाने वाला पोटेशियम नाइट्रेट नामक लवण (मात्रा लगभग ०.५२ प्रतिशत) इतना प्रचुर व प्रभावी है कि इससे इस औषधि की हृदय रोग में उपयोगिता प्रमाणित हो जाती है। पोटेशियम ही वह आवेशधारी खनिज है, जो आयन्स के रूप में मांसपेशी कोशिका में अंदर से बाहर व वापस अंदर प्रविष्ट होकर उसकी संकुचन क्षमता (कॉंट्रिक्टिविटी) बढ़ाता है। एक बात और ध्यान देने योग्य है कि जितने भी पाश्चात्य औषधि विज्ञान के दिए हुए रासायनिक मूत्रल (डाययूरेटिक) हैं, उनमें से बहुसंख्य पोटेशियम की मात्रा शरीर में घटाते हैं व इससे हृदय की मांसपेशियाँ प्रभावित होती हैं। पुनर्नवा मूत्रल होने के साथ पोटेशियम प्रदायक भी है। इसी कारण डॉ० चोपड़ा ने इसे सर्वश्रेष्ठ शोथहर औषधि माना है।

Free Read/Download & Order 3000+ books authored by Yugrishi Pt. Shriram Sharma Acharya(Founder of All World Gayatri Pariwar) on all aspects of life in Hindi, Gujarati, English, Marathi & other languages at
www.vicharkrantibooks.org http://literature.awgp.org

डॉ० घोषाल ने इस वनस्पति पर परीक्षा कर यह निष्कर्ष निकाला कि यह औषधि हृदय व गुरदों पर एक साथ प्रभाव डालती है। पुनर्नवा में विटामिन बी की बहुलता के कारण डॉ० घोषाल भारत जैसे देश के लिए इसे वरदान मानते हैं। अपन देश में एपीडिमिक ड्रोप्सी एक बड़ी स्वास्थ्य समस्या है। यह सरसों के तेल में आर्मीजोन मेक्सिकाना की मिलावट के कारण होती है। हृदय पर प्रभाव डालने वाला यह विषाक्त पदार्थ लगभग महामारी को जन्म देता है। डॉ० खगेंद्र नाथ वसु भी इसके ताजे पत्तों में विटामिनों की अधिकता के कारण इसे विटामिन बी की कमी के कारण होने वाले हृदय रोगों (बेरी-बेरी) में लाभकारी मानते हैं। इस प्रकार यह औषधि पथ्य भी है तथा रोग निवारक भी।

'वेल्थ ऑफ इंडिया' में विद्वान वैज्ञानिकों ने पुनर्नवा की जड़ को मूत्रल माना है तथा कई जैव प्रयोगों द्वारा इसे सिद्ध करने का प्रयास भी किया है। डॉ० दस्तूर लिखते हैं कि इस औषधि का सबसे प्रभावशाली अंग जड़ है, जिसमें मूत्रल घटक होते हैं।

रासायनिक संगठन—इस औषधि का मुख्य औषधीय घटक एक प्रकार का एल्केलॉइड है, जिसे पुनर्नवा कहा गया है। इसकी मात्रा जड़ में लगभग ०.०४ प्रतिशत होती है। अन्य एल्केलॉइड्स की मात्रा लगभग ६.५ प्रतिशत होती है। पुनर्नवा के जल में न घुल पाने वाले भाग में स्टेरॉन पाए गए हैं, जिनमें बीटा-साइटोस्टीराल और एल्फा-टू साइटोस्टीराल प्रमुख हैं। इसके निष्कर्ष में एक ओषजन युक्त पदार्थ ऐसेंटाइन भी मिला है। इसके अतिरिक्त कुछ महत्त्वपूर्ण कार्बनिक अम्ल तथा लवण भी पाए जाते हैं। अम्लों में स्टायरिक तथा पामिटिक अम्ल एवं लवणों में पोटेशियम नाइट्रेट, सोडियम सल्फेट एवं क्लोराइड प्रमुख हैं। इन्हीं के कारण सूक्ष्म स्तर पर कार्य करने की सामर्थ्य बढ़ती है।

Free Read/Download & Order 3000+ books authored by Yugrishi Pt. Shriram Sharma Acharya(Founder of All World Gayatri Pariwar) on all aspects of life in Hindi, Gujarati, English, Marathi & other languages at
www.vicharkrantibooks.org http://literature.awgp.org

आधुनिक मत एवं वैज्ञानिक प्रयोग निष्कर्ष—डॉ० सिंह तथा उडुप्पा ने पुनर्नवा के भैषज पक्ष पर विस्तृत विश्लेषण-विवेचन किया है। 'जनरल ऑफ रिसर्च इन इंडियन मेडीसिन' के अनुसार पूर्ण पुनर्नवा का पंचांग चूर्ण प्रायोगिक जीवों में मूत्र की मात्रा तुरंत बढ़ाता है। क्वाथ की अपेक्षा उन्होंने चूर्ण को अधिक लाभकारी पाया, क्योंकि इनमें विद्यमान मूत्रल घटक जल में घुलनशील नहीं हैं। उन्होंने पाया कि यह औषधि शोथ रोगों में इसी प्रकार लाभकारी है, जैसे कि सूजन उतारने में 'स्टीरायड' नामक पाश्चात्य औषधि। हृदय पर यह टॉनिक के समान काम करती है।

होम्योपैथी में डॉ० बसु, घोष व भादुरी ने 'इंडियन होम्योपैथी रिव्यू' पत्रिका में इसके प्रयोग की चर्चा की है व हृदय स्पंदन शोथ तथा मूत्र कृच्छता में लाभकारी पाया है।

ग्राह्य अंग—पंचांग विशेषतः मूल। ताजी स्थिति में पूरे पौधे का स्वरस।

मात्रा—स्वरस १० से २० ग्राम (दिन में २ या ३ बार)

क्वाथ—२ से ३ औंस (दिन में दो बार)

बीज चूर्ण—१ से ३ ग्राम।

पंचांग चूर्ण—५ से १० ग्राम।

मधु के साथ पुनर्नवा का प्रयोग अधिक उत्तम माना गया है।

निर्धारणानुसार प्रयोग—हृदय रोगों में पुनर्नवा के पत्रों का शाक प्रयुक्त किया जाने का विधान है। यह शोथ हरता है, तुरंत श्वास व शूल में आराम पहुँचाता है। मूत्रल के रूप में इस औषधि का क्वाथ १ से ३ चम्मच की मात्रा में प्रयुक्त होता है। क्वाथ ताजे पौधे या सुखाए पंचांग से बनाया जा सकता है। वैसे क्वाथ की तुलना में चूर्ण दिए जाने का शास्त्रोक्त विधान है। उसमें भी मधु का अनुपान अति लाभकारी है

Free Read/Download & Order 3000+ books authored by Yugrishi Pt. Shriram Sharma Acharya(Founder of All World Gayatri Pariwar) on all aspects of life in Hindi, Gujarati, English, Marathi & other languages at
www.vicharkrantibooks.org http://literature.awgp.org

व प्रभावी माना जाता है। वह हृदयोत्तेजक शोथहर व कासहर की अपनी त्रिविध विशेषताओं के कारण हृदय रोगजन्य फैल्योर व कार्डियक अस्थमा में अत्यंत लाभ करता है। इसकी कार्य प्रणाली कुछ इस प्रकार की है कि यह त्रिदोषों को मिटाकर दुर्बलता का निवारण करता है। अत:यह एक सर्वश्रेष्ठ टॉनिक भी है।

अन्य उपयोग—बाह्य प्रयोगों में शोथ रोगों में इसके पत्रों का स्वेदन व लेप भी करते हैं। नेत्र रोगों में स्वरस लाभकारी होता है। अत: प्रयोगों में अग्निमंदता, वमन, पीलिया रोग के लिए इसे सफलता से प्रयोग किया जाता है। स्त्रियों के रक्त प्रदर रोगों में यह लाभकारी है। पेशाब की जलन, पथरी तथा पेशाब के मार्ग में संक्रमण के कारण उत्पन्न ज्वर में भी यह तुरंत लाभ पहुँचाती है। सभी प्रकार के सर्पविषों का यह एंटीडोट है। श्वेत पुनर्नवा का ताजा भाग इसी कारण आपात्कालीन उपचार हेतु हमेशा पास रहना अधिक उपयुक्त है।

यह एक रसायन है एवं बलवर्द्धक टॉनिक भी। अत: रोग निवारण के बाद कमजोरी दूर करने के लिए इसे प्रयुक्त किया जाता है। विशेषकर महिलाओं के लिए सर्वश्रेष्ठ पुष्टिवर्द्धक माना जाता है।



Free Read/Download & Order 3000+ books authored by Yugrishi Pt. Shriram Sharma Acharya(Founder of All World Gayatri Pariwar) on all aspects of life in Hindi, Gujarati, English, Marathi & other languages at
www.vicharkrantibooks.org http://literature.awgp.org

९. ब्राह्मी

बकोपा मोनिएरी या हरपेस्टिस मोनिएरा

यह मुख्यत: जलासन्न भूमि में पाई जाती है इसलिए इसे जल निंब भी कहते हैं। विशेषत: यह हिमालय की तराई, बिहार, उत्तर प्रदेश आदि में नदी-नालों, नहरों के किनारे पाई जाती है। गंगा के किनारे बारहों महीने हरी-भरी पाई जाती है। इसे बुद्धिवर्द्धक होने के कारण ब्राह्मी नाम दिया गया है। मंडूकपर्णी, मंडूकी से इसे अलग माना जाना चाहिए जो आकार में मिलते-जुलते हुए भी इससे अलग है।

वानस्पतिक परिचय—इसका क्षुप फैलने वाला तथा मांसल चिकनी पत्तियाँ लिए होता है। पत्तियाँ चौथाई से एक इंच लंबी व १० मिलीमीटर तक चौड़ी होती हैं। ये आयताकार या स्रुवाकार होती हैं तथा कांड व शाखाओं पर विपरीत क्रम में व्यवस्थित रहती हैं। फूल नीले, श्वेत या हलके गुलाबी होते हैं जो पत्रकोण से निकलते हैं। फल लंबे गोल आगे से नुकीले होते हैं, जिनमें छोटे-छोटे बीज निकलते हैं। कांड अति कोमल होता है। इसमें छोटे-छोटे रोम होते हैं व ग्रंथियाँ होती हैं। ग्रंथि से जड़ें निकलकर भूमि पकड़ लेती हैं, जिस कारण कांड २ से ३ फीट ऊँचा होने पर भी छोटा व झुका हुआ दिखाई देता है।

पुष्प ग्रीष्म ऋतु में तथा बाद में फल लगते हैं। सारा क्षुप पंचांग ही प्रयुक्त होता है।

पहचान तथा मिलावट—शुद्ध ब्राह्मी हरिद्वार के आस-पास गंगा के किनारे सर्वाधिक होती है। यहीं से यह सारे भारत में जाती है। उसमें दो पौधों की मिलावट होती है—(१) मंडूकपर्णी (सेंटेला एशियाटिका) तथा (२) बकोपा फ्लोरीबंडा। गुण एक समान होते हुए

Free Read/Download & Order 3000+ books authored by Yugrishi Pt. Shriram Sharma Acharya(Founder of All World Gayatri Pariwar) on all aspects of life in Hindi, Gujarati, English, Marathi & other languages at
www.vicharkrantibooks.org http://literature.awgp.org

भी मंडूकपर्णी ब्राह्मी से कम मेद्य है और मात्र त्वचा के बाह्य प्रयोग में ही उपयोगी है।

'जनरल ऑफ रिसर्च इन इंडियन मेडीसिन' के अनुसार (डॉ० सिन्हा व सिंह) विस्तृत अध्ययनों ने अब यह सिद्ध कर दिया है कि बकोपा मोनिएरा ही शास्त्रोक्त गुणकारी है। ब्राह्मी के पत्ते मंडूकपर्णी की अपेक्षा पतले होते हैं। पुष्प सफेद व नीलापन लिए होते हैं जबकि मंडूकपर्णी के पुष्प रक्त लाल होते हैं। ब्राह्मी का सारा क्षुप ही तिक्त कड़वापन लिए होता है, जबकि मंडूकपर्णी का पौधा मात्र तीखा होता है तथा मसलने पर गाजर जैसी गंध देता है। सूखने पर मंडूकपर्णी के सभी गुण प्रायः जाते रहते हैं। जबकि ब्राह्मी का हरा या हरा-भरा रंग का सूखा चूर्ण एक वर्ष तक इसी प्रकार प्रयोग किया जा सकता है।

संग्रह-संरक्षण कालावधि—गंगादि पवित्र नदियों के किनारे पाई जाने वाली ब्राह्मी वस्तुतः गुणकारी होती है। इसकी पत्तियों को छाया में सुखाकर पंचांग का चूर्ण कर बोतल में बंद करके रखना चाहिए। इसे एक वर्ष तक प्रयोग किया जा सकता है।

गुण कर्म संबंधी विभिन्न मत—महर्षि चरक के अनुसार ब्राह्मी मानस रोगों की एक अचूक गुणकारी औषधि है। यह अपस्मार रोगों में विशेष लाभ करती है। सुश्रुत संहिता के अनुसार ब्राह्मी का उपयोग मस्तिष्क विकृति, नाड़ी दौर्बल्य, अपस्मार, उन्माद एवं स्मृति नाश में किया जाना चाहिए। भावप्रकाश के अनुसार ब्राह्मी मेधावर्द्धक है।

श्री खोरी एवं नादकर्णी ने इसे एक प्रकार का नर्वटॉनिक माना है। उनके अनुसार ब्राह्मी पंचांग का सूखा चूर्ण रोगियों को देने पर मानसिक कमजोरी, तनाव तथा घबराहट एवं अवसाद की प्रवृत्ति में लाभ हुआ। पागलपन तथा मिरगी के लिए डॉ० नादकर्णी ब्राह्मी पत्तियों का स्वरस घी में उबालकर दिए जाने पर पूर्ण सफलता का दावा

Free Read/Download & Order 3000+ books authored by Yugrishi Pt. Shriram Sharma Acharya(Founder of All World Gayatri Pariwar) on all aspects of life in Hindi, Gujarati, English, Marathi & other languages at
www.vicharkrantibooks.org http://literature.awgp.org

करते हैं। हिस्टीरिया जैसे मनोरोगों में ब्राह्मी तुरंत लाभ करती है तथा सारे लक्षण तुरंत मिट जाते हैं। सिरदरद, चक्कर, भारीपन तथा चिंता में ब्राह्मी तेल का प्रयोग कई वैज्ञानिकों ने बताया है। सी० एस० आई०आर० द्वारा प्रकाशित पुस्तक 'ग्लासरी ऑफ इंडियन मेडीसिन प्लांट्स' में ब्राह्मी को पागलपन व मिरगी की औषधि बताया गया है।

'वनौषधि चंद्रोदय' के विद्वान लेखक के अनुसार ब्राह्मी की मुख्य क्रिया मस्तिष्क और मज्जा तंतुओं पर होती है। मस्तिष्क को शांति देने के अतिरिक्त यह एक पौष्टिक टॉनिक का काम भी करती है। मस्तिष्कीय थकान से जब व्यक्ति की कार्यक्षमता घट जाती है तो ब्राह्मी के घटक स्नायु कोशों का पोषण कर उत्तेजित करते हैं तथा मनुष्य स्फूर्ति का अनुभव करता है। अपस्मार के रोगों में वे विद्युतीय स्फुरणा के लिए उत्तरदायी केंद्र का शमन करते हैं। स्नायुकोशों की उत्तेजना कम होती है व धीरे-धीरे मिरगी के दौरों की दर घटते-घटते नहीं के बराबर हो जाती है। उन्माद में भी यह इसी प्रकार काम करती है। दो परस्पर विरोधी मनोविकारों पर विरोधी प्रकार के प्रभाव इस औषधि की विलक्षणता है। उसे सरस्वती पत्रकों का घटक मानकर इसी कारण मानसिक स्वास्थ्य संवर्द्धन के लिए चिर पुरातन काल से प्रयुक्त किया जाता रहा है।

उदासी, निराशा भाव तथा अधिक बोलने से उत्पन्न हुए स्वर भंग में भी ब्राह्मी लाभकारी होती है। जन्मजात तुतलाने में भी ब्राह्मी सफलतापूर्वक कार्य करती पाई गई है।

होम्योपैथी मतानुसार एकांत को अधिक पसंद करने वाले अवसादग्रस्त व्यक्तियों को ब्राह्मी व मंडूकपर्णी दोनों ही लाभ करते हैं। चक्कर, नाड़ियों में खिंचाव, सिरदरद में ब्राह्मी का प्रभाव अधिक होता पाया गया है। यूनानी चिकित्सा में इसे 'वाष्पन' नाम दिया गया है। इसका प्रधान प्रयोग मस्तिष्क व नाड़ी बलवर्द्धक के रूप में है।

Free Read/Download & Order 3000+ books authored by Yugrishi Pt. Shriram Sharma Acharya(Founder of All World Gayatri Pariwar) on all aspects of life in Hindi, Gujarati, English, Marathi & other languages at
www.vicharkrantibooks.org http://literature.awgp.org

रासायनिक संगठन—ब्राह्मी में पाए जाने वाले मुख्य जैव सक्रिय पदार्थ हैं—एल्केलॉइड तथा सेपोनिन। एल्केलॉइडों में दो मुख्य हैं- ब्राह्मीन और हरपेस्टिन। गुण-कर्मों की दृष्टि से ब्राह्मी कुचला में पाए जाने वाले एल्केलॉइड स्ट्रिकनीन के समान है, पर उसकी तरह विषैली नहीं है। बेकोसाएड 'ए' तथा 'बी' मुख्य सैपोनिन हैं। बेकोसाएड 'ए' में एरेविनोसिल ग्लूकोस, अरेविनोस बेकोजेनिन इत्यादि। बोटूलिक अम्ल, डी-मैनिटाल, स्टिग्मा स्टेनॉल, बीटा-साइटोस्टीराल, स्टीग्मास्टीरॉल तथा टैनिन भी शेष पदार्थों में से कुछ हैं।

ग्लूकोसाइड एवं उड़नशील तेल प्राय: हरी पत्तियों में पाए जाते हैं। सूखे पौधों में सेंटोइक एसिड तथा सेंटेलिंक एसिड भी पाए जाते हैं।

आधुनिक मत एवं वैज्ञानिक प्रयोग निष्कर्ष—ब्राह्मी की प्रख्यात मेधावर्द्धक शक्ति पर प्रायोगिक रूप से विशद अध्ययन हुआ है। वैज्ञानिक बताते हैं कि इसमें डायजेपाम औषधि समूह की तरह सोमनस्यकारक-तनावनाशक गुण है। इंडियन जनरल ऑफ मेडिकल रिसर्च में डॉ० मल्होत्रा और दास (४७, २९०, १९५९) लिखते हैं कि ब्राह्मी का सारभूत निष्कर्ष प्रायोगिक जीवों पर शामक प्रभाव डालता है। इसी प्रभाव को बाद में अन्य वैज्ञानिकों ने भी प्रमाणित किया। ब्राह्मी की इस शामक सामर्थ्य की तुलना में प्रचलित एलोपैथिक औषधि 'क्लोरप्रोमाजीन' से की गई है। इससे न केवल तनाव समाप्त होकर प्रसन्नता का भाव आता है, अपितु सीखने की क्षमता भी बढ़ जाती है। व्यक्ति की संवेदना तंतुओं में ब्राह्म संदेशों को ग्रहण करने की सामर्थ्य में अप्रतिम वृद्धि होती है।

ब्राह्मी का एक रासायनिक घटक हर्सेपोनिन सीधे पीनियल ग्रंथि पर प्रभाव डालकर 'सिरोंटानिन' नामक न्यूरोकेमीकल का उत्सर्जन कर सचेतन स्थिति को बढ़ाता है। यह हारमोन मस्तिष्कीय क्रियाओं के लिए अनिवार्य माना जाता है।

Free Read/Download & Order 3000+ books authored by Yugrishi Pt. Shriram Sharma Acharya(Founder of All World Gayatri Pariwar) on all aspects of life in Hindi, Gujarati, English, Marathi & other languages at
www.vicharkrantibooks.org http://literature.awgp.org

ब्राह्मी का दूसरा महत्त्वपूर्ण प्रभाव है, इसका आक्षेपहर एंटीकन्वल्सेंट-मिरगीनाशक होना। डॉ० डे और डॉ० चटर्जी के अनुसार इस औषधि के घटक सीधे विद्युत्सक्रिय उत्तेजक केंद्र तक जाकर उसे शांत करते हैं तथा अन्य स्नायुओं को उत्तेजित होने से रोकते हैं। इस क्रिया के लिए उत्तरदायी केमिकल प्रक्रिया की अवधि को यह बढ़ा देता है। प्रायोगिक जीवों में सेमीकार्बाजाइड के आक्षेपजनक एवं मारक प्रभावों को यह पूर्णतया शांत कर देती है। इनके अतिरिक्त सूचनाओं के आदान-प्रदान के लिए उत्तरदायी विभिन्न स्नायु तंतुओं के केंद्रकों से संबंध को यह सशक्त बनाती है। इस प्रकार मेधावर्द्धन-स्मृतिवर्द्धन में सहायता करती है। साइको सोमेटिक रोगों में तो यह हाइपोथेलेमस के स्तर पर कार्य कर चक्र को ही तोड़ देती है। इस प्रकार वैज्ञानिक प्रयोग इसे सर्वश्रेष्ठ बहुमुखी स्नायु संस्थानों के रोगों की औषधि सिद्ध करते हैं।

ग्राह्य अंग—ताजा या सुखाया गया पंचांग।

मात्रा—पंचांग चूर्ण ३ से ५ ग्राम। ताजा स्वरस १ से २ तोला। मूल का चूर्ण ४ रत्ती से डेढ़ माशा (१/२ ग्राम से डेढ़ ग्राम)।

जहाँ तक हो सके ब्राह्मी को ताजी अवस्था में ही प्रयोग करते हैं। जहाँ यह उत्पन्न न हो सके, वहाँ इसका छाया में सुखाया गया चूर्ण ही प्रयुक्त होता है। यदि इसे उबाला जाए या धूप में सुखाया जाए तो इसका उड़नशील तेल नष्ट हो जाता है और यह निष्प्रभावी हो जाती है। इसी कारण इसका क्वाथ भी प्रयोग नहीं करते।

निर्धारणानुसार प्रयोग—अनिद्रा में ब्राह्मी चूर्ण ३ माशा (३ ग्राम) गाय के दूध के साथ देते हैं अथवा ब्राह्मी के ताजे २०-२५ पत्रों को साफकर गाय के आधा सेर दूध में घोंट छानकर ७ दिन तक देते हैं। वर्षों पुराना अनिद्रा रोग इससे ठीक हो जाता है।

Free Read/Download & Order 3000+ books authored by Yugrishi Pt. Shriram Sharma Acharya(Founder of All World Gayatri Pariwar) on all aspects of life in Hindi, Gujarati, English, Marathi & other languages at
www.vicharkrantibooks.org http://literature.awgp.org

अपस्मार के दौरों में स्वरस १/२ चम्मच मधु के साथ अथवा चूर्ण को मधु के साथ दिया जाता है। प्रारंभ में ढाई ग्राम एवं प्रभाव न होने पर पाँच ग्राम तक दिया जा सकता है।

स्मृति दौर्बल्य तथा अल्पमंदता में ब्राह्मी स्वरस अथवा चूर्ण पानी के सांथ या मिसरी के साथ देते हैं। एक सेर नारियल के तेल में १५ तोला ब्राह्मी स्वरस मिलाकर उबालने पर ब्राह्मी तेल तैयार हो जाता है। इसकी मालिश करने से मस्तिष्क की निर्बलता व खुश्की दूर होती है तथा बुद्धि बढ़ती है।

इसका सेवन चिंता तथा तनाव में ठंडाई के रूप में भी किया जा सकता है। यूनानी चिकित्सक इसका माजूम बनाकर खिलाते हैं, पर सर्वश्रेष्ठ स्वरूप चूर्ण का मधु के अनुपान के साथ सेवन है। यह बल्य रसायन भी है इसलिए किसी भी प्रकार की गंभीर व्याधि ज्वर आदि के बाद निर्बलता निवारण के लिए इसका प्रयोग कर सकते हैं।

अन्य उपयोग—बाह्य प्रयोगों में तेल के अतिरिक्त इसे कुष्ठ तथा अन्य चर्म रोगों में भी प्रयुक्त करते हैं। बच्चों की खाँसी व छुटपन के क्षय रोग में इसका गरम लेप छाती पर किया जाता है।

अग्निमंदता, रक्त विकार तथा सामान्य शोथ में यह तुरंत लाभ करती है। हृदयाघात के बाद दुर्बलता निवारण हेतु यह एक श्रेष्ठ टॉनिक है। खाँसी व गला बैठ जाने पर इसके स्वरस का काली मिर्च व मधु के साथ सेवन करते हैं। विभिन्न प्रकार के विषों तथा ज्वर में यह लाभ पहुँचाती है।

सामान्यतया मानस रोगों के लिए ही प्रयुक्त यह औषधि अब धीरे-धीरे बलवर्द्धक रसायन के रूप में भी मान्यता प्राप्त करती जा रही है। यह हर दृष्टि से हर वर्ग के लिए हितकर है तथा प्रकृति का मनुष्य को एक श्रेष्ठ अनुदान है। किसी न किसी रूप में इसका नियमित सेवन किया जाए तो हमेशा स्फूर्ति से भरी प्रफुल्ल मनःस्थिति बनाए रखती है।



Free Read/Download & Order 3000+ books authored by Yugrishi Pt. Shriram Sharma Acharya(Founder of All World Gayatri Pariwar) on all aspects of life in Hindi, Gujarati, English, Marathi & other languages at
www.vicharkrantibooks.org http://literature.awgp.org

१०. शंखपुष्पी
कन्वॉल्व्यूलस प्लूरीकॉलिस

शंख के समान आकृति वाले श्वेत पुष्प होने से इसे शंखपुष्पी कहते हैं। इसे क्षीर पुष्प (दूध के समान सफेद फूल वाले), मांगल्य कुसुमा (जिसके दर्शन से मंगल माना जाता हो) भी कहते हैं। यह सारे भारत में पथरीली भूमि में जंगली रूप में पाई जाती है।

वानस्पतिक परिचय—पुष्पभेद से शंखपुष्पी की तीन जातियाँ बताई गई हैं—श्वेत, रक्त, नील पुष्पी। इनमें से श्वेत पुष्पों वाली शंखपुष्पी ही औषधि मानी गई है। शंखपुष्पी के क्षुप प्रसरणशील, छोटे-छोटे घास के समान होते हैं। इसका मूलस्तंभ बहुवर्षायु होता है, जिसमें १० से ३० सेंटीमीटर लंबी, रोमयुक्त, कुछ-कुछ उठी शाखाएँ चारों ओर फैली रहती हैं। जड़ उँगली जैसी मोटी १-१ इंच लंबी होती है। सिरे पर चौड़ी व नीचे सकरी होती है। अंदर की छाल और लकड़ी के बीच से दूध जैसा रस निकलता है, जिसकी गंध ताजे तेल जैसी दाहक व चरपरी होती है। तना और शाखाएँ सुतली के समान पतली सफेद रोमों से भरी होती हैं। पत्तियाँ १ से ४ सेंटीमीटर लंबी, रेखाकार, डंठलरहित, तीन-तीन शिराओं से युक्त होती हैं। पत्तियों के मलने पर मूली के पत्तों सी गंध आती है।

फूल हलके गुलाबी रंग के संख्या में एक या दो कनेर के फूलों से मिलती-जुलती गंध वाले होते हैं। फल छोटे-छोटे कुछ गोलाई लिए भूरे रंग के, चिकने तथा चमकदार होते हैं। बीज भूरे या काले रंग के एक ओर तीन धार वाले, दूसरी ओर ढाल वाले होते हैं। बीज के दोनों ओर सफेद रंग की झाईं दीखती है। मई से दिसंबर तक इसमें पुष्प

Free Read/Download & Order 3000+ books authored by Yugrishi Pt. Shriram Sharma Acharya(Founder of All World Gayatri Pariwar) on all aspects of life in Hindi, Gujarati, English, Marathi & other languages at
www.vicharkrantibooks.org http://literature.awgp.org

और फल लगते हैं। शेष समय यह सूखी रहती है। गीली अवस्था में पहचानने योग्य नहीं रह पाती। श्वेत पुष्पा शंखपुष्पी के क्षुप दूसरे प्रकारों की अपेक्षा छोटे होते हैं तथा इसके पुष्प शंख की तरह आवर्तितित होते हैं।

पहचान एवं मिलावट—श्वेत, रक्त एवं नील तीनों प्रकार के पौधों की ही मिलावट होती है। शंखपुष्पी नाम से श्वेत पुष्प ही ग्रहण किए जाने चाहिए। नील पुष्पी नामक (कन्वाल्व्यूलस एल्सिनाइड्स) क्षुपों को भी शंखपुष्पी नाम से ग्रहण किया जाता है जो कि त्रुटिपूर्ण है। इसके क्षुप छोटे क्रीपिंग होते हैं। मूल के ऊपर से ४ से १५ इंच लंबी अनेक शाखाएँ निकली फैली रहती हैं। पुष्प नीले होते हैं तथा दो या तीन की संख्या में पुष्प दंडों पर स्थित होते हैं। इसी प्रकार शंखाहुली, कालमेघ (कैसकोरा डेकुसेटा) से भी इसे अलग पहचाना जाना चाहिए। अकसर पंसारियों के पास इसकी मिलावट वाली शंखपुष्पी बहुत मिलती है। फूल तो इसके भी सफेद होते हैं, पर पौधे की ऊँचाई, फैलने का क्रम, पत्तियों की व्यवस्था अलग होती है। नीचे की पत्तियाँ लंबी व ऊपर की छोटी होती हैं। गुण-धर्म की दृष्टि से यह कुछ तो शंखपुष्पी से मिलती है पर सभी गुण इसमें नहीं होते। प्रभावी सामर्थ्य भी क्षीण अल्पकालीन होती है।

संग्रह तथा संरक्षण एवं कालावधि—छाया में सुखाए गए पंचांग को मुखबंद डिब्बों में सूखे शीतल स्थानों में रखते हैं। यह सूखी औषधि चूर्ण रूप में या ताजे स्वरस कल्क के रूप में प्रयुक्त हो सकती है। वीर्य कालावधि ६ माह से एक वर्ष तक की है।

गुण-कर्म संबंधी विभिन्न मत—इसे मेध्य (बुद्धिवर्द्धक), मस्तिष्क एवं नाड़ी दौर्बल्य में सहायक माना गया है। महर्षि चरक ने **मेध्या विशेषेण च शंखपुष्पी** लिखते हुए कहा है—"स्मरण शक्ति

Free Read/Download & Order 3000+ books authored by Yugrishi Pt. Shriram Sharma Acharya(Founder of All World Gayatri Pariwar) on all aspects of life in Hindi, Gujarati, English, Marathi & other languages at
www.vicharkrantibooks.org http://literature.awgp.org

को बढ़ाने वाली औषधियों में शंखपुष्पी प्रधान है।" आयुर्वेद में मनुष्य के मस्तिष्क को बल देने वाली जितनी वनस्पतियाँ बताई गई हैं, उनमें ब्राह्मी तथा शंखपुष्पी को ही सर्वश्रेष्ठ माना गया है।

भावप्रकाश के अनुसार यह मेधावर्द्धक, मानस रोगहन अपस्मारहन (एंटीइपीलैप्टिक) भूतघ्न तथा विषहन है। राजनिघंटुकार लिखते हैं— '**ग्रहभूतादिदोषहनी वशीकरण सिद्धिदा**' अर्थात यह भूत रोग (हिस्टीरिया) मिटाकर व्यक्ति की मेधा में वृद्धि कर उसके व्यक्तित्व को सम्मोहक बनाती है। लेखक ने इसे अनिद्रा के लिए सर्वश्रेष्ठ औषधि माना है।

निघंटु रत्नाकर ने भी मेधा तथा स्मृति वर्द्धक, कांतिदायक, तेज बढ़ाने वाली एवं मस्तिष्क दोष हर इसे माना है। श्री भंडारी (वनौषधि चंद्रोदय) लिखते हैं कि शंखपुष्पी से मस्तिष्क को शांति व शक्ति मिलती है। विश्लेषणात्मक बुद्धि बढ़ती है। विशेषकर अल्पमंदता के लिए यह औषधि तथा मस्तिष्कीय कार्य अधिक करने वालों के लिए यह एक बलवर्द्धक टॉनिक है, जो सीधे स्नायु कोशों को प्रभावित करता है।

डॉ० देसाई के मतानुसार शंखपुष्पी मस्तिष्क और मज्जा तंतुओं को बल देने वाली औषधि है। डॉ० खोरी लिखते हैं कि शंखपुष्पी ज्ञान- तंतुओं को बल देने वाला 'नवाईन टॉनिक' है। उन्माद व मानसिक कमजोरी में इसका ताजा रस तुरंत लाभ देता है।

डॉ० डिमक का कथन है कि वेदों के समय में शंखपुष्पी गर्भाशय पर कार्य करने वाली औषधि मानी जाती थी, परंतु बाद के समय में टीकाकारों ने मस्तिष्क पर कार्य करने वाले सूत्र भी निकाले।

यूनानी मतानुसार शंखपुष्पी तर है तथा बल्य रसायन है। इसका प्रयोग स्मृतिवर्द्धन और मस्तिष्क तथा नाड़ियों को शक्ति देने के लिए

Free Read/Download & Order 3000+ books authored by Yugrishi Pt. Shriram Sharma Acharya(Founder of All World Gayatri Pariwar) on all aspects of life in Hindi, Gujarati, English, Marathi & other languages at
www.vicharkrantibooks.org http://literature.awgp.org

किया जाता है। भ्रम, अनिद्रा, अपस्मार एवं उन्माद को दूर करने के लिए यूनानी वैद्य इसका प्रयोग करते हैं।

रासायनिक संगठन—शंखपुष्पी से एक स्फटिकीय एल्केलॉइड निकाला गया है, जिसे शंखपुष्पीन नाम दिया गया है। यही इसका सक्रिय संघटक है। इस औषधि में से एक 'इसेंशियल ऑइल' भी निकाला गया है। पंचांग के किसी विशेष भाग में नहीं सारी औषधि में ही यह सक्रिय संघटक समान रूप से वितरित पाया जाता है। इसी कारण शंखपुष्पी का पंचांग ही प्रयुक्त होता है।

आधुनिक मत एवं वैज्ञानिक प्रयोग निष्कर्ष—'इंडियन जनरल ऑफ मेडिकल रिसर्च' में डॉ० शर्मा ने शंखपुष्पी के मानसिक उत्तेजना शामक गुणों पर विस्तार से प्रकाश डाला है। इसके प्रयोग से प्रायोगिक जीवों में स्वतः होने वाली मांसपेशियों की हलचलें (स्पाण्टेनियस मोटर एक्टिविटी) घट गई। शंखपुष्पी के निष्कर्ष सेवन से चूहों में 'फिनोबार्ब' द्वारा उत्पन्न की गई निद्रा बढ़ गई। इनमें मारफीन का दरदनाशक प्रभाव भी बढ़ा। चूहों की लड़ने की प्रवृत्ति में कमी हुई तथा अंदर से आक्रामक प्रवृत्ति में शांति आई। प्रायोगिक जीवों में विद्युत के झटकों द्वारा उत्पन्न आक्षेप (कन्वल्शन-मिरगी जैसे झटके) तथा कंपन इस औषधि के प्रयोग के बाद शांत हो गए।

थाइराइड ग्रंथि के अतिस्राव से उत्पन्न घबराहट, अनिद्रा एवं कंपन जैसी उत्तेजनापूर्ण स्थिति में शंखपुष्पी अत्यधिक सफल पाई गई है। यह रोग अधिसंख्य जनता को अपने राष्ट्र में प्रभावित करता है। इसमें हृदय व मस्तिष्क समान रूप से प्रभावित होते हैं। स्राव संतुलन बनाए रखना इस औषधि का प्रमुख कार्य है। बी०एच०यू० के डॉ० गुप्ता, प्रसाद व उडुप्पा के अनुसार शंखपुष्पी थाइरोटॉक्सिकोसिस के नवीन रोगियों में आधुनिक औषधियों से अधिक लाभकारी सिद्ध हुई है। यदि

Free Read/Download & Order 3000+ books authored by Yugrishi Pt. Shriram Sharma Acharya(Founder of All World Gayatri Pariwar) on all aspects of life in Hindi, Gujarati, English, Marathi & other languages at
www.vicharkrantibooks.org http://literature.awgp.org

किसी रोगी ने पूर्व में एलोपैथिक एंटीथाइराइड औषधि ली थी तो उस कारण उत्पन्न दुष्प्रभावों से भी शंखपुष्पी के कारण मुक्ति मिल गई।

इन दोहरे लाभों को देखते हुए अब इस औषधि पर विस्तृत जाँच-पड़ताल आरंभ कर दी गई है। सेंट्रल ड्रग रिसर्च इंस्टीट्यूट के वैज्ञानिकों ने पाया है कि यह औषधि सीधे थाइराइड की कोशिकाओं पर प्रभाव डालकर स्राव का नियमन करती है। इसके प्रयोग से मस्तिष्क से एसिटाइल कोलीन नामक महत्त्वपूर्ण न्यूरोकेमीकल की मात्रा बढ़ गई। इसका बढ़ना इस तथ्य का द्योतक है कि उत्तेजना के लिए उत्तरदायी केंद्र शांत हो रहे हैं। मस्तिष्क रक्त अवरोधी झिल्ली (ब्लड-ब्रेनवैरियर) से शंखपुष्पी एसिटाइलकोलीन का मस्तिष्क से निकलकर रक्त में जाना रोकती है।

यह उत्तेजनाशामक प्रभाव रक्तचाप पर भी अनुकूल प्रभाव डालता है। प्रयोगों से पाया गया है कि भावनात्मक संक्षोभों, तनावजन्य उच्च रक्तचाप जैसी परिस्थिति में शंखपुष्पी बड़ी लाभकारी सिद्ध होती है। आदत डालने वाले ट्रैंक्विलाइजर्स की तुलना में यह अधिक उत्तम है, क्योंकि यह तनाव का शमन कर दुष्प्रभाव रहित निद्रा लाती है तथा हृदय पर भी अवसादक प्रभाव डालती है।

ग्राह्य अंग—पंचांग-समग्र क्षुप का चूर्ण या कल्क ताजी अवस्था में स्वरस कल्क प्रयुक्त होता है।

मात्रा—कल्क १० से २० ग्राम प्रतिदिन। चूर्ण ३ से ६ ग्राम प्रतिदिन। स्वरस २ से ४ तोला प्रतिदिन।

इस औषधि को सुबह या शाम को दो बार अथवा रोगावस्थानुसार रात्रि को ही प्रयुक्त किया जा सकता है।

निर्धारणानुसार प्रयोग— स्मरण शक्ति बढ़ाने के लिए ६ माशा शंखपुष्पी चूर्ण मिसरी की चाशनी या दूध के साथ प्रतिदिन प्रातः लेने

Free Read/Download & Order 3000+ books authored by Yugrishi Pt. Shriram Sharma Acharya(Founder of All World Gayatri Pariwar) on all aspects of life in Hindi, Gujarati, English, Marathi & other languages at
www.vicharkrantibooks.org http://literature.awgp.org

का शास्त्रोक्त विधान बताया गया है। पंचांग को दूध के साथ घोंटकर भी देते हैं।

ज्वर प्रलाप में होश खो बैठने तथा प्रलाप करने पर (डेलीरियम) मस्तिष्क को शक्ति देने तथा नींद लाने के लिए शंखपुष्पी फांट रूप में या चूर्ण को मिसरी के साथ देते हैं। इसकी ठंडाई भी प्रयुक्त की जा सकती है।

उन्माद व अपस्मार में इसका स्वरस २० ग्राम के लगभग मधु के साथ दिन में दो बार दिया जाता है। शय्या मूत्र का रोग जो अकसर बच्चों को बढ़ती उम्र तक बना रहता है, (नॉक्ट्यूरनल एन्यूरेसिस) में रात्रि के समय शंखपुष्पी चूर्ण (३ ग्राम) दूध के साथ देने पर लाभ पहुँचाता है। मनोविकारों मे भी इसका महत्त्वपूर्ण योगदान है। जितने भी उत्तेजना कारक मनोविकार हैं, उन्हें प्रारंभिक स्थिति में ही शंखपुष्पी के द्वारा नियंत्रित किया जा सकता है।

उच्च रक्तचाप व अन्य उत्तेजना जन्य स्थितियाँ जो उसे जन्म देती हैं, में रोकथाम के लिए एवं उपचार के लिए भी शंखपुष्पी का रस तीन समय अथवा चूर्ण दिन में दो बार देने पर आशातीत लाभ देखे जाते हैं।

शंखपुष्पी का घृत शरबत-सीरप भी प्रयुक्त होता है। पर इसमें योगों से बचकर एकाकी प्रयोग ही श्रेयस्कर है। अधिक से अधिक सरस्वती पंचक के रूप में प्रयोग क्षम्य है। (ब्राह्मी, शंखपुष्पी, बच, गोरखमुंडी, शतावर) जो मेधावर्द्धन हेतु सिद्ध प्रयोग है।

अन्य उपयोग—यह कफ, वात शामक माना जाता है। बाह्य उपचारों में चर्मरोगों में तथा केशवृद्धि के लिए प्रयोग करते हैं। यह दीपक व पाचक है। पेट में गए विष को बाहर निकलाने के लिए भी इसे प्रयुक्त किया जाता है। पेट में दरद, वायु प्रदाह आद

Free Read/Download & Order 3000+ books authored by Yugrishi Pt. Shriram Sharma Acharya(Founder of All World Gayatri Pariwar) on all aspects of life in Hindi, Gujarati, English, Marathi & other languages at
www.vicharkrantibooks.org http://literature.awgp.org

में भी यह गुणकारी है। डॉ० प्रियव्रत के अनुसार यह हृदय रोगों, रक्तवमन आदि में लाभकारी है। खाँसी में भी यह लाभ पहुँचाती है। गर्भाशय की दुर्बलता के कारण जिनको गर्भ धारण नहीं होता या नष्ट हो जाता है, उनमें इसे चिरपुरातन काल से प्रयोग किया जाता रहा है। ज्वर-दाह में इसे शांतिदायक पेय के रूप में तथा पेशाब की जलन में डाययूरेटिक की तरह प्रयुक्त करते हैं। मस्तिष्क दौर्बल्य के अलावा यह एक सामान्य दौर्बल्य में हितकारी बल्य रसायन भी है। इसे जनरल टॉनिक के रूप में प्रयुक्त किया जा सकता है।



अनुव्रतः पितुः पुत्रो माता भवतु संमनाः।
जाया पत्ये मधुमतीं वाचं वदतु शन्तिवाम्॥

आदर्श गृहस्थी वह है, जिसमें बेटे माता-पिता के आज्ञाकारी हों। माता-पिता बच्चों के हितकारी हों। पति और पत्नी के पारस्परिक संबंध सुमधुर और सुखदाई हों। ऐसे ही परिवार सदैव फलते-फूलते और सुखी रहते हैं।

—अथर्ववेद ३/३०/२

Free Read/Download & Order 3000+ books authored by Yugrishi Pt. Shriram Sharma Acharya(Founder of All World Gayatri Pariwar) on all aspects of life in Hindi, Gujarati, English, Marathi & other languages at
www.vicharkrantibooks.org http://literature.awgp.org

११. निर्गुंडी
वाइटेक्स निर्गुंडी

'निर्गुडति शरीर रक्षति रोगेभ्यः तस्माद् निर्गुंडी' अर्थात जो रोगों में शरीर की रक्षा करती है, वह निर्गुंडी कहलाती है। इसे सम्हालू या मेऊड़ी भी कहते हैं।

वानस्पतिक परिचय—सारे भारत में इसके स्वयंजात पौधे मिलते हैं विशेषकर भारत के उष्ण भाग में यह अधिक संख्या में पाया जाता है तथा इसे किसान खेत की मेड़ में भी लगाते हैं। यह झुंडों में पाया जाता है एवं सड़कों के किनारे उत्तरी एवं मध्य भारत में बहुधा देखा जाता है।

इसके गुल्म बड़े ६ से १२ फीट ऊँचे झाड़ीदार होते हैं। सारे गुल्म पर सूक्ष्म रोम होते हैं। कांड स्थूल फैली हुई शाखाओं से युक्त होती है। छाल पतली, चिकनी, नीलाभ वर्ण की होती है। पत्तियों का वृंत्त ३ से ५ पत्रों का होता है। अरहर सदृश दिखाई देती है, परंतु अधिक लंबी, रोमयुक्त खंडित अथवा भालाकार होती हैं। ये २ से ६ इंच लंबी तथा लगभग तीन चौथाई इंच चौड़ी होती हैं। पत्तियों का डंठल लंबा होता है। पत्तियाँ सरल व कभी-कभी गोल क्रम में लगी होती हैं। जिन पत्तियों में पाँच पत्रक होते हैं, उनमें सबसे नीचे जोड़े वाले पत्रक सबसे छोटे तथा पाँचवा पत्रक सबसे बड़ा होता है। पत्तों को मसलने से एक विशिष्ट प्रकार की तीव्र अप्रिय गंध निकलती है। पुष्प छोटे-छोटे नीलाभ या बैंगनी आभा लिए सफेद २ से ६ इंच लंबी मंजरियों में होते हैं। फल छोटे गोल एक चौथाई इंच व्यास के होते हैं तथा पकने पर काले हो जाते हैं। बीज काली मिर्च जैसे कुछ छोटे पर रंग में सफेद काले मिश्रित

Free Read/Download & Order 3000+ books authored by Yugrishi Pt. Shriram Sharma Acharya(Founder of All World Gayatri Pariwar) on all aspects of life in Hindi, Gujarati, English, Marathi & other languages at
www.vicharkrantibooks.org http://literature.awgp.org

होते हैं। बीज, पत्ते व जड़ औषधि की दृष्टि से प्रयुक्त होते हैं। जड़ जो सामान्यतया पंसारियों के पास उपलब्ध रहती है, लंबे वक्राकार टुकड़ों के रूप में मिलती है। इन टुकड़ों पर भी छोटी-छोटी जड़ें होती हैं। छाल हरे रंग की तथा अंदर की लकड़ी पीले रंग की होती है। देहरादून क्षेत्र की ओर एक और प्रकार की निर्गुंडी पाई जाती है, जिसमें बाह्य स्वरूप व औषधीय गुण तो वही होते हैं, परंतु पत्ती, मंजरी, पुष्प, फल सभी छोटे होते हैं।

मिलावट तथा पहचान—निर्गुंडी चूँकि जंगली पौधा है व इससे मिलती-जुलती कई प्रजातियाँ भी हैं। मिलावट इसमें काफी अधिक होती है। निर्गुंडी के बीजों में प्राय: वायविडंग और रेणुका (वायटेक्स एक्नस) के बीज सम्मिलित रहते हैं।

प्रसिद्ध वनस्पति शास्त्री डॉ० ड्यूथी के अनुसार निर्गुंडी से ही मिलता-जुलता पौधा है—वायटैक्स ट्राइफोलिया, इसके पत्ते सादे १ से ३ पत्र युक्त होते हैं, खंडित नहीं होते एवं फल-फूल सामान्य औषधीय गुण प्रधान पौधे के फल-फूलों से काफी अधिक बड़े होते हैं। इसे अक्सर सफेद सम्हालू या पानी का सम्हालू नाम से जाना जाता है।

निर्गुंडी गुल्म के कवच पर अनेक जाति के रोगाणु आक्रमण कर सकते हैं। पत्तियाँ भी बहुधा रोगग्रस्त होती हैं। प्रयोग के पूर्व यह परीक्षा अनिवार्य है कि पौधा रोग रहित है अथवा नहीं।

संग्रह संरक्षण—औषधीय उद्देश्यों के लिए मार्च में इसके पुष्पित होने से पूर्व पत्तियों को एकत्र करना चाहिए, क्योंकि इस अवधि में पत्तियों में तेल की मात्रा सर्वाधिक होती है। अन्य किसी समय में एकत्र किए गए अंग गुणों की दृष्टि से हीन होते हैं।

Free Read/Download & Order 3000+ books authored by Yugrishi Pt. Shriram Sharma Acharya(Founder of All World Gayatri Pariwar) on all aspects of life in Hindi, Gujarati, English, Marathi & other languages at
www.vicharkrantibooks.org http://literature.awgp.org

वर्षाकाल में भी निर्गुंडी के पुराने पेड़ों के नीचे नूतन अंकुर फूटा करते हैं। इस अवधि के बाद वर्षाकाल समापन पर कार्तिक मास में नूतन अंकुरों से उत्पन्न पौधों के नीचे उपलब्ध हल्दी सदृश कंदों को लेना विशेष हितकर है। उपयोगी अंगों का उपयुक्त काल में संग्रह कर मुख बंद पात्रों में उन्हें शीतल सूखे स्थान पर रखा जाता है। इसका प्रयोग एक वर्ष तक किया जा सकता है।

गुण-कर्म संबंधी विभिन्न मत—आचार्य चरक इसे विषहर वर्ग की एक महत्त्वपूर्ण औषधि मानते हैं। निर्गुंडी आधुनिक काल के वैद्यों के अनुसार किसी भी प्रकार की बाहरी या भीतरी सूजन के लिए प्रयुक्त की जाती है। शोथ में भी इसके पत्तों का स्वरस अथवा मूल या पत्रों का काढ़ा दिया जाता है तथा ताजे पत्तों का लेप स्थानीय उपचार के रूप में किया जाता है।

श्री भंडारी के अनुसार यह औषधि वेदनाशामक और मज्जा तंतुओं को शक्ति देने वाली है। सूजन नष्ट करने वाला इसका गुण जो विशेषकर अंतर्कोशीय स्तर पर प्रभावी होता है, अपने आप में विशिष्ट है। यह वातनाशक व जोड़ों के दरद को, जो ऋतुक्रम के अनुसार बढ़ते-घटते रहते हैं, मिटाने वाली एक कारगर औषधि है। संधिशोथ में चाहे उनका कारण जीवाणु हो या वार्द्धक्य, यह तुरंत लाभ पहुँचाती है। वैसे तो आयुर्वेद में सूजन उतारने वाली कई औषधियों का वर्णन मिलता है, पर निर्गुंडी इन सब में अग्रणी है एवं सर्वसुलभ भी। इसके अतिरिक्त तंतुओं को चोट पहुँचाने, मोच आदि के कारण आई मांसपेशियों की सूजन में भी यह लाभ पहुँचाती है। अधिक चलने या श्रम करने से मांसपेशियों को हुई थकान में यह तुरंत लाभकारी है। इसका कारण बताते हुए डॉ० नादकर्णी कहते हैं यह औषधि नाड़ी मंडल के अवसाद को दूर कर उन्हें उत्तेजित करती है। बाहरी

Free Read/Download & Order 3000+ books authored by Yugrishi Pt. Shriram Sharma Acharya(Founder of All World Gayatri Pariwar) on all aspects of life in Hindi, Gujarati, English, Marathi & other languages at
www.vicharkrantibooks.org http://literature.awgp.org

स्नायु संस्थान, प्लेक्स, रुट्स व नस-तंतुओं में विद्युत्प्रवाह बढ़ाकर यह उन्हें उत्तेजित करती है। इसी कारण इसे सिरदरद विशेषकर ट्राइजेमिनलन्यूरेल्जिया तथा सियाटिका जैसे रोगों में विशेष लाभकारी पाया गया है।

श्री चोपड़ा 'ग्लौसरी ऑफ इंडियन मैडीसिनल प्लांट्स' पुस्तक में लिखते हैं कि किसी भी प्रकार की लंबे समय से चली आ रही जोड़ों की सूजन तथा प्रसव के बाद गर्भाशय की असामान्य सूजन को उतारने में निर्गुंडी पत्र चमत्कारी भूमिका निभाते हैं।

ताजा पत्तियों को मिट्टी के पात्र में रखकर आग पर गरम कर उसे लगाने से अथवा पत्तियों को कुचलकर शोथ वेदना वाले स्थानों पर लगाने से तुरंत लाभ होता है, ऐसा डॉ० नादकर्णी का मत है। जड़ की छाल के टिंक्चर का प्रयोग भी रुमेटिज्म या रुमेंटॉइड आर्थ्राइटिस के लिए बताया गया है।

यूनानी चिकित्सा पद्धति में निर्गुंडी पत्र वर्के संभालू और फल तुख्मे संभालू के नाम से प्रसिद्ध है। इन्हें दूसरे दर्जे में गरम और खुश्क मानकर सूजन उतारने वाला तथा दरद निवारक बताया गया है।

होम्योपैथी में निर्गुंडी के श्वेत पुष्प वाली प्रजाति का टिंक्चर प्रयुक्त करते हैं। डॉ० विलियम बोरिक ने इसे इंडियन आर्निका नाम दिया है। उसके अनुसार दवा जोड़ों के दरद में विशेष लाभकारी है।

रासायनिक संरचना—इस औषधि पर विस्तृत कार्य हुआ है। अनुसंधान के बाद पाया गया है कि ताजी पत्तियों का भाप आसवन करने पर उसमें जल में घुलनशील एक हलके पीले रंग का तेल मिलता है। उसकी मात्रा पत्रों में ०.०४ से ०.०७ प्रतिशत तक होती है। जल से कुछ ही हलके इस तेल में २२.५ प्रतिशत एल्डीहाइड, १५ प्रतिशत फीनॉल के घटक तथा १० प्रतिशत सिनीऑल पाया

Free Read/Download & Order 3000+ books authored by Yugrishi Pt. Shriram Sharma Acharya(Founder of All World Gayatri Pariwar) on all aspects of life in Hindi, Gujarati, English, Marathi & other languages at
www.vicharkrantibooks.org http://literature.awgp.org

गया है। दो एल्केलॉइड भी पाए गए हैं, जिन्हें निशंडीन और हाइड्रोकोर्टीलान नाम दिया गया है। इस पौधे की ताजी पत्तियों में प्रति सौ ग्राम १५० मिलीग्राम विटामिन सी और ३५०० माइक्रोग्राम कैरोटीन होते हैं।

फ्लेवॉन और ग्लाइकोसाइड जैसे जैविक रूप से समर्थ सक्रिय घटक निर्गुंडी पत्रों में प्रचुर संख्या में पाए गए हैं। टैनिक अम्ल, हाइड्रौक्सी बैंजोइक अम्ल, हाइड्रौक्सी आइसोथेलिक अम्ल भी इसमें पाए जाते हैं।

पत्रों का सक्रिय घटक रंगहीन उड़नशील तेल, एल्केलॉइड्स, विटामिन्स ही वे सक्रिय तत्त्व हैं जो औषधीय प्रयोजन की दृष्टि से उपयोगी हैं। वे इस सर्वोपलब्ध तथाकथित वाइल्ड औषधि को उपयोगी सिद्ध करते हैं।

आधुनिक मत एवं वैज्ञानिक प्रयोग निष्कर्ष—वैज्ञानिक प्रयोगों में यह पाया गया है कि निर्गुंडी पत्रों का क्वाथ प्रायोगिक जंतुओं के जोड़ों में कृत्रिम रूप से उत्पन्न की गई सूजन (गठिया) की प्रगति रोककर यथास्थिति लाता है। फलों का चूर्ण भी दरद निवारक पाया गया है।

विभिन्न वैज्ञानिकों ने इसके बाह्य तथा आंतरिक प्रयोगों से पाया है कि यह नाड़ी तंतु जाल को सशक्त बनाता है, अपने वेदना निवारक गुण से मांसपेशियों, नाड़ियों तथा संधियों के दरद को मिटाता है। मूलतः इसके पत्रों का बाह्य प्रयोग अत्यंत लाभकारी होता है, ऐसा आयुर्वेद के विद्वानों का अनुभव है।

ग्राह्य अंग—वैसे तो इस पौधे के सभी भाग औषधीय गुणों से युक्त है, परंतु पत्तियाँ और जड़ अपेक्षाकृत अधिक प्रयुक्त किए जाते हैं। छाल तथा पंचांग चूर्ण भी प्रयुक्त होते हैं।

Free Read/Download & Order 3000+ books authored by Yugrishi Pt. Shriram Sharma Acharya(Founder of All World Gayatri Pariwar) on all aspects of life in Hindi, Gujarati, English, Marathi & other languages at
www.vicharkrantibooks.org http://literature.awgp.org

मात्रा—पत्र स्वरस १० से २० ग्राम (२ से ४ चम्मच)। मूल की छाल का चूर्ण १ से ३ ग्राम। बीज चूर्ण अथवा फल चूर्ण ३ से ६ ग्राम।

निर्धारणानुसार उपयोग— सिरदरद आदि में पत्तों के स्वरस का लेप सिर पर करने से तुरंत आराम मिलता है, ऐसा आर० एन० खोरी का मत है। कटि प्रदेश (सेक्रोपेल्विक संधि) की वात सूजन में निर्गुंडी पत्र स्वरस का पान १० से २० ग्राम मात्रा में करते हैं। ऐसा अनुभव है कि सियाटिका, स्लिप्ड डिस्क, लंबैगो, मांसपेशियों को झटका लगने के कारण आई सूजन में निर्गुंडी त्वक चूर्ण या पत्र का क्वाथ कम अग्नि पर पकाकर देने से (२० ग्राम दिन में ३ बार) कष्ट तुरंत समाप्त हो जाता है। निर्गुंडी स्वरस ३ तोला दिन में ३ बार शहद के साथ देने से टिटनेस जैसे रोग में शीघ्र लाभ पहुँचते देखा गया है।

निर्गुंडी पत्र क्वाथ तथा पंचांग क्वाथ की भाप का प्रयोग रह्यूमेटिक रोगों में किया जाता है। गठिया चाहे वह जीवाणु संक्रमण की प्रतिक्रिया जन्य हो अथवा वार्द्धक्य की परिणति, सूजन उतारने, दरद निवारण में निर्गुंडी त्वक चूर्ण, पत्र चूर्ण या ताजे स्वरस से तुरंत लाभ मिलता है।

अन्य उपयोग—मुँह के छालों में इसके क्वाथ से कुल्ला कराते हैं। अंडशोथ में इसके पत्रों को गरम करके बाँधते हैं। कान के दरद में भी पत्र स्वरस लाभ पहुँचाता है। यह लीवर की सूजन तथा कृमियों को मारने के लिए भी प्रयुक्त होती है। विविध ज्वरों में अनुपान रूप में प्रयुक्त करके इसके स्वरस को ज्वरघ्न के रूप में भी प्रयुक्त किया गया है।



Free Read/Download & Order 3000+ books authored by Yugrishi Pt. Shriram Sharma Acharya(Founder of All World Gayatri Pariwar) on all aspects of life in Hindi, Gujarati, English, Marathi & other languages at
www.vicharkrantibooks.org http://literature.awgp.org

१२. शुंठी (सोंठ)

जिंजिबर आफिसिनेल

इसे शुष्क होने से शुंठी, अनेक विकारों का शमन करने में समर्थ होने के कारण महौषधि, विश्व भेषज भी कहा जाता है। कच्चा कंद अदरक नाम से घरेलू औषधि के रूप में सर्वविदित है।

वानस्पतिक परिचय—इसका क्षुप वर्षायु होता है। कोमल कंद युक्त यह पौधा २ से ४ फीट ऊँचा होता है। पत्र बांस के पत्तों के समान, स्निग्ध, १ से २ फीट लंबे व १ इंच चौड़े तथा अग्र भाग पर नुकीले होते हैं। पुष्प ध्वज लगभग ३ इंच लंबा होता है, जिसमें ८-१० इंच लंबे पुष्प दंड पर हरापन लिए पीले पुष्प लगते हैं। ये बैंगनी ओष्ठयुक्त होते हैं। पुष्प वर्षा तथा शरद में आते हैं। कंद सुगंधित, बहुखंडी, हलका पीलापन लिए होता है। यही भौमिक कांड औषधि कार्य हेतु प्रयुक्त होता है।

सारे भारत में समशीतोष्ण जलवायु प्रधान क्षेत्रों में यह आसानी से पैदा हो जाता है। उष्ण और आर्द्र प्रदेशों यथा—केरल, उड़ीसा, कर्नाटक में इसकी खेती होती है। हिमालय से कन्याकुमारी तक यह पाया जाता है व बाजार में सूखे रूप में सोंठ के नाम से बिकता है।

पहचान तथा मिलावट—भौमिक कांड कई बार रोग ग्रस्त होता है, अतः स्वस्थ भाग की पहचान करना अत्यावश्यक है। बाजार में उपलब्ध सोंठ लगभग ५ सेंटीमीटर लंबी, चपटी, मटमैली सी होती है। तोड़ने पर सूखे कंद तुरंत टूटते हैं एवं टूटे तल पर अनेकों रेशे निकले दिखाई देते हैं। स्वाद में यह तीखी होती है एवं इसमें अनेकों रेशे होते हैं।

सुखाने की विधि तथा रासायनिक क्रिया से गुजारे जाने के क्रमानुसार इसके गुण अलग-अलग होते हैं। बहुधा सोंठ तैयार करने

Free Read/Download & Order 3000+ books authored by Yugrishi Pt. Shriram Sharma Acharya(Founder of All World Gayatri Pariwar) on all aspects of life in Hindi, Gujarati, English, Marathi & other languages at
www.vicharkrantibooks.org http://literature.awgp.org

से पूर्व अदरक को छीलकर सुखा लिया जाता है। परंतु उस छीलन में सर्वाधिक उपयोगी तेल (इसेंशियल ऑइल) होता है, छिली सोंठ इसी कारण औषधीय गुणवत्ता की दृष्टि से घटिया मानी जाती है। 'वेल्थ ऑफ इंडिया' ग्रंथ के विद्वान लेखक गणों का अभिमत है कि अदरक को स्वाभाविक रूप से सुखाकर ही सोंठ की तरह प्रयुक्त करना चाहिए। तेज धूप में सुखाई गई अदरक उस सोंठ से अधिक गुणकारी है जो बंद स्थान में कृत्रिम गरमी से सुखाकर तैयार की जाती है। कई बार सोंठ को रसायनों से सम्मिश्रित कर सुंदर बनाने का प्रयास किया जाता है। यह सोंठ दीखने में तो सुंदर दिखाई देती है, पर गुणों की दृष्टि से लाभकर सिद्ध नहीं होती है।

संग्रह, संरक्षण, भेद—औषधीय प्रयोजनों के लिए अदरक को तब एकत्र किया जाता है, जब फूल समाप्त हो जाएँ तथा तना सूख जाए। शुष्क कंद को वायु, धूल रहित अनार्द्र स्थान में मुख बंद पात्रों में रखते हैं।

बांस के टुकड़े से छिलका हटाकर पानी से धोकर छाया में सुखाई गई तथा ८-१० दिन बाद गाढ़े चूने के पानी में डुबाकर, धूप में सुखाकर चमकीली बनाई गई सोंठ सर्वप्रचलित है, पर यह विधि विधान की दृष्टि से गलत है। सोंठ हमेशा धूप में स्वाभाविक रूप में सुखाई जानी चाहिए। व्यापारी भेद से कई प्रकार की शुंठी प्रचलित है एवं वानस्पतिक भेद से भी जापानी व जरेब्मेट, ये २ भेद माने जाते हैं। भारतीय मानकों के अनुसार सूखी अदरक २ सेंटीमीटर की हो, हलके भूरे रंग की सूत्रयुक्त त्वचायुक्त हो, इसकी गंध तथा स्वाद में कोई विकृति न हो।

कालावधि—सुखाए गए कंद को १ वर्ष से अधिक प्रयुक्त न किया जाए। यदि इस बीच नमी आदि लग जाती है तो

Free Read/Download & Order 3000+ books authored by Yugrishi Pt. Shriram Sharma Acharya(Founder of All World Gayatri Pariwar) on all aspects of life in Hindi, Gujarati, English, Marathi & other languages at
www.vicharkrantibooks.org http://literature.awgp.org

औषधि अपने गुण खो देती है। अतः यथासंभव अनार्द्र स्थिति में रखा जाए।

गुण-कर्म संबंधी विभिन्न मत—पुरातन और अर्वाचीन आयुर्वेदिक साहित्य में हर स्थान पर सोंठ को वात नाड़ी संस्थान पर समर्थ क्रिया करने का वर्णन मिलता है। सारे शरीर के संगठन को सुधारने वाली यह घरेलू औषधि आयुर्वेद में विश्व भैषज नाम से जानी जाती है।

आचार्य सुश्रुत ने इसकी महत्ता बताते हुए पिपल्यादि और त्रिकटुगणों में इसकी गणना की है। भावप्रकाश निघंटु में इसे समर्थ आमवात नाशक बताया गया है। इसे बहुगुणी मानते हुए विधाता प्रदत्त एक बहुमूल्य औषधि कहा गया है।

श्री भंडारी 'वनौषधि चंद्रोदय' में लिखते हैं कि यह शरीर संस्थान में समत्व स्थापित कर जीवनीशक्ति और रोग प्रतिरोधक सामर्थ्य को बढ़ाती है। हृदय श्वास संस्थान से लेकर वात नाड़ी संस्थान तक यह समस्त अवयवों की विकृति को मिटाकर अव्यवस्था को दूर करती है।

डॉ० देसाई के अनुसार उष्ण और वातनाशक धर्म के कारण सोंठ सब प्रकार की वात जनित वेदनाओं में लाभकारी सिद्ध हुई है। जीर्ण संधि वात के रोगियों, विशेषकर वृद्ध पुरुषों को यह अधिक आराम देती है। कर्नल चोपड़ा लिखते हैं कि 'जिंजर टिंक्चर' का प्रयोग एक प्रकार के मादक द्रव्य के नाते नहीं, वरन उसकी वातनाशक क्षमता के कारण ही किया जाता है। पाश्चात्य जगत में सरदियों में इसे विशेष रूप से प्रयुक्त किया जाता है।

श्री नादकर्णी के अनुसार शुंठी सायिटिका की सर्वश्रेष्ठ औषधि है, क्योंकि यह गरम है। गाउट व पुराने गठिया रोग में यह अत्यंत लाभदायक है। पुराने वात रोग में सोंठ के गरम काढ़े को पीकर चिकित्सा करने का चिरपुरातन विधान चला आया है एवं पुरातन

Free Read/Download & Order 3000+ books authored by Yugrishi Pt. Shriram Sharma Acharya(Founder of All World Gayatri Pariwar) on all aspects of life in Hindi, Gujarati, English, Marathi & other languages at
www.vicharkrantibooks.org http://literature.awgp.org

ग्रंथों में इसका वर्णन सभी प्रकार के जोड़ों, मांसपेशियों के चिकित्सा प्रयोगों में मिलता है।

रासायनिक संरचना—ताजी अदरक में लगभग ८० प्रतिशत जल होता है, जबकि सुखाकर सोंठ बनाने पर जल की मात्रा लगभग दस प्रतिशत रह जाती है। फलस्वरूप शेष सक्रिय घटक और भी अधिक सघन सांद्र होकर औषधि कार्य के लिए उपलब्ध हो जाते हैं। इस जल तत्त्व के अतिरिक्त शेष अन्य घटक इस प्रकार हैं—प्रोटीन १२.४ प्रतिशत, रेशा ७.२ प्रतिशत, स्टार्च ५३ प्रतिशत, एश ६.६ प्रतिशत, इसेंशियल ऑइल १.८ प्रतिशत, अन्य पदार्थ जिनमें औलियोरेजिन आदि प्रमुख हैं।

सोंठ में १.६ से २.४४ प्रतिशत नाइट्रोजन होती है, जिनमें से दो तिहाई प्रोटीन्स के रूप में होती है। ये एल्ब्यूमिन, ग्लोब्युलिन, प्रोलामिन, और ग्लूटामिन नाम से व सूक्ष्म रूप में थ्रियोनिन नाम से पाए जाते हैं। प्रोटीनों के अतिरिक्त मुक्त अमीनो अम्ल भी हैं यथा—ग्लूटेमिक एसिड, एस्पार्टिक एसिड, सीरीन, ग्लाइसीन, थ्रीयोनिन, एलेनीन, अर्जीनीन, बेलीन, फिनाइलएनिन, एस्पेरेजीन, लायसीन, सीस्टीन, हिस्टीडीन, ल्यूसीन्स, प्रोलीन एवं पाइकोलिक एसिड।

कार्बोहाइड्रेटों में स्टार्च के अतिरिक्त ग्लूकोस, फ्रूक्टोस, सुक्रोस, रैफीनीस आदि भी सोंठ में पाए जाते हैं।

सोंठ में पाई जाने वाली सुगंध का मूल कारण उसका उत्पत तेल (इसेंशियल ऑइल) है। विशेष बात यह है कि तेल सोंठ की बाह्य त्वचा पर ही अधिकतर मात्रा में होता है। इसे छीलकर फेंक देने से सोंठ के गुण बहुत घट जाते हैं। यह तेल हलके पीले रंग का होता है। इस तेल में ५० प्रतिशत तो सेस्क्वीटर्पीन हाइड्रोकार्बन होता है, जिसे जिंजीवरीन नाम दिया गया है और शेष अल्कोहल सत्व को जिंजीबराल। यदि ६ माह से अधिक सोंठ को रखा जाए तो इसके अधिकांश घटक

Free Read/Download & Order 3000+ books authored by Yugrishi Pt. Shriram Sharma Acharya(Founder of All World Gayatri Pariwar) on all aspects of life in Hindi, Gujarati, English, Marathi & other languages at
www.vicharkrantibooks.org http://literature.awgp.org

नष्ट हो जाते हैं। इस तेल के अतिरिक्त सोंठ में ओलियोरेसिन भी पाया जाता है जो बहुत तीव्र गंध का होता है। इसमें जिंजीरल तथा भोगाल नामक अति तीव्र गंध का तेल भी निकाला गया है। सोंठ में पाई जाने वाली एश में कैल्शियम, फास्फोरस, लोहा, आयोडीन आदि पाए गए हैं तथा मज्जा में थाअमीन (०.०६ मिलीग्राम प्रतिशत), राइबोफ्लेबिन (०.०३ मिलीग्राम प्रतिशत), नियासिन (०.६ मिलीग्राम प्रतिशत), विटामिन सी (६ मिलीग्राम प्रतिशत) तथा कैरोटीन (४० माइक्रोग्राम प्रतिशत) जैसे विटामिन भी विद्यमान हैं। सचमुच सोंठ की रासायनिक संरचना बड़ी अद्‌भुत एवं विलक्षण है।

आधुनिक मत एवं वैज्ञानिक प्रयोग निष्कर्ष—सोंठ में प्रोटियोलिटिक एन्जाइम्स की प्रचुरता है। शरीर संगठन-होमीयोस्टेसिस एन्जाइम्स व आयान्स के संतुलन पर टिके हैं। अपने इस गुण के कारण यह जीवनीशक्ति वर्द्धक, नाड़ी संस्थान के लिए उत्तेजक एवं वात शामक औषधि बताई जाती है।

वैज्ञानिकों का मत है कि प्रोटिथीलिटिक एन्जाइम क्रिया के कारण ही यह कफ मिटाती है तथा पाचन संस्थान में शूल निवारण दीपन की भूमिका निभाती है। जीवाणुओं के ऊपर भी इसी क्रिया द्वारा तथा जीवनीशक्ति बढ़ाकर यह रक्त शोधन करती है।

यूनानी चिकित्सा में यह जिंजीवर नाम से जानी जाती है तथा तीसरे दर्जे में गरम व दूसरे में खुश्क है। इसे वातानुलोमक मानकर कई योगों में यूनानी वैद्य प्रयुक्त करते हैं। हकीमों के अनुसार जीर्ण संधि-शोथ में एक तोला सोंठ नियमित रूप से रात्रि को शयन के समय लेने से रोग शीघ्र ही मिट जाता है।

श्री फैज ने होम्योपैथी में सबसे पहले इस औषधि का प्रयोग पहली से लेकर छठी पोटेन्सी तक किया व जोड़ों के पुराने रोगियों को दरद से मुक्ति दिलाई।

Free Read/Download & Order 3000+ books authored by Yugrishi Pt. Shriram Sharma Acharya(Founder of All World Gayatri Pariwar) on all aspects of life in Hindi, Gujarati, English, Marathi & other languages at
www.vicharkrantibooks.org http://literature.awgp.org

ग्राह्य अंग—भौमिक कंद।

मात्रा—शुंठी चूर्ण १ से २ ग्राम। आर्द्रक स्वरस ५ से १० मिली लीटर। इसका अरक एवं शरबत भी एक से तीन तोला की मात्रा में प्रयुक्त होता है।

निर्धारणानुसार उपयोग—शुंठी एक उत्तम कोटि की आम पाचक, वात नाशक औषधि है। अतः सात्मीकरण होमियोस्टेसिस लाने के लिए प्रयुक्त होने वाली बहु प्रचलित घरेलू औषधि है। सभी प्रकार के जोड़ों की व्याधियों में रात्रि में सोते समय एक तोला शुंठी फांट रूप में नियमित देना चाहिए। कटिशूल (लंबेगो) स्लिप्डडिस्क आदि में इसकी इतनी ही मात्रा चूर्ण रूप में मधु के साथ ली जानी चाहिए। संधिशोथ में इसे गुड़ के अनुपान से प्रयुक्त करने का विधान बताया गया है। साइटिका के रोगी को तो आराम पहुँचाती ही है। अधिक पीड़ा होने पर एक और बीस के अनुपात में बनाया गया शुंठी क्वाथ ३० से ६० ग्राम प्रति घंटे लिया जा सकता है। संधिशोथ में बाह्य लेप के रूप में भी इसे प्रयुक्त करते हैं।

अन्य उपयोग—अरुचि, उल्टी की इच्छा होने पर, अग्निमंदता, अजीर्ण एवं पुराने कब्ज में यह तुरंत लाभ पहुँचाती है। यह हृदयोत्तेजक है जो ब्लड प्रेशर ठीक करती है तथा खाँसी, श्वास रोग, हिचकी में भी आराम देती है। कफ निस्सारक है अतः क्रोनिक ब्रोंकाइटिस आदि में तो विशेष लाभकारी है। विषम ज्वरों में शुंठी चूर्ण—मिसरी, मधु, जल के अनुपात से प्रयुक्त करने पर ज्वर तुरंत उतर जाता है। सामान्य दुर्बलता में भी अति लाभकारी है विशेषकर प्रसवोत्तर दुर्बलता में।

यह एक गरम औषधि है। अतः इसका प्रयोग कुष्ठ व पीलिया रोग, शरीर में कहीं भी रक्तस्राव होने की स्थिति तथा ग्रीष्म ऋतु में नहीं किया जाना ही उचित है। 

Free Read/Download & Order 3000+ books authored by Yugrishi Pt. Shriram Sharma Acharya(Founder of All World Gayatri Pariwar) on all aspects of life in Hindi, Gujarati, English, Marathi & other languages at
www.vicharkrantibooks.org http://literature.awgp.org

१३. नीम (निंब)
एजाडिरेक्टा इंडिका

'निम्बति सिञ्चति स्वास्थ्यं इति निम्बम्' अर्थात जो स्वास्थ्य को बढ़ाए, वह नीम (निंब) कहलाता है। इसे पिचुमर्द (कुष्ठ नष्ट करने वाला), कड़वा निंब तथा अरिष्ट (नरिष्टम शुभमस्मात् अर्थात जिससे शरीर को कोई हानि न हो), मार्गोसा ट्री नाम से भी जाना जाता है। यह भारत में सर्वत्र उत्पन्न होता पाया जाता है। विशेषकर दक्षिण भारत के शुष्क जंगली व मध्य तथा उत्तर भारत में बड़ी संख्या में पाया जाता है। इस वृक्ष को नीलकंठ भी कहा जाता है, क्योंकि वातावरण में संव्याप्त प्रदूषण को गरल पान कर यह वायु को शुद्ध करने में सर्वाधिक योगदान देता पाया गया है। इसी कारण घरों व गाँवों के आस-पास तथा सड़कों के किनारे यह बहुधा पाया जाता है।

वानस्पतिक परिचय—वृक्ष ४० से ५० फीट ऊँचा होता है। सीधा खड़ा तना होता है, जिसमें चारों ओर शाखाएँ-प्रशाखाएँ निकली रहती हैं। इसके लगभग सभी अंग तिक्त-कटु होते हैं। पत्तियाँ शाखाओं पर समूहबद्ध क्रम में लगी होती हैं, शाखाग्र कोमल होते हैं और कोपल कहलाते हैं। पत्ते १ इंच लंबे लगभग एक इंच चौड़े भालाकार ५ से ९ के जोड़े में होते हैं। त्वचा स्थूल खुरदरी लंबे-लंबे खंडों से युक्त होती है। बाहर गहरे भूरे रंग की व अंदर कुछ लाली लिए होती है। इससे एक प्रकार का रस व गोंद निकलता है।

फूल छोटे मंजरियों में अवस्थित सफेद रंग के होते हैं। फल लंबे गोल लगभग १/२ से तीन चौथाई इंच लंबे, कच्ची अवस्था में हरे तथा पकने पर पीले होते हैं। इनका आकार खिरनी के फल जैसा होता है। इन निमौलियों में से प्रत्येक में एक बीज होता है, जिससे तेल

Free Read/Download & Order 3000+ books authored by Yugrishi Pt. Shriram Sharma Acharya(Founder of All World Gayatri Pariwar) on all aspects of life in Hindi, Gujarati, English, Marathi & other languages at
www.vicharkrantibooks.org http://literature.awgp.org

निकलता है। पतझड़ में वृक्ष की सारी पत्तियाँ गिर जाती हैं व वसंत में नए तांबे जैसे पत्ते आते हैं। वसंत में आए पुष्प ग्रीष्म के अंत एवं वर्षा के प्रारंभ तक पकते हैं।

नीम का गोंद लंबे-लंबे टुकड़ों के रूप में मिलता है। यह कड़वा नहीं होता व पानी में अच्छी तरह घुल जाता है। प्रयोग हेतु छाल (त्वचा), पुष्प, कोपल एवं बीज किसी को भी लिया जा सकता है।

पहचान एवं मिलावट—नीम की छाल खुरदरी या नालीदार, रेशेदार टुकड़ों के रूप में होती है तथा लगभग एक सेंटीमीटर मोटी होती है। यह स्वाद में अत्यंत तीखी व कषैलापन लिए होती है। इसमें लहसुन जैसी तेज गंध भी आती है। नीम का तेल हलके पीले गाढ़े द्रव्य के रूप में होता है, गंध उग्र होती है तथा स्वाद कड़वा। इसकी सैपोनीफिकेशन वैल्यू ११६ से २०० के बीच होती है।

संग्रहण संरक्षण एवं कालावधि—नीम का तेल, ताड़ी तथा त्वक चूर्ण का संग्रह किया जाता है। कोपल व ताजी छाल सीधे प्रयुक्त की जा सकती है। नीम का तेल पकी निमौली (गिरी) को कोल्हू में पेरकर प्राप्त किया जाता है। इसे अच्छी तरह डाट बंद पात्र में सूखे स्थानों पर रखा जाना चाहिए।

जब वृक्ष पुराना हो जाता है तो उसमें स्वत: ४ से ७ सप्ताह तक एक प्रकार का रस निकलता रहता है। ताजे रस का स्वाद मधुर मिश्रित तीखा होता है। इसे शहद में मिलाकर बोतल में बंद कर रखते हैं। एक वर्ष तक इसे प्रयुक्त करते रहा जा सकता है। निंबत्वक चूर्ण भी इसी प्रकार एक वर्ष तक प्रयुक्त हो सकता है, परंतु यह मधु एवं अन्य स्नेह मधुर द्रव्यों का अनुपान माँगती है।

गुण-कर्म संबंधी विभिन्न मत—नीम की छाल, कोपल, निमौली एवं गोंद सहस्रों वर्षों से आयुर्विज्ञान में प्रयुक्त होते रहे हैं।

Free Read/Download & Order 3000+ books authored by Yugrishi Pt. Shriram Sharma Acharya(Founder of All World Gayatri Pariwar) on all aspects of life in Hindi, Gujarati, English, Marathi & other languages at
www.vicharkrantibooks.org http://literature.awgp.org

चरक एवं सुश्रुत दोनों ही महर्षियों ने इसे कुष्ठ तथा चर्मरोग एवं रक्त शोधन हेतु उत्तमतम औषधि माना है। धन्वंतरि निघंटुकार लिखता है—"**निम्बस्तिक्तरसः शीतोलघुःश्लोष्मास्त्रपित्तनुत्। कण्डूकुष्ठव्रणान् हन्ति लेपाहारादिशीतलः॥ अपक्वं पाचयेच्छोथं व्रणं पक्वं विशोधयेत्॥**" अर्थात नीम तिक्तरस, लघु गुण, शीत वीर्य व कटु विपाकी होने से कफ व पित्त को शांत करता है। कंडूरोग, कोढ़, फोड़े-फुंसी, घाव आदि में लेप द्वारा लाभ करता है। रक्तशोधक होने के कारण यह व्रणों तथा शोथ रोगों में लाभ पहुँचाता है।

इसी प्रकार वाग्भट्ट एवं चक्रदत्त दोनों ही वैद्यराज लिखते हैं कि यह विषैले फोड़ों, पुरानी त्वचा की व्याधि, कोढ़ तथा किसी भी प्रकार के रोगाणु आक्रमण में तुरंत लाभ करता है।

भावप्रकाश निघंटु के अनुसार नीम व्रण नाशक और कुष्ठ हर है तथा कृमिघ्न है। ऐसे ही मत डॉ० खोरी, नादकर्णी व कर्नल चोपड़ा ने भी व्यक्त किए हैं। वे इसे विषम ज्वर में एक विशिष्ट औषधि मानते हैं। नीम सेवन का प्रावधान चिरपुरातन काल से संधिकाल के लिए होता चला आया है। वसंत से ग्रीष्म की तपती धूप के आने की मध्यावधि में तथा वर्षा के तुरंत बाद रोगाणुओं के आक्रमण काल के समय रक्त शोधन तथा जीवनीशक्ति बढ़ाने हेतु इसका प्रयोग बड़ा लाभकारी बताया गया है।

होम्योपैथी में सर्वप्रथम डॉ० पी० सी० मजूमदार ने इसका प्रयोग आरंभ किया। श्री घोष के अनुसार यह पुराने जीर्ण व्रणों की अच्छी औषधि है। त्वचा रोगों में इसके प्रयोग की विशेष चर्चा की गई है। होम्योपैथी मतानुसार भी यह कुष्ठ की एक श्रेष्ठ दवा है तथा कुनैन के दुष्प्रभावों को दूर करती है।

यूनानी मतानुसार नीम आजाद दरख्ते नाम से प्रसिद्ध है। अरक गुलनीम इसका एक प्रसिद्ध योग है। उसके अनुसार यह पहले दर्जे में

Free Read/Download & Order 3000+ books authored by Yugrishi Pt. Shriram Sharma Acharya(Founder of All World Gayatri Pariwar) on all aspects of life in Hindi, Gujarati, English, Marathi & other languages at
www.vicharkrantibooks.org http://literature.awgp.org

गरम एवं खुश्क है। हकीम दलजीत सिंह के अनुसार यह दोष पाचन, रक्त प्रसादन, कीटाणु नाशक कार्य में प्रयुक्त श्रेष्ठ औषधि है। नीम के पुराने वृक्षों से निकलने वाली ताड़ी जिसे यूनानी वैद्य मद कहते हैं, उच्च श्रेणी का रक्त प्रसादक है। यह कोढ़, सिफिलिस एवं किसी भी रोगाणु जन्य खुजली को दूर करती है।

रासायनिक संगठन—नीम के कड़वे पदार्थ का विश्लेषण सर्वप्रथम श्री कार्निस ने सन् १९५६ में किया। इसे उन्होंने मार्गोसीन नाम दिया। आधुनिक अध्ययनों से यह पता चला है कि नीम में मार्गोसीन के अतिरिक्त अन्य और भी कई कड़वे पदार्थ होते हैं, जिनमें प्रमुख है 'निंबडिन' जो इसकी छाल में ०.४ प्रतिशत तक की मात्रा में विद्यमान होता है। निंबडिन में गंधक होता है। अति कड़वा होते हुए भी यह हानिकारक नहीं होता। अन्य कड़वे पदार्थ हैं—निंबिन (०.०४ प्रतिशत), डेसएसिटाइल निंबिन, निंबिनिन, निंबोस्टीरॉल। नीम की छाल के अन्य संघटक हैं—टैनिन (६ प्रतिशत), इसेंशियल ऑइल, रेजेंन्स, कई ग्लाइकोसाइड्स, वसा अम्ल, मुक्त अमीनो अम्ल, गोंद, स्टार्च तथा शर्करा।

'जनरल ऑफ इंडियन केमीकल सोसाइटी' में प्रकाशित एक लेखानुसार (४५,४६६, १९६९) नीम की पत्तियों में क्वर्सेटिन और एक बीटा-साइटोस्टीरॉल (निंबोस्टीरॉल) होता है। क्वर्सेटिन एक जीवाणुनाशक पदार्थ है, जिसकी मात्रा ताजी कोपलों में सर्वाधिक होती है।

आधुनिक मत एवं प्रयोग निष्कर्ष—भाषा के अनुसार नीम एक प्रचंड जीवाणुनाशी औषधि है। इसके रोम-रोम में रक्तशोधक गुण भरे पड़े हैं। अतिस्वल्प मात्रा में (१२.५ माइक्रोग्राम प्रति मिलीलीटर) नीम का तेल प्रायोगिक परीक्षणों में क्षय रोग को जन्म देने वाले जीवाणु माइक्रो वैक्टीरियम टुवरकुलोसिस की तीनों प्रजातियों

Free Read/Download & Order 3000+ books authored by Yugrishi Pt. Shriram Sharma Acharya(Founder of All World Gayatri Pariwar) on all aspects of life in Hindi, Gujarati, English, Marathi & other languages at
www.vicharkrantibooks.org http://literature.awgp.org

का वंश नाश करता पाया गया है। इसके अतिरिक्त टाइफाइड, पेराटाइफाइड, कॉलरा तथा न्यूमोनिया के लिए उत्तरदायी जीवाणु विषाणु समूहों की शरीर में वृद्धि पर भी इसका मारक प्रभाव होता है।

श्री राव के अनुसार नीम की पत्तियों (ताजी कोपलों) का काढ़ा विषाणुरोधी क्षमताएँ रखता है। रक्त का समग्र शोधन कर यह प्रतिरोधी सामर्थ्य बढ़ाता है। निंबिडीन में भी फंजाईरोधी (कवकनाशक) क्षमताएँ पाई गई हैं।

निंबिडीन को फोड़ों, हरपीस नामक एक वायरस संक्रमण स्केवीज (कंडू रोग) और सीबोहरिक डर्मेटाइटिस में लाभ करता देखा गया है। इस विषय पर डॉ० मित्रा ने नीम नामक एक विस्तृत पुस्तक लिखी है (इंडियन सेंट्रल ऑयल सीड्स कमेटी, हैदराबाद-१९६३)। वे निंबिडीन के कारण ही नीम को एक अमृत औषधि मानते हैं।

श्री मूर्ति आदि के अनुसार (इंडियन जनरल ऑफ फार्मोकालॉजी १०, ३, १९७८) नीम की पत्तियों का निष्कर्ष रक्त शर्करा को कम करता है। यह एड्रीनेलिन के प्रभाव से उत्पन्न हाइपर ग्लाईसीमिया को भी रोक देता है। संभवत: रक्त शर्करा घटाकर ही नीम अपनी जीवाणु-नाशी क्रिया संपादित करता है। यह एक सर्वविदित तथ्य है कि शर्करा प्रधान मीडिया में जीवाणु पलते हैं तथा शक्कर घटा देने पर जीवाणु प्राणहीन हो जाते हैं।

ग्राह्य अंग—पुष्प, छाल, विशेषकर भूमि के नीचे की ताजी तथा पुरानी छाल का चूर्ण, पत्र, बीज, निमौली तेल।

मात्रा—त्वक चूर्ण २ से ४ ग्राम नित्य। पत्र स्वरस १० से २० मिलीलीटर नित्य, छाल का चूर्ण यदि त्वक के अंदरूनी भाग का हो तो विशेष लाभकारी होता है। तेल ५ से १० बूँद।

निर्धारणानुसार उपयोग—वसंत के उपरांत विशेषकर चैत्र मास में नीम के कोपलों का सेवन श्रेष्ठ माना गया है। रक्तशोधन के लिए

Free Read/Download & Order 3000+ books authored by Yugrishi Pt. Shriram Sharma Acharya(Founder of All World Gayatri Pariwar) on all aspects of life in Hindi, Gujarati, English, Marathi & other languages at
www.vicharkrantibooks.org http://literature.awgp.org

ऋतु संधिकाल ही श्रेष्ठ समय है। इसी वेला में शरीर विषमता का सामना करता है व प्रतिरोधी सामर्थ्य की परीक्षा भी इसी समय में होती है।

कोढ़ के रोगी के लिए शास्त्रकारों ने सदैव नीम के वृक्ष के नीचे रहने का प्रावधान किया है। नीम की ही दातून से नित्य मुँह धोना, प्रातः नित्य ५ तोला नीम पत्र स्वरस अथवा १०-१५ बूँद तेल पीना, सारे शरीर में नीम पत्र स्वरस का उबटन करना, ये सभी प्रयोग कोढ़ निवारण के सिद्ध प्रयोग हैं। शास्त्रकार लिखते हैं कि कुष्ठ रोगी को भोजनोपरांत दो बार पाँच-पाँच तोला नीम की ताड़ी पीना चाहिए तथा शय्या पर नित्य नीम की ताजी पत्तियाँ बिछानी चाहिए।

धन्वंतरि वनौषधि अंक के विद्वान लेखक के अनुसार श्वेत कुष्ठ में रोगी को नीमपत्र, पुष्प, फल सम भाग में रख महीन पीसकर २ ग्राम की मात्रा में जल में घोंट-छानकर सेवन आरंभ करके धीरे-धीरे ३ से ६ माशा तक बढ़ाते हुए ४० दिनों तक सेवन करना चाहिए।

खुजली के रोगी को एक-एक नीम की गिरी नित्य खिलाते रहने व एक-एक प्रत्येक दो दिन के अंतर पर बढ़ाते रहने का भी अभिमत है। कंडूरोग में नीम के दो तोला कोमल पत्र पानी के साथ पीसकर पिलाने पर १५ दिन में खुजली दूर हो जाती है। नीम पत्र चूर्ण घी के साथ नित्य दो ग्राम की मात्रा में सुबह-शाम सेवन करने से कभी विषम ज्वर नहीं सताते तथा किसी भी पकार की चोट आदि में घाव पकता नहीं।

अन्य उपयोग—इसके स्थानीय उपचार प्रयोगों की चर्चा तो इसी पुस्तक में अगले पृष्ठों पर की गई है। मुँह से लिए जाने पर यह पाचन-संस्थान में कृमिनाशक, यकृदोत्तेजक प्रभाव बढ़ता है। शोथ मिटाता है तथा श्वास रोग खाँसी में आराम देता है। मधुमेह, बहुमूत्र रोग में भी इसे प्रयुक्त करते हैं। इसी प्रकार के विषम जीर्ण ज्वरों में इसके प्रयोग का प्रावधान है। 

Free Read/Download & Order 3000+ books authored by Yugrishi Pt. Shriram Sharma Acharya(Founder of All World Gayatri Pariwar) on all aspects of life in Hindi, Gujarati, English, Marathi & other languages at
www.vicharkrantibooks.org http://literature.awgp.org

१४. सारिवा

हेमिडेसमस इंडिकस

इसे अनंतमूल, गोपवल्ली, कपूरी नाम से भी जाना जाता है। श्वेत, कृष्ण दो प्रकार की प्रजातियाँ मानी जाती हैं। कृष्ण सारिवा के गुण-कर्म व वानस्पतिक वर्णन अनंतमूल से बिलकुल अलग हैं। उसे जम्बू पत्रा सारिवा भी कहा जाता है। सारिवा नाम से जब भी चर्चा होती है तो वह अनंतमूल, हेमीडेस्मस प्रजाति की ही होती है।

वानस्पतिक परिचय—सारिवा की लता पतली बहुवर्षायु गुल्म सदृश होती है। यह ५ से १५ फीट लंबी होती है तथा जमीन पर फैल जाती है अथवा निकटवर्ती किसी भी वृक्ष को लपेटकर उस पर चढ़ जाती है।

सारिवा मूल ही प्रयोजनीय अंग है। इसमें से कर्पूर मिश्रित चंदन सी गंध आती है। जड़ की ऊपरी छाल कुछ भूरे रंग की होती है। स्वाद कुछ मीठापन लिए चरपरा। जड़ को ताजा तोड़ने पर दूध निकलता है। छाल सूख जाने पर यह फटी रेखायुक्त दिखाई देता है। छाल का निचला भाग कुछ पीले रंग का व अत्यंत मजबूत होता है।

शाखाएँ सुतली से लेकर उँगली तक मोटी, काले रंग की चारों ओर फैली होती हैं। इस पर श्वेत भूरे रंग के मुलायम रोम होते हैं तोड़ने से शीघ्र टूटती नहीं। पत्ते कुछ-कुछ अनार के पत्तों के समान अंडाकार आयताकार १ से ४ इंच लंबे होते हैं। इनका निचला भाग हलकी श्वेत आभा लिए तथा ऊपरी पृष्ठ श्वेत रेखांकित होता है। फूल पत्र कोणीय मंजरियों में बाहर हरे व भीतर बैंगनी रंग लिए होते हैं। आषाढ़-सावन में फूल आते हैं। इनमें चंदन सी सुगंध रहती है। ये

Free Read/Download & Order 3000+ books authored by Yugrishi Pt. Shriram Sharma Acharya(Founder of All World Gayatri Pariwar) on all aspects of life in Hindi, Gujarati, English, Marathi & other languages at
www.vicharkrantibooks.org http://literature.awgp.org

गुच्छों में लगते हैं तथा प्राय: दोपहर के समय खिलते हैं। पंखुड़ियों में जामुनी रोएँ होते हैं। फलियाँ अनेक, पतली छोटी-छोटी श्रृंगाकार होती हैं। ये कार्तिक मार्गशीर्ष में लगती हैं, फाल्गुन या चैत्र मास में त्रिड़क कर फट जाती हैं तथा अंदर के बीज बाहर बिखर जाते हैं। बीज एक ओर से चपटे होते हैं। कच्ची अवस्था में सफेद और पकने पर बादामी या काले किनारेदार हो जाते हैं।

सारिवा गंगा के उत्तरी मैदानी भाग से लेकर पूरब में बंगाल तक तथा दक्षिण में मध्य प्रदेश से लंका तक लता के रूप में प्रचुरता से पाई जाती है। समुद्र किनारे घाट वाले प्रदेशों में भी चट्टानों के बीच-बीच इसकी गहराई तक पहुँची जड़ें देखी गई हैं।

पहचान, मिलावट, शुद्धाशुद्ध परीक्षा—सारिवा को जैसा कि ऊपर बताया गया—कृष्ण व श्वेत दो भेदों में विभाजित किया गया है। अधिकांश वनस्पतिविदों का मत है कि आकार, गंध, स्वभाव अलग-अलग होते हुए भी इनके गुण एक ही हैं, लेकिन आयुर्विज्ञानियों के प्रयोग सिद्ध मत अलग-अलग हैं। वे श्वेत सारिवा को ही प्रस्तुत प्रयोजन में प्रयोग का प्रावधान बताते हैं।

बाजार में पंसारियों के पास इसके मूल के साथ नारियल की जड़ें, कपूर माधुरी, गोरख गांजा आदि की जड़ों का भी मिश्रण मिलता है। सारिवा मूल का विभेद उसकी सुगंध से ही किया जाता है। मूल का चूर्ण भी मिश्रित मिलता है। शुद्ध सारिवा मूल चूर्ण में बाहरी खोल के गाढ़े भूरे रंग के छोटे-छोटे कण होते हैं तथा श्वेत कोमल भाग के महीन कणाकार टुकड़े। इसमें भस्म का अंश अधिकतम ४ प्रतिशत होता है। सारिवा मूल ताजा ही प्रयुक्त हो, यही वांछनीय है। जहाँ उपलब्ध न हो, वहाँ इसकी सही पहचान अनिवार्य है।

Free Read/Download & Order 3000+ books authored by Yugrishi Pt. Shriram Sharma Acharya(Founder of All World Gayatri Pariwar) on all aspects of life in Hindi, Gujarati, English, Marathi & other languages at
www.vicharkrantibooks.org http://literature.awgp.org

संग्रह संरक्षण—सारिवा का सक्रिय घटक उसकी जड़ की छाल में होता है। इस कारण बारीक, अपेक्षाकृत कम आयु के ताजे मूल लिए जाने चाहिए। मोटे मूल हों तो मात्र जड़ की छाल ली जाए। त्वचा अथवा मूल के टुकड़ों को मुखबंद पात्रों में रखा जाए। सारिवा की कालावधि अधिक नहीं है। २-३ माह में ही तेल उड़ जाता है व विकृति आने लगती है। यथासंभव सर्वोपलब्ध सही औषधि को ताजा ही प्रयोग किया जाए। इस औषधि के साथ इस तथ्य का ध्यान हमेशा रहना चाहिए।

गुण-कर्म संबंधी विभिन्न मत—आचार्य चरक ने मधुर स्कंद के द्रव्यों में सारिवा का उल्लेख किया है। आचार्य सुश्रुत ने तो सारिवादिगण की प्रधान औषधि ही सारिवा को माना है। इस गण में आचार्य प्रवर व अन्य विद्वानों ने रक्तशोधक औषधियों को ही लिया है। ज्वर हर, दाह प्रशमन, बल्लीपंचमूल गण भी इसी औषधि समूह के अन्य पर्याय हैं।

भावप्रकाश निघंटु के अनुसार सारिवा विषघ्न एवं रक्त विकार शामक औषधि है। इसके गुण बताते हुए निघंटुकार लिखते हैं—

अग्निमांद्यारुचिश्वासकासामविषनाशनम्।
दोषत्रयारक्तप्रदरज्वरा तीसारनाशनम्॥

श्लोक से स्पष्ट है कि औषधि चिरपुरातन काल से ही विष प्रधान रोगों में प्रयुक्त होती रही है।

धन्वंतरि वनौषधि विशेषांक के अनुसार रक्त शुद्धि और धातु-परिवर्तन के लिए अनंतमूल बहुत उपयोगी है। यह औषधि रक्त के ऊपर अपना सीधा प्रभाव दिखाती है। इसके द्वारा त्वचांतर्गत रक्त वाहिनियों का विकास होता है, रक्त प्रवाह ठीक गति से होने लगता है।

Free Read/Download & Order 3000+ books authored by Yugrishi Pt. Shriram Sharma Acharya(Founder of All World Gayatri Pariwar) on all aspects of life in Hindi, Gujarati, English, Marathi & other languages at
www.vicharkrantibooks.org http://literature.awgp.org

रासायनिक संगठन—कर्नल चोपड़ा के अनुसार सारिवा की जड़ के सक्रिय पदार्थों में मुख्य हैं—एक इसेंशियल ऑइल, एक एन्जाइम और एक सैपोनिन। सारिवा मूल में लगभग ०.२२ प्रतिशत उत्पत तेल होता है। इस तेल का ८० प्रतिशत भाग एक सुगंधित एल्डीहाइड के रूप में होता है, जिसे 'पैरानेथाक्सी सेलिसिलिक एल्डीहाइड' नाम दिया गया है। यही सारिवा की मूल को तोड़ने पर पाई जाने वाली सुगंध का प्रधान कारण है। जड़ के अन्य घटक हैं—बीटा साइटो स्टीरॉल, एल्फा और बीटा एसाइरिन्स जो मुक्त व ईस्टर दोनों ही रूपों में विद्यमान होते हैं। इसके अतिरिक्त ल्यूपियोल, टेट्रासाइक्लिक ट्राई टर्पीन अल्कोहल, रेसिन अम्ल, वसा अम्ल टैनिन्स, सैपोनिन, एक ग्लाइकोसाइड व कीटोन्स भी पाए जाते हैं। एक शुद्ध कार्य सक्षम औषधि में २ प्रतिशत से अधिक कार्बनिक पदार्थ तथा ४ प्रतिशत से अधिक भस्म नहीं होना चाहिए।

आधुनिक मत एवं वैज्ञानिक प्रयोग निष्कर्ष—सारिवा को इंडियन फार्मेकोपिया से मान्यता प्राप्त औषधियों में गिना जाता है। ब्रिटिश फार्मेकोपिया में भी इसे महत्त्वपूर्ण स्थान प्राप्त है। वेल्थ ऑफ इंडिया के विद्वान लेखकों के अनुसार यह विशुद्धतः एक रक्तशोधक औषधि है। यह स्वेदजनक तथा मूत्रल भी है। इस कारण यह कुपोषण जन्य शोथ, पुरानी गठिया, पेशाब के रोगों, कुष्ठ व चर्म रोगों में लाभ करती है।

अमेरिकन औषधि (सारिवा) सरसेपेरिल्ला कही जाती है। भारतीय औषधि इससे गुणों में कहीं अधिक श्रेष्ठ है, ऐसा डॉ० नादकर्णी का अभिमत है। यह उपदंश नामक त्वचा व्याधि में दूसरी एवं तीसरी अवस्था में भी लाभकारी प्रभाव दिखाती है। जोड़ों आदि की सूजन

Free Read/Download & Order 3000+ books authored by Yugrishi Pt. Shriram Sharma Acharya(Founder of All World Gayatri Pariwar) on all aspects of life in Hindi, Gujarati, English, Marathi & other languages at
www.vicharkrantibooks.org http://literature.awgp.org

घटाती तथा मूत्र की मात्रा को तीन गुना तक कर देती है। रक्त व्यापी विष को यह मूत्र मार्ग से बाहर निकाल देती है।

होम्योपैथी में इस औषधि के मदरटिंक्चर का प्रयोग अनेक प्रकार के चर्म रोगों, उपदंश तथा रक्त दोष जन्य व्याधियों के निवारणार्थ किया जाता है। भारतीय जाति हेमीडेसमस को सरसापेरिल्ला से अधिक वरीयता दी जाती है, क्योंकि उसमें अधिक गुण जर्मन चिकित्सकों ने पाए हैं।

यूनानी मतानुसार सारिवा ठंढी और तर औषधि है। यह पेशाब का बनना बढ़ाती है, बढ़े हुए को बाहर निकालती है, पसीना लाकर रक्त का शोधन कर देती है। हकीम दलजीतसिंह के अनुसार यह जीवन की चयापचय क्रिया को बढ़ाती है। इस प्रभाव के कारण यह चर्म रोगों, फिरंग, श्वेत प्रदर, आमवात, व्रण तथा बिच्छूदंश आदि में लाभ करती है। शरीर की दुर्गंध दूर होती है और सारे शरीर में रक्त-प्रवाह बढ़ता है।

प्रयोज्य अंग—इस औषधि की जड़, जड़ की छाल का चूर्ण व ताजा रस प्रयोग किया जाता है। चूँकि इसका वीर्य उड़ने वाला तेल होता है, इसलिए इसकी जड़ों का क्वाथ नहीं बनाया जाता। क्वाथ बनाने पर सारे गुण नष्ट हो जाते हैं।

मात्रा—कल्क ५ से १० ग्राम, फांट ५० से १०० मिली लीटर तथा चूर्ण ३ से ६ ग्राम।

निर्धारणानुसार उपयोग—समस्त रक्त विकारों तथा त्वचा विकारों के लिए सारिवा एक महत्त्वपूर्ण औषधि है। ५० ग्राम औषधि को दिन में ४-५ बार विभाजित कर लिया जाए तो यह इनमें तुरंत आराम देती है। फोड़े-फुंसियों में इसका फांट प्रातः-सायं लिया जाता है। जब मूत्र की मात्रा कम हो, रंग गहरा हो व शोथ सारे शरीर पर हो तो सारिवा

Free Read/Download & Order 3000+ books authored by Yugrishi Pt. Shriram Sharma Acharya(Founder of All World Gayatri Pariwar) on all aspects of life in Hindi, Gujarati, English, Marathi & other languages at
www.vicharkrantibooks.org http://literature.awgp.org

चूर्ण को गोदुग्ध के साथ लेने पर तुरंत आराम मिलता है। सारिवा जड़ का हिमनिष्कर्ष (ठंढे जल में जड़ को रात भर भिगोकर निकाला गया सत्व) भी २ से ३ औंस प्रतिदिन दूध के साथ लेने पर तुरंत लाभ देता है।

यह रसायन और विषनाशक साथ-साथ होने के नाते उत्तम रक्तशोधक व प्रतिरोधी सामर्थ्य बढ़ाने वाला माना गया है। रक्त विकार, वातरक्त, जीर्ण आमवात, एलीफेंटासिस तथा थाइराइड ग्रंथि के गॉइटर रोगों में इस औषधि का कल्क निर्धारित मात्रा में लेने पर शीघ्र आराम देता है।

बार-बार गर्भपात होने के पीछे जो रक्त दोष मूल कारण होता है, उसमें इसके प्रयोग से तुरंत लाभ मिलता है। मुख से ग्रहण किए गए विष अथवा जीव-जंतु के काटने पर हुए संस्थानिक प्रभावों का यह नाश करता है। कुष्ठ रोग, सामान्य ज्वर तथा पीलिया रोग में भी यह लाभ पहुँचाता है।

अन्य उपयोग—बाह्य प्रयोगों में आँख की लाली आदि संक्रामक रोगों में रस डालते हैं तथा शोथ संस्थानों पर लेप करते हैं। यह अग्निदीपक पाचक है। अरुचि व अतिसार में लाभ पहुँचाती है। खाँसी सहित श्वास रोगों में यह उपयोगी है। महिलाओं के प्रदर, डी० यू० वी० (अनियमित मासिक स्राव) आदि रोगों में लाभकारी है।

सामान्यतया यह त्रिदोषनाशक है। इसे किसी भी प्रकार के ज्वर प्रधान रोगों में निवारणार्थ भी तथा जीवनीशक्ति बढ़ाने हेतु भी प्रयुक्त किया जा सकता है।



Free Read/Download & Order 3000+ books authored by Yugrishi Pt. Shriram Sharma Acharya(Founder of All World Gayatri Pariwar) on all aspects of life in Hindi, Gujarati, English, Marathi & other languages at
www.vicharkrantibooks.org http://literature.awgp.org

१५. चिरायता
सुअर्शिया चिरायता

इसे जंगलों में पाए जाने वाले तिक्त द्रव्य के रूप में होने के कारण किराततिक्त भी कहते हैं। किरात व चिरेट्टा इसके अन्य नाम हैं। चरक के अनुसार इसे तिक्त स्कंध—तृष्णा निग्रहण समूह में तथा सुश्रुत के अनुसार अरग्वध समूह में गिना जाता है।

वानस्पतिक परिचय—यह ऊँचाई पर पाया जाने वाला पौधा है। इसके क्षुप २ से ४ फीट ऊँचे एक वर्षायु या द्विवर्षायु होते हैं। यह हिमालय प्रदेश में कश्मीर से लेकर अरुणांचल तक ४ से १० हजार फीट की ऊँचाई पर होता है। नेपाल इसका मूल उत्पादक देश है। कहीं-कहीं मध्य भारत के पहाड़ी इलाकों व दक्षिण भारत के पहाड़ों पर उगाने के प्रयास किए गए हैं।

इसके कांड स्थूल आधे से डेढ़ मीटर लंबे, शाखा युक्त गोल व आगे की ओर चार कोनों वाले पीतवर्ण के होते हैं। पत्तियाँ चौड़ी भालाकार, १० सेंटीमीटर तक लंबी, ३ से ४ सेंटीमीटर चौड़ी, अग्रभाग पर नुकीली होती हैं। नीचे ये बड़ी तथा ऊपर छोटी होती चली जाती हैं।

फूल हरे पीले रंग के बीच-बीच में बैंगनी रंग से चित्रित, अनेक शाखा युक्त पुष्पदंडों पर लगते हैं। पुष्पों के बाहरी व आभ्यांतर कोष ४-४ खंड वाले होते हैं तथा प्रत्येक पर दो-दो ग्रंथियाँ होती हैं। फल लंबे गोल छोटे-छोटे एक चौथाई इंच के अंडाकार होते हैं तथा बीज बहुसंख्य, छोटे, बहुकोणीय एवं चिकने होते हैं। वर्षा ऋतु में फूल आते हैं। फल जब वर्षा के अंत तक पक जाते हैं, तब शरद ऋतु में इनका संग्रह करते हैं। इस पौधे में कोई विशेष गंध नहीं होती, परंतु स्वाद तीखा होता है।

Free Read/Download & Order 3000+ books authored by Yugrishi Pt. Shriram Sharma Acharya(Founder of All World Gayatri Pariwar) on all aspects of life in Hindi, Gujarati, English, Marathi & other languages at
www.vicharkrantibooks.org http://literature.awgp.org

पहचान, मिलावट, शुद्धाशुद्ध परीक्षा—इसका पंचांग व पुष्प प्रयुक्त होते हैं। बहुत शीघ्रता से उपलब्ध न होने के कारण इसमें मिलावट काफी होती है। पंचांग में भी प्रधानता कांड की ही होती है जो दो-तीन फीट लंबा होता है। इसकी छाल चपटी, अंदर की ओर कुछ मुड़ी हुई तथा बाहर की तरफ भूरे रंग की व अंदर से गुलाबी रंग की ही होती है। चबाने पर छाल रेशेदार, कुरकुरी, कसैली मालूम पड़ती है। छाल के अंदर की तरफ सूक्ष्म रेखाएँ खिंची होती हैं।

सुअर्सिया चिरायता की कई प्रजातियों का प्रयोग मिलावट में पंसारीगण करते हैं। इनमें कुछ हैं—मीठा या पहाड़ी चिरायता (सुअर्सिया अंगस्टीफोलिया), सुअर्शिया अलाटा, बाईमैकुलाटा, सिलिएटा, डेन्सीफोलिया, लाबी माईनर, पैनीकुलैटा। इसके अतिरिक्त चिरायता में कालमेघ (एण्ड्रोग्राफिस पैनिकुलैटा) तथा मंजिष्ठा (रुविया कॉडियाफोलिया) की भी मिलावट की जाती है। कालमेघ को हरा चिरायता नाम भी दिया गया है। इनकी पहचान करने का एक ही तरीका है कि दीखने में एक से होते हुए भी शेष स्वाद में अर्द्ध तिक्त या मीठे होते हैं। छाल के अंदर की बनावट को ध्यान से देखकर भेद किया जा सकता है। अनुप्रस्थ काट पर मज्जा का भाग स्पष्ट दिखाई देता है। यह कोमल होता है, आसानी से पृथक हो जाता है। शेष परीक्षण रासायनिक विश्लेषण के आधार पर किया जाता है। जिसके अनुसार तिक्त सत्व कम से कम १.३ प्रतिशत होना चाहिए।

मीठे चिरायते का तना आयताकार होता है तथा असली चिरायते की तुलना में मज्जा का भाग अपेक्षाकृत कम होता है। शेष सभी मिलाकर औषधियों को उनके विशिष्ट लक्षणों द्वारा पहचाना जा सकता है।

Free Read/Download & Order 3000+ books authored by Yugrishi Pt. Shriram Sharma Acharya(Founder of All World Gayatri Pariwar) on all aspects of life in Hindi, Gujarati, English, Marathi & other languages at
www.vicharkrantibooks.org http://literature.awgp.org

संग्रह-संरक्षण कालावधि—पौधे को औषधि प्रयोजन हेतु फल के पूर्ण रूप से पकने पर शरद ऋतु में एकत्रित करते हैं। ऐसा संग्रहीत चिरायता एक वर्ष तक प्रयुक्त हो सकता है। चिरायते की छाल को सुखाकर अनार्द्र शीतल स्थानों में बंद डिब्बों में रखा जाता है।

गुण-कर्म संबंधी विभिन्न मत—इसे लगभग सभी विद्वानों ने सन्निपात ज्वर, व्रण, रक्त दोषों की सर्वश्रेष्ठ औषधि माना है। भावप्रकाश निघंटुकार लिखता है—

किरातः सारको रक्षोऽशीतलस्तिक्तको लघुः।
सन्निपातज्वरश्वास कफ पित्तास्रदाहनुत्॥
कासशोथतृषाकुष्ठज्वरव्रणकृमिप्रणुत् ॥

इस प्रकार यह एक प्रकार की प्रतिसंक्रामक औषधि है, जो ज्वर उत्पन्न करने वाले मूल कारणों का निवारण करती है। इसी प्रकार यह तीखेपन के कारण कफ, पित्त शामक तथा उष्ण वीर्य होने से वातशामक है। इन सभी दोषों के कारण उत्पन्न किसी भी संक्रमण से यह मोर्चा लेता है। कोढ़, कृमि तथा व्रणों को मिटाता है।

वनौषधि चंद्रोदय के विद्वान लेखक के अनुसार जीर्ण विषम ज्वर अपना स्वरूप बहुधा ज्वर रूप में प्रकट नहीं करता, अपितु अजीर्ण, अग्निमंदता और हलके तापक्रम में वृद्धि के रूप में ही दिखाई देता है। इन लक्षणों को समूल नष्ट करने में चिरायता अत्यंत उपयोगी है। चिरायते का ज्वरघ्न प्रभाव अत्यंत मृदु होता है।

'वेल्थ ऑफ इंडिया' के विद्वान वैज्ञानिकों के अनुसार चिरायता एक ऐसा गंधहीन कडुवा पदार्थ है, जिसमें कषायता (एस्ट्रिन्जेन्सी) बहुत कम है। एलोपैथी सिद्धांत के अंतर्गत यह काफी समय तक ब्रिटिश और अमेरिकन फार्मेकोपिया की एक महत्त्वपूर्ण औषधि रही। इंडियन फार्मेकोपिया (आई० पी०) में भी इसे एक ज्वरनिवारक पदार्थ के नाते

Free Read/Download & Order 3000+ books authored by Yugrishi Pt. Shriram Sharma Acharya(Founder of All World Gayatri Pariwar) on all aspects of life in Hindi, Gujarati, English, Marathi & other languages at
www.vicharkrantibooks.org http://literature.awgp.org

स्थान मिला। जीर्ण ज्वरों में भारत में काफी समय से अनेकों योगों और विधियों के रूप में इसका चूर्ण, क्वाथ, टिंक्चर सभी प्रयुक्त होते रहे हैं।

कर्नल चोपड़ा ने अपने ग्रंथ 'मेडीसिनल प्लांट्स ऑफ इंडिया' में इसे एक उत्तम प्रति संक्रामक (एंटी बायोटिक) ज्वरघ्न, जीवनीशक्ति वर्द्धक तथा जीवाणु-कृमिनाशक माना है। डॉ० शरतचंद्र घोष के अनुसार यह टाइफाइड ज्वरों और बीच-बीच में ठहरकर आने वाले इंटरमीटेंट फीवर्स में बहुत उपयोगी है। उनके अनुसार यह वैद्यों की आजमायी एक श्रेष्ठ दवा है।

रासायनिक संगठन—चिरायते में पीले रंग का एक कड़ुवा अम्ल-ओफेलिक एसिड होता है। इस अम्ल के अतिरिक्त अन्य जैव सक्रिय संघटक हैं। दो प्रकार के कड़ुवे ग्लाइकोसाइड्स चिरायनिन और एमेरोजेंटिन, दो क्रिस्टलीयफिनॉल, जेंटीयोपीक्रीन नामक पीले रंग का एक न्यूट्रल क्रिस्टल यौगिक तथा एक नए प्रकार का जैंथोन जिसे 'सुअर्चिरिन' नाम दिया गया है।

एमेरोजेंटिन नामक ग्लाइकोसाइड विश्व के सर्वाधिक कड़वे पदार्थों में से एक है। इसका कड़वापन एक करोड़ चालीस लाख में एक भाग की नगण्य सी सांद्रता पर भी अनुभव होता रहता है। यह सक्रिय घटक ही चिरायते की औषधीय क्षमता का प्रमुख कारण भी है। इंडियन फार्मेकोपिया द्वारा निर्धारित मानकों के अनुसार चिरायते में तिक्त घटक १.३ प्रतिशत होना चाहिए। इसके द्रव्य गुण पक्ष पर लिखे शोध प्रबंध में बी० एच० यू० के डॉ० प्रेमव्रत शर्मा ने इसके रासायनिक संघटकों में से प्रत्येक के गुण-धर्मों व उनके प्रायोगिक प्रभावों पर विस्तार से प्रकाश डाला है।

आधुनिक मत—एलोपैथी, आयुर्वेद, होम्योपैथी और यूनानी सभी ने एक स्वर से इसके ज्वरघ्न प्रभावों की प्रशंसा की है। एलोपैथी

Free Read/Download & Order 3000+ books authored by Yugrishi Pt. Shriram Sharma Acharya(Founder of All World Gayatri Pariwar) on all aspects of life in Hindi, Gujarati, English, Marathi & other languages at
www.vicharkrantibooks.org http://literature.awgp.org

में एंटीबायोटिक्स की बाढ़ आ जाने पर भी चिरायते की हानिरहित विशेषताओं को अभी तक कोई चुनौती नहीं दे पाया है। 'सिनकोना' की तरह ही यह मलेरिया ज्वर पर प्रभाव डालती है तथा यकृत एवं रक्त से इसके पेरासाइट्स को निकाल बाहर करती है। अन्य रासायनिक एंटी मलेरियल लेने के बाद जो कमजोरी आती है, वह इसको ग्रहण करने पर अनुभव नहीं होती। इसका कारण बताते हुए डॉ० खोरी कहते हैं कि यह मूलतः इसके शरीर की जीवाणुरोधी शक्ति बढ़ाने वाली सामर्थ्य के कारण है न कि मारक प्रभावों के कारण। श्री खगेंद्रनाथ वसु के अनुसार प्रातःकाल खाली पेट लिया गया चिरायते का काढ़ा या चूर्ण या चिरायता भिगाया जल मिसरी के साथ लेने से उदरस्थ कृमि तुरंत समाप्त हो जाते हैं। एक माह तक ऐसा करने पर कुष्ठ रोग भी समूल नष्ट हो जाता है।

डॉ० प्रसाद बनर्जी की 'मटेरिया मेडीका ऑफ इंडियन ड्रग्स' के अनुसार चिरायता इन्फ्लुएंजा, मलेरिया और टॉयफाइड जैसे अलग-अलग कारणों से होने वाले ज्वरों में समान रूप से लाभकारी है।

होम्योपैथी में चिरायते की उपयोगिता ज्वर निवारण हेतु सर्वप्रथम डॉ० कालीकुमार भट्टाचार्य जी ने प्रतिपादित की। श्री घोष अपनी पुस्तक 'ड्रग्स ऑफ हिंदुस्तान' में लिखते हैं कि चिरायता नए (एक्यूट) और पुराने (क्रॉनिक) दोनों ही प्रकार के ज्वरों को मिटाता है। नए वे जो विषाणु या मलेरिया पेरासाइटजन्य होते हैं। पुराने जीर्ण ज्वर बहुधा कमजोर लोगों में जड़ जमाए बैठे घातक जीवाणुओं के कारण होते हैं। आँखों में जलन के साथ दोपहर के बाद चढ़ने वाले तेज बुखार के लिए होम्योपैथी वैद्य चिरायता ही प्रयुक्त करते हैं।

कालाजार नामक जीर्ण ज्वर रोग में जिसमें लीवर तथा स्प्लीन दोनों बढ़ जाते हैं, चिरायता चमत्कारी प्रभाव दिखाता है। इसका मदर टिंक्चर एक और तीन एक्स की पोटेंसी में होम्योपैथी में प्रयुक्त होता है।

Free Read/Download & Order 3000+ books authored by Yugrishi Pt. Shriram Sharma Acharya(Founder of All World Gayatri Pariwar) on all aspects of life in Hindi, Gujarati, English, Marathi & other languages at
www.vicharkrantibooks.org http://literature.awgp.org

यूनानी में चिरायता को दूसरे दर्जे में गरम और खुश्क माना गया है। इसका ज्वर निवारक के रूप में उपयोग प्रसिद्ध है। विशेषकर यह पुराने ज्वरों में लाभ करता है। हकीम दलजीत सिंह के अनुसार जीर्ण ज्वर के साथ अपच व शरीर में दाह हो तथा ज्वर कम होते हुए भी सामान्य को कभी न छूता हो चिरायता तुरंत लाभ करता है।

ग्राह्य अंग—इसका पंचांग व पुष्प प्रयुक्त होते हैं फिर भी जड़कांड सर्वाधिक गुणयुक्त होते हैं। इसका क्वाथ या चूर्ण किसी मधुर वाहक के साथ अनुपान भेदानुसार लेते हैं।

मात्रा—क्वाथ ५० से १०० मिलीलीटर दिन में दो बार विभाजित कर। चूर्ण एक से तीन ग्राम।

उपयोग—ज्वर निवारण हेतु ३ ग्राम चिरायता २० ग्राम जल में भिगोकर, रात-भर रखकर प्रातः छान लेते हैं तथा ५ ग्राम दिन में दो बार मधु के साथ लेते हैं। चिरायता का फांट भी सामान्य दुर्बलता निवारण हेतु अन्य औषधियों के अलावा क्षुधावृद्धि तथा आहार पाक हेतु दिया जाता है।

चिरायते का काढ़ा एक सेर औंस की मात्रा में मलेरिया ज्वर में तुरंत लाभ पहुँचाता है। लीवर प्लीहा पर इसका प्रभाव सीधा पड़ता है व ज्वर मिटाकर यह दौर्बल्य को भी दूर करता है। कृमि रोग, कुष्ठ, वैसीलिमिया, वायरीमिया सभी में इसकी क्रिया तुरंत होती है। यह त्रिदोष निवारक है। अतः बिना किसी ननुनच के प्रयुक्त हो सकता है।

अन्य उपयोग—संस्थानिक बाह्य उपयोग के रूप में यह व्रणों को धोने, अग्निमंदता, अजीर्ण, यकृत विकारों में आंतरिक प्रयोगों के रूप में, रक्त विकार, उदर तथा रक्त कृमियों के निवारणार्थ, शोथ एवं ज्वर के बाद की दुर्बलता हेतु भी प्रयुक्त होता है। इसे एक उत्तम सात्मीकरण स्थापित करने वाला टॉनिक भी माना गया है।



Free Read/Download & Order 3000+ books authored by Yugrishi Pt. Shriram Sharma Acharya(Founder of All World Gayatri Pariwar) on all aspects of life in Hindi, Gujarati, English, Marathi & other languages at
www.vicharkrantibooks.org http://literature.awgp.org

१६. गिलोय
टीनोस्पोरा कार्डीफोलिया

यह एक बहुवर्षायु आरोहिणी लता है, जो समस्त भारतवर्ष में पाई जाती है। इसे गुडूची, अमृता, मधुपर्णी, तंत्रिका, कुंडलिनी जैसे नाम भी दिए गए हैं। भावप्रकाश निघंटुकार के अनुसार—'**ततो येषु प्रदेशेषु कपिगात्रात् परिच्युताः। पीयूषबिन्दवः पेतुस्तेभ्यो जाता गुडूचिका**'॥ अर्थात बहुवर्षायु तथा अमृत के समान गुणकारी होने से इसका नाम अमृता है। आयुर्वेद साहित्य में इसे ज्वर की महान औषधि माना गया है एवं जीवंतिका नाम दिया गया है।

वानस्पतिक परिचय—गिलोय की लता जंगलों, खेतों की मेड़ों, पहाड़ों की चट्टानों आदि स्थानों पर सामान्यतया कुंडलाकार चढ़ती पाई जाती है। नीम, आम्र के वृक्ष के आस-पास भी यह मिलती है। जिस वृक्ष को यह अपना आधार बनाती है, उसके गुण भी इसमें समाहित रहते हैं। इस दृष्टि से नीम पर चढ़ी गिलोय श्रेष्ठ औषधि मानी जाती है। इसका कांड छोटी उँगली से लेकर अँगूठे जितना मोटा होता है। बहुत पुरानी गिलोय में यह बाहु जैसा मोटा भी हो सकता है। इसमें स्थान-स्थान पर जड़ें निकलकर नीचे की ओर झूलती रहती हैं। चट्टानों अथवा खेतों की मेड़ों पर जड़ें जमीन में घुसकर अन्य लताओं को जन्म देती हैं। बेल के कांड की ऊपरी छाल बहुत पतली, भूरे या धूसर वर्ण की होती है, जिसे हटा देने पर भीतर का हरित मांसल भाग दिखाई देने लगता है। काटने पर अंतर्भाग चक्राकार दिखाई पड़ता है।

पत्ते हृदय के आकार के खाने के पान जैसे एकांतर क्रम में व्यवस्थित होते हैं। ये लगभग २ से ४ इंच तक व्यास के होते हैं।

Free Read/Download & Order 3000+ books authored by Yugrishi Pt. Shriram Sharma Acharya(Founder of All World Gayatri Pariwar) on all aspects of life in Hindi, Gujarati, English, Marathi & other languages at
www.vicharkrantibooks.org http://literature.awgp.org

स्निग्ध होते हैं तथा इनमें ७ से ९ नाड़ियाँ होती हैं। पत्र-डंठल लगभग १ से ३ इंच लंबा होता है। फूल ग्रीष्म ऋतु में छोटे-छोटे पीले रंग के गुच्छों में आते हैं। फल भी गुच्छों में ही लगते हैं तथा छोटे मटर के आकार के होते हैं। पकने पर ये रक्त के समान लाल हो जाते हैं। बीज सफेद, चिकने, कुछ टेढ़े, मिर्च के दानों के समान होते हैं। उपयोगी अंग कांड है। पत्ते भी प्रयुक्त होते हैं।

पहचान, मिलावट, सावधानियाँ— ताजे कांड की छाल हरे रंग की तथा गूदेदार होती है। उसकी बाहरी त्वचा हलके भूरे रंग की होती है, पतली कागज की पत्तों के रूप में छूटती है। स्थान-स्थान पर गाँठ के समान उभार पाए जाते हैं। सूखने पर यही कांड पतला हो जाता है। सूखे कांड के छोटे-बड़े टुकड़े बाजार में पाए जाते हैं, जो बेलनाकार लगभग १ इंच व्यास के होते हैं। इन पर से छाल काष्ठीय भाग से आसानी से पृथक की जा सकती है। स्वाद में यह तीखी होती है, पर गंध कोई विशेष नहीं होती। पहचान के लिए एक साधारण सा परीक्षण यह है कि इसके क्वाथ में जब आयोडीन का घोल डाला जाता है तो गहरा नीला रंग हो जाता है। यह इसमें स्टार्च की उपस्थिति का परिचायक है। सामान्यतया इसमें मिलावट कम ही होती है, पर सही पहचान अनिवार्य है। कंद गुडूची व एक असामी प्रजाति इसकी अन्य जातियों की औषधियाँ हैं, जिनके गुण अलग-अलग होते हैं।

संग्रहण संरक्षण कालावधि—यथासंभव ताजी औषधि का प्रयोग करना चाहिए। ताजी औषधि का वीर्य जितना गुणकारी होता है उतना संग्रहीत का नहीं। पर यदि संग्रह करना ही पड़े तो वर्षा आगमन के पूर्व गरमी में इसे छाया में सुखाकर बाह्य त्वचा निकालकर छोटे-छोटे टुकड़े कर लें और वायु धूल रहित सूखे स्थानों पर मुँह बंद पात्रों में रखें। इस प्रकार संग्रहीत औषधि अधिकतम ३ माह तक प्रयुक्त की

Free Read/Download & Order 3000+ books authored by Yugrishi Pt. Shriram Sharma Acharya(Founder of All World Gayatri Pariwar) on all aspects of life in Hindi, Gujarati, English, Marathi & other languages at
www.vicharkrantibooks.org http://literature.awgp.org

जा सकती है। घनसत्व को भी सुखाकर चूर्ण रूप में रखते हैं, परंतु औषधि सामर्थ्य उसमें कितनी होती है, यह विवादास्पद प्रश्न है। ताजे घनसत्व के विषय में तो कोई विवाद नहीं।

गुण-कर्म संबंधी विभिन्न मत—आचार्य चरक ने इसे मुख्यतः वात हर माना है, जबकि बाद के कई वैद्यगण इसे त्रिदोषहर, रक्त-शोधक, प्रतिसंक्रामक, ज्वरघ्न मानते हैं। विभिन्न अनुपानों के प्रयोग से यह सभी दोषों का शमन कर रक्त शुद्धि करती है, ऐसा माना जाता है। चरक मुनि कहते हैं—

अमृता सांग्राहिका वातहरदीपनीया,
श्लेष्मशोणितविबंधप्रशमनानाम्   ।

—च. सू. २५

जबकि राज निघंटुकार के अनुसार यह ज्वरनाशिनी है एवं एक उत्तम रसायन के नाते दोष मिटाकर सात्मीकरण लाने वाली औषधि है। इसके अतिरिक्त यह दाह, तृष्णा, अम्लपित्त, प्रमेह, पांडु आदि रोगों का शमन करती है। श्री चक्रदत्त के अनुसार यह ज्वर, कुष्ठ एवं श्लीपद (एलिफेंटिएसिस) की श्रेष्ठ औषधि है। वाग्भट्ट के अनुसार यह प्रमेह, मधुमेह तथा सुजाक की अचूक दवा है।

श्री भाव मिश्र के अनुसार गुडूची एक रसायन एवं शोधक है, जो जरा को कभी समीप नहीं आने देती। यह अग्नि दीपक है, पांडुरोग तथा जीर्णकास निवारक है, किसी भी प्रकार के ज्वर को समूल नष्ट करती है तथा कुष्ठ रोग का निवारण व कृमियों को मारने का कार्य करती है।

वैद्यराज श्री गंगासहाय पांडेय का मत है कि इस औषधि का व्याधि प्रतिकारी गुण एक सर्वविदित प्रामाणिक तथ्य है। किसी भी प्रकार के रोगाणु पालने वाले पुराने रोगी अंग (यथा अस्थि, फेफड़े,

Free Read/Download & Order 3000+ books authored by Yugrishi Pt. Shriram Sharma Acharya(Founder of All World Gayatri Pariwar) on all aspects of life in Hindi, Gujarati, English, Marathi & other languages at
www.vicharkrantibooks.org   http://literature.awgp.org

आँतें क्रानिक सेप्टिक फोकस) से जन्म लेने वाले रक्त विकार, जीर्ण विषम ज्वर तथा यकृत की कार्यहीनता जैसी असाध्य स्थितियों में यह चमत्कारी लाभ दिखाती व रोगी को स्वस्थ करती है।

श्री नादकर्णी के अनुसार यह औषधि एंटीपिरीयाडिक है अर्थात बार-बार आने वाले ज्वर के चक्र को तोड़ती व समूल नष्ट करती है। इसे एक प्रकार की 'भारतीय कुनैन' कहते हैं। 'वेल्थ ऑफ इंडिया' ग्रंथ के अनुसार गिलोय मूल का क्वाथ कोढ़ रोग की अचूक औषधि है। श्री घोष के अनुसार यह एंटीपिरीयाडिक होने के साथ-साथ बुखार के साथ आने वाली कमजोरी को भी समूल नष्ट करती है। यह बढ़ती हुई तिल्ली एवं सिफलिस जैसे गंभीर रोग की अंतिम अवस्था की एक मात्र सिद्ध औषधि है।

श्री डीमॉक, कर्नल चोपड़ा, डॉ० सान्याल एवं घोषाल भी यही मत व्यक्त करते हैं कि जीर्ण ज्वर और उलट-पलटकर आने वाले मलेरिया, कालाजार जैसे रोगों की यह उत्तम औषधि है। मलेरिया ज्वर में यह कुनैन से होने वाली विकृतियों को रोकती पाई गई है। टाइफायड जैसे जीर्ण मौलिक ज्वर में इसका प्रभाव आश्चर्यजनक है। ज्वर तो मिटता ही है, रोगी में शक्ति का संचार भी तेजी से होता है। क्षय रोग के रोगी भी इससे लाभ पाते देखे गए हैं। ज्वर का वेग घटता है, खाँसी मिटती है तथा रोगाणु जड़ जमा नहीं पाते।

होम्योपैथी में बार-बार आने वाले ज्वरों, कोढ़ , सुजाक तथा पेशाब के संक्रमण हेतु गिलोय का मदर टिंक्चर, एक, तीन व छह एक्स की पोटेन्सी में प्रयुक्त होता है। अधिक कुनैन या क्लोरोक्वीन संबंधित समूह की औषधि खाने से कुछ दुष्प्रभाव भी रोगी में हों तो वे इसके सेवन से तुरंत मिटते हैं।

Free Read/Download & Order 3000+ books authored by Yugrishi Pt. Shriram Sharma Acharya(Founder of All World Gayatri Pariwar) on all aspects of life in Hindi, Gujarati, English, Marathi & other languages at
www.vicharkrantibooks.org http://literature.awgp.org

यूनानी चिकित्सा पद्धति में गिलोय को गरम एवं खुश्क माना गया है। यह ज्वरनाशक है तथा ज्वर के समस्त भेदों यहाँ तक कि राजयक्ष्मा व कुष्ठ, फिरंग, सिफलिस में भी सफलता से काम करती है। तिक्त होने के कारण यह पेट के कीड़ों को भी मारती है।

रासायनिक संगठन—गिलोय के कांड में लगभग १.२ प्रतिशत स्टार्च के अतिरिक्त अनेकों कड़ुए जैव सक्रिय संघटक पाए गए हैं। अब इस पर विशद शोध कार्य चल ही रहा है। अनेक अध्येताओं के निष्कर्ष के आधार पर कहा जा सकता है गिलोय में—(१) गिलोइन नामक एक कड़ुआ ग्लूकोसाइड होता है। (२) तीन प्रकार के एल्केलाइड होते हैं, जिनमें से एक प्रमुख है—बरबेरीन (३) विविध संघटकों गिलोइनिन, कैस्मेन्थिन, पामारिन, टीनोस्पोरान, टीनोस्पोरिक एसिड नामक जैव सक्रिय पदार्थ है। पृथक-पृथक इनका कार्य क्या होता है? इस पर जैव प्रयोग अभी चल ही रहे हैं। (४) एक वसा एल्कोहल ग्लिस्टोरौल, एक एसेंशियल ऑइल, कई प्रकार के वसा अम्ल। गिलोय की पत्तियों में प्रचुर मात्रा में कैल्शियम, फास्फोरस व प्रोटीन पाए गए हैं। इनमें भी बल्य व रसायन क्षमता वैज्ञानिकों ने अच्छी पाई है। गिलोय कांड के घनसत्व में जो स्टार्च होता है वह ताजे में ०.४२ प्रतिशत से लेकर सूखे में १.२ प्रतिशत होता है। सक्रिय संघटकों में बरबेरियन तथा गिलाइन का नाम प्रमुख है।

आधुनिक मत एवं वैज्ञानिक प्रयोग निष्कर्ष—गिलोय की रोगाणुनाशी क्षमताओं पर बड़े विशाल स्तर पर प्रयोग हुए हैं। वैज्ञानिकों के अनुसार सूक्ष्मतम विषाणु समूह से लेकर स्थूल कृमियों तक इसका प्रभाव होता है। 'इंडियन जनरल ऑफ एक्सपेरीमेंटल बायोलॉजी' (६,२४५,१९६८) के अनुसार प्रायोगिक परीक्षणों में पाया गया कि वायरस पर गिलोय का घातक प्रभाव होता है।

Free Read/Download & Order 3000+ books authored by Yugrishi Pt. Shriram Sharma Acharya(Founder of All World Gayatri Pariwar) on all aspects of life in Hindi, Gujarati, English, Marathi & other languages at
www.vicharkrantibooks.org http://literature.awgp.org

क्षय रोग उत्पन्न करने वाले 'माइक्रोवैक्टीरियम ट्यूबरकुलोसिस' जीवाणु की वृद्धि को यह सफलतापूर्वक रोकती है। जहाँ भी जिस स्थान पर शांत स्थिति में यह जीवाणु पड़ा हो व रोगी की प्रतिरोध सामर्थ्य के कम होने की प्रतीक्षा कर रहा हो, यह रक्त मार्ग से पहुँचकर उनका नाश करती है। उनके 'सिस्ट' बनाने की क्रिया में व्यवधान डालती है। एस्केरेशिया कोलाई नामक रोगाणु जो मूत्रवाही संस्थान तथा आंत्र संस्थान को ही नहीं, सारे शरीर को प्रभावित करता है, यह जड़ से नष्ट कर देती है।

अन्य अध्ययनों से गिलोय में सोडियम सेलिसिलेट की तुलना में अधिक दरद निवारक गुण पाया गया है। इसके जल निष्कर्ष का 'फेगोसिटिक इंडेक्स' काफी अधिक पाया गया है अर्थात रक्त के जीवाणुभक्षी कोशों की तरह इसके सूक्ष्म घटक भी आयोनिक गति से रोगाणुओं पर आक्रमण कर उन्हें नष्ट करने की सामर्थ्य रखते हैं।

प्रयोगात्मक जीवों में गिलोय का रक्त प्रभाव शर्करा को कम कर देने का होता है। ग्लूकोस टौलरैन्स तथा एड्रीनेलिन जन्य हाइपर ग्लाईसीमिया में इसका लाभप्रद परिणाम तुरंत दिखाई देता है। यह शरीर में इन्सुलिन की उत्पत्ति व रक्त में उसकी घुलनशीलता ग्लूकोस जलाने की क्षमता को बढ़ाती है। इससे रक्त शर्करा घटती है। रक्त शर्करा घटाकर गिलोय अपनी एंटीबायोटिक सामर्थ्य की छाप डाल देती है। यह एक स्मरणीय तथ्य है कि बल्ड शुगर बढ़ने से ही सभी प्रकार के संक्रमणों की दर बढ़ती है। इसकी इस क्षमता पर वैज्ञानिकों को आश्चर्य भी है और इस पर अनुसंधान कार्य भी चल रहा है, परंतु शास्त्रोक्त प्रतिपादन तो पहले से ही गुडूची की समग्र शरीर शोधन चयापचय संतुलन-प्रक्रिया में सटीक भूमिका से भरे हुए हैं।

Free Read/Download & Order 3000+ books authored by Yugrishi Pt. Shriram Sharma Acharya(Founder of All World Gayatri Pariwar) on all aspects of life in Hindi, Gujarati, English, Marathi & other languages at
www.vicharkrantibooks.org http://literature.awgp.org

ग्राह्य अंग—कांड, जड़ व पत्र। कांड ही सामान्यतया प्रयुक्त होते हैं और जहाँ तक संभव हो ताजा ही प्रयुक्त होते हैं। गिलोय का घनसत्व भी प्रयुक्त होता है। इसे तैयार करने की विधि इस प्रकार है—हो सके तो नीम पर चढ़ी हुई, नहीं तो सामान्य गिलोय बेल जो ताजा, रसदार, चमकीली हो, लेकर उसके एक या दो-दो इंच के टुकड़े कर लें। उन टुकड़ों को पत्थर से कुचल कर एक साफ बरतन में (काँच या मिट्टी का) पानी के अंदर गला दें। चार घंटे पश्चात उन्हें हाथों में मल-मल कर बाहर निकालकर फेंक दें। पानी को कपड़े से छानकर ३-४ घंटे पड़ा रहने दें, जिससे गिलोय सत्व बरतन की पेंदी में जम जाए। धीरे-धीरे उस पानी को दूसरे बरतन में निकाल लें और नीचे जो सफेद रंग का सत्व जमा हो उसे निकालकर धूप में सुखा लें। यह मटमैला रंग का पदार्थ ही गिलोय घनसत्व है। इसे लगभग तीन माह तक प्रयुक्त कर सकते हैं।

मात्रा—क्वाथ ५० से १०० मिली लीटर (लगभग डेढ़ से तीन औंस)। चूर्ण तीन से छह ग्राम एक बार में। सत्व एक से दो ग्राम एक बार में। ताजा स्वरस १० से २० ग्राम तक।

निर्धारणानुसार प्रयोग—जीर्ण ज्वर या ६ दिन से भी अधिक समय से चले आ रहे न टूटने वाले ज्वरों में गिलोय चालीस ग्राम अच्छी तरह कुचलकर मिट्टी के बरतन में पाव भर पानी में मिलाकर रात भर ढककर रखते हैं व प्रातः मसलकर छान लेते हैं। ८० ग्राम की मात्रा दिन में तीन बार पीने से जीर्ण ज्वर नष्ट हो जाता है। ऐसे असाध्य ज्वरों में, जिसके कारण का पता सारे प्रयोग-परीक्षणों के बाद भी नहीं चल पाता (पायरेक्सिया ऑफ अननोन ऑरीजन) को समूल नष्ट करने का बीड़ा गिलोय ही उठाती है। एक पाव गिलोय ८ सेर जल में पकाकर आधा अवशेष जल देने पर ज्वर दूर होता है व जीवनीशक्ति बढ़ती है।

ज्वर निवारण के अतिरिक्त किसी भी लंबी व्याधि के बाद हुई दुर्बलता को मिटाने के लिए भी रसायन के तौर पर गिलोय प्रयुक्त होती

Free Read/Download & Order 3000+ books authored by Yugrishi Pt. Shriram Sharma Acharya(Founder of All World Gayatri Pariwar) on all aspects of life in Hindi, Gujarati, English, Marathi & other languages at
www.vicharkrantibooks.org http://literature.awgp.org

है। शहद के साथ १०० ग्राम गिलोय १६ गुने पानी में पकाकर क्वाथ रूप में बनाई गई, जब सुबह-शाम एक से दो औंस की मात्रा में दी जाती है तो कमजोरी मिटती है और नवीन शक्ति का संचार होता है। गिलोय को कायाकल्प योग की एक महत्त्वपूर्ण औषधि माना गया है। भावप्रकाश निघंटुकार लिखता है कि अमृता के निरंतर प्रयोग से न कभी व्याधि समीप आती है और न जरा सताती है। ऐसे कई उदाहरण मिलते हैं, जिनमें अमृता के निरंतर प्रयोग द्वारा व्यक्तियों ने दीर्घायु का वरदान पाया।

पुनरावर्त्तक ज्वर में गिलोय मूल का चूर्ण, पीलिया में गिलोय पत्र का चूर्ण या स्वरस एवं वमन सहित ज्वर में गिलोय घनसत्व मधु के साथ देते हैं। मिसरी के साथ देने पर गिलोय पित्त के प्रकोप को शांत करती है।

कुष्ठ, एलर्जी के शरीरव्यापी आक्रमण, सभी प्रकार के त्वचा विकारों में गिलोय का प्रयोग बताया गया है। इसके अलावा विषाणु जीवाणुजन्य आंत्रशोथ, संग्रहणी तथा कृमि रोगों में भी गिलोय लाभ करती है।

अन्य उपयोग—यह घी के साथ वात, शर्करा अथवा मिसरी के साथ पित्त तथा मधु के साक्ष कफ विकारों में प्रयुक्त होती है व तीनों दोषों को मिटाती है, ऐसा धन्वंतरि निघंटुकार का मत मिलता है। गुडूची सिद्ध तेल का प्रयोग त्वचा रोगों में बाह्य प्रयोगों के रूप में किया जाता है। अग्निमंदता, वायु शूल, यकृत विकार, अम्ल पित्त आदि में इसका प्रयोग सफलता से होता है। यह खाँसी में भी लाभ देने लगता है। हृदय की दुर्बलता, लो ब्लडप्रेशर, रक्त विकारों में भी यह प्रयुक्त होती है। इसे रसायन के रूप में शुक्रहीनता, दौर्बल्य में भी प्रयोग करते हैं व ऐसा कहा जाता है कि यह शुक्राणुओं के बनने की और उनके सक्रिय होने की प्रक्रिया को बढ़ाती है। इस प्रकार यह औषधि एक समग्र कायाकल्प योग है—शोधक भी तथा शक्तिवर्द्धक भी।



Free Read/Download & Order 3000+ books authored by Yugrishi Pt. Shriram Sharma Acharya(Founder of All World Gayatri Pariwar) on all aspects of life in Hindi, Gujarati, English, Marathi & other languages at
www.vicharkrantibooks.org http://literature.awgp.org

१७. अशोक

साराका इंडिका या जोनेसिया अशोका

जिस वृक्ष के नीचे बैठने से शोक नहीं होता उसे अशोक कहते हैं अथवा जो स्त्रियों के समस्त शोकों को दूर भगाता है, वह वृक्ष दिव्य औषधि अशोक ही है, ऐसा मत है। इसे हेमपुष्प (स्वर्ण वर्ण के फूलों से लदा) तथा ताम्रपल्लव नाम से भी संस्कृत में पुकारते हैं।

वानस्पतिक परिचय—इसका सदा हरित वृक्ष आम के समान २५ से ३० फीट तक ऊँचा, बहुत सी शाखाओं से युक्त घना व छायादार होता है। देखने में यह मौलश्री के पेड़ जैसा लगता है, परंतु ऊँचाई में उससे छोटा ही होता है। तना कुछ लालिमा लिए भूरे रंग का होता है। यह वृक्ष सारे भारत में पाया जाता है।

इसके पल्लव ९ इंच लंबे, गोल व नोंकदार होते हैं। यह साधारण डंठल के व दोनों ओर ५-६ जोड़ों में लगते हैं। कोमल अवस्था में इनका वर्ण श्वेताभ लाल फिर गहरा हरा हो जाता है। पत्ते सूखने पर लाल हो जाते हैं। फल वसंत ऋतु में आते हैं। पहले कुछ नारंगी, फिर क्रमशः लाल हो जाते हैं। ये वर्षा काल तक ही रहते हैं।

अशोक वृक्ष की फलियाँ ८ से १० इंच लंबी चपटी, १ से २ इंच चौड़ी दोनों सिरों पर कुछ टेढ़ी होती हैं, ये ज्येष्ठ माह में लगती हैं। प्रत्येक में ४ से १० की संख्या में बीज होते हैं। जामुनी प्रारंभ में व पकने पर काले वर्ण की ये होती हैं। बीज के ऊपर की पपड़ी रक्ताभ वर्ण की, चमड़े के सदृश मोटी होती है।

औषधीय प्रयोजन में छाल (त्वक), पुष्प व बीज प्रयुक्त होते हैं। असली अशोक व सीता अशोक, पेंडुलर ड्रपिंग अशोक जैसी मात्र

Free Read/Download & Order 3000+ books authored by Yugrishi Pt. Shriram Sharma Acharya(Founder of All World Gayatri Pariwar) on all aspects of life in Hindi, Gujarati, English, Marathi & other languages at
www.vicharkrantibooks.org http://literature.awgp.org

बगीचों में शोभा देने वाली जातियों में औषधि की दृष्टि से भारी अंतर होता है। छाल इस दृष्टि से सही प्रयुक्त हो यह अनिवार्य है। असली अशोक की छाल बाहर से शुभ्र धूसर, स्पर्श करने से खुरदरी और अंदर से रक्त वर्ण की होती है। यह स्वाद में कड़वी होती है। मिलावट के बतौर कहीं-कहीं आम के पत्तों वाले अशोक (आर्नामिटल) का भी प्रयोग होता है, पर यह वास्तविक अशोक नहीं है।

संग्रहण संरक्षण—औषधि प्रयोजनार्थ अशोक वृक्ष के तने की छाल पौष या माघ माह में एकत्र कर उसे शुष्क शीत वायु में सुरक्षित रखते हैं। एक वर्ष तक शुष्क अंग के चूर्ण को प्रयुक्त किया जा सकता है।

गुण-कर्म संबंधी मत—आचार्य सुश्रुत ने लोध्रादिगण की औषधियों में अशोक के नाम का उल्लेख किया है और उनके अनुसार योनि दोषों की यह एक सिद्ध औषधि है। ऋषियों का हवाला देते हुए श्री शरदचंद्र घोष अपनी पुस्तक 'ड्रग्स ऑफ हिंदुस्तान' में लिखते हैं कि यदि कोई स्त्री स्नानादि के उपरांत स्वच्छ वस्त्र पहनकर अशोक की आठ नई कलियों का नित्य सेवन करे तो वह मासिक धर्म संबंधी समस्त क्लेशों से मुक्त हो जाती है। उसके बांझपन का कष्ट दूर होता है और मातृत्व की इच्छा पूरी होती है। चक्रदत्त कहते हैं—

अशोकवल्कलक्वाथ शृतं दुग्धं सुशीतलम्।
यथाबलं पिबेत्प्रातस्तीव्रासृग्दरनाशनम्॥

भावार्थ यह कि अशोक की त्वचा (छाल) रक्त प्रदर में, पेशाब रुकने तथा बंद होने वाले रोगों में तुरंत लाभ करती है।

निघंटु रत्नाकर के अनुसार अशोक रक्त प्रदर नाशक व स्त्रियों के शोक को हरने वाला है। श्री नादकर्णी अपनी मटेरिया मेडीका में लिखते हैं कि अशोक की छाल में कषाय कारक (एस्ट्रिन्जेण्ट) और गर्भाशय उत्तेजनाशामक संघटक विद्यमान हैं। यह औषधि सीधे ही गर्भाशय की

Free Read/Download & Order 3000+ books authored by Yugrishi Pt. Shriram Sharma Acharya(Founder of All World Gayatri Pariwar) on all aspects of life in Hindi, Gujarati, English, Marathi & other languages at
www.vicharkrantibooks.org http://literature.awgp.org

मांसपेशियों को प्रभावित करती है। इसके अतिरिक्त यह गर्भाशय की अंत:सतह जिसे एंडोमेट्रीयम कहते हैं और डिंब ग्रंथि 'ओवरी' के ऊतकों पर भी लाभकारी प्रभाव डालती है। गर्भाशय के अर्बुद (फायब्राइड ट्यूमर) के कारण अतिरिक्त स्राव (मिनोरेजिया) में यह विशेष लाभ करती है। मद्रास मेडीकल कॉलेज की 'इंडीजिनस ड्रग रिपोर्ट' के अनुसार अशोक का प्रधान प्रभाव पेट के निचले भाग, गुरदों, मूत्राशय एवं योनि मार्ग पर होता है। यह फैलोपियन ट्यूब को सुदृढ़ बनाती है, जिससे बांझपन मिटता है। श्री बनर्जी लिखते हैं कि शुक्ल पक्ष में वसंत की छठी को अशोक के फूल दही के साथ खाने से गर्भ स्थापना होती है, ऐसा शास्त्रों का अभिमत है। उनके कुछ प्रयोग इस संबंध में खरे उतरे हैं। पर यह कहाँ तक विज्ञानसम्मत है व ग्रहों के किन प्रभावों के कारण यह संभव हो पाता है, यह एक विचारणीय प्रश्न है।

होम्योपैथी मतानुसार अशोक गर्भाशय संबंधी सभी रोगों में अत्यंत लाभकारी है। मूत्र की मात्रा कम होने, बार-बार मूत्र-विसर्जन के लिए जाने की इच्छा होने, गुरदे के दरद में, अंडकोषों की सूजन आदि पौरुष रोगों में, मासिक धर्म के साथ पेट दरद, अनियमितता, प्रदर अतिरिक्त स्राव जैसी स्थिति में, स्त्री रोगों में अशोक की छाल के मदर टिंक्चर को दिए जाने का होम्योपैथी चिकित्सक परामर्श देते हैं। उनके अनुसार यह प्रजनन-मूत्रवाही संस्थान शोधक व बलवर्द्धक दोनों ही है। स्त्रियों में ४५ से ५० वर्ष की आयु में जब रजोनिवृत्ति का संधिकाल (मीनोपॉज) आता है, तब अशोक के संघटक अंदर से हारमोन्स का संतुलन बिठाने की महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं। एक व तीन एक्स की पोटेन्सी में अशोक को चिकित्सक प्रयुक्त करते हैं।

रासायनिक संगठन—अशोक की छाल जो कि औषधि की दृष्टि से प्रयुक्त होती है, में कई जैव सक्रिय पदार्थ पाए गए हैं। इनमें

Free Read/Download & Order 3000+ books authored by Yugrishi Pt. Shriram Sharma Acharya(Founder of All World Gayatri Pariwar) on all aspects of life in Hindi, Gujarati, English, Marathi & other languages at
www.vicharkrantibooks.org http://literature.awgp.org

प्रमुख हैं—लगभग ६ प्रतिशत टैनिन्स, कैटेकॉल, उत्पत तेल (इसेंशियल ऑइल), हिमेटॉक्सीलिन, एक कीटोस्टेरॉल, एक ग्लाइकोसाइड, सौपोनिन्स, एक कैल्शियम युक्त कार्बनिक यौगिक और एक लौह खनिज युक्त कार्बनिक यौगिक। अशोक की छाल के कीटोस्टेरॉल में एस्ट्रोजन हारमोन जैसी सामर्थ्य पाई जाती है। यही इसके प्रजनन संस्थान पर प्रभावी होने का मूल कारण है। अशोक वृक्ष की जैव सक्रियता इसी कैल्शियम युक्त यौगिक और स्टीरायड पर आधारित है।

आधुनिक मत एवं वैज्ञानिक प्रयोग निष्कर्ष—अशोक की छाल में दो पदार्थ मिले हैं, जिनमें से एक प्रायोगिक जीवों की अनैच्छिक मांसपेशियों को सिकोड़ता है और दूसरा उन्हें ढीला करता है। छाल का निष्कर्ष गर्भाशय को उत्तेजित करता है। इसके प्रयोग से गर्भाशय की संकुचन दर बढ़ जाती है और यह संकोचन अधिक समय तक बना रहता है। एलोपैथिक संश्लेषण औषधि तथा 'अरगट' एवं 'पिटुटरी' से जो अल्पावधि का संकोचन होता है, उसकी तुलना में हानि रहित यह प्रभाव अशोक की विशेषता है, ऐसा वैज्ञानिकों का मत है।

कुछ शोधकर्त्ताओं का मत है कि अशोक की छाल का ग्लाइकोसाइड भी गर्भाशय संकोचन को बढ़ाता है। यह संकोचक पदार्थ शरीर में उत्सर्जित होने वाले गर्भाशय संकोचक ऑक्सीटोसिन से मिलता-जुलता है। इसे फिनॉलिक ग्लाइकोसाइड पीटू कहा जाता है। प्रायोगिक जीवों में कृत्रिम रूप से कैंसर उत्पन्न कर उन्हें अशोक त्वचा के जल निष्कर्ष का सेवन कराने पर उनका जीवनकाल बढ़ता पाया गया है तथा ट्यूमर कोशिकाओं में सामान्यीकरण होता देखा गया है। इससे यह लगता है कि संभवत: अशोक की त्वचा में कुछ ऐसे संघटक हैं जो कैंसर का होना रोकते हैं।

Free Read/Download & Order 3000+ books authored by Yugrishi Pt. Shriram Sharma Acharya(Founder of All World Gayatri Pariwar) on all aspects of life in Hindi, Gujarati, English, Marathi & other languages at
www.vicharkrantibooks.org http://literature.awgp.org

प्रयोज्य भाग—छाल, फल एवं बीज।

मात्रा—त्वक चूर्ण १० से १५ ग्राम। त्वक क्वाथ ३० से ५० मिली लीटर। बीज चूर्ण ३ से ६ ग्राम। पुष्प चूर्ण ३ से ६ ग्राम।

निर्धारणानुसार उपयोग—(१) श्वेत प्रदर में अशोक त्वक चूर्ण एवं मिसरी समभाग में गाय के दूध के साथ प्रातः सायं देते हैं।

(२) अति रजःस्राव में त्वचा का क्वाथ १० ग्राम दिन में ३ से ४ बार देते हैं। अशोक की छाल (२५० ग्राम) ४ लीटर जल में पकाकर एक चौथाई शेष रह जाने पर उसे एक किलो शकर के साथ पकाते हैं। इस शरबत की दस ग्राम मात्रा को जल के साथ दिन में तीन-चार बार लेने से तुरंत रक्तस्राव रुकता है।

इसके अतिरिक्त क्वाथ के सार की गोलियाँ बनाकर एक-एक ग्राम की मात्रा में दूध के साथ सुबह-शाम देते हैं। दरद के साथ रजःस्राव होने पर चौथे दिन से आरंभ करके रजःस्राव बंद न होने तक अशोक की छाल का क्वाथ नियमित रूप से देते हैं।

मूत्राघात व पथरी में, पेशाब की जलन में बीजों को शीतल जल में पीसकर मिलाते हैं। पुरुषों के सभी प्रकार के मूत्रवाही संस्थान रोगों में अशोक का प्रयोग लाभकारी ही होता है। स्त्रियों के विषय में तो शास्त्रकार का मत है—

अशोकस्य त्वचा रक्त प्रदरस्य विनाशिनी।

इस प्रकार जनन अंग संबंधी सभी स्त्री रोगों में इसका प्रयोग चमत्कारी लाभ दिखाता है।

अन्य उपयोग—नाड़ी संस्थान संबंधी सभी वेदना प्रधान रोगों में इसका लेप व मुख मार्ग से प्रयोग का विधान है। इसे अतिसार, रक्तविकार में तथा तेज ज्वर को तुरंत उतारने के लिए रक्त शोधक के नाते भी प्रयुक्त करते हैं।



Free Read/Download & Order 3000+ books authored by Yugrishi Pt. Shriram Sharma Acharya(Founder of All World Gayatri Pariwar) on all aspects of life in Hindi, Gujarati, English, Marathi & other languages at
www.vicharkrantibooks.org http://literature.awgp.org

१८. गौक्षुर
ट्राइबुलस टेरेस्ट्रिस

जंगल में पाई जाने वाली सामान्य औषधि के छुरी के समान तेज काँटे गौ आदि पशुओं के पैरों में चुभकर उन्हें क्षत कर देते हैं। इसी कारण उन्हें 'गौक्षर' कहा जाता है। इसे श्वदंष्ट्रा, चणद्रुम, स्वादु कंटक एवं गोखरु नाम से भी जाना जाता है। यह एक सरलता से उपलब्ध होने वाला घास जैसा जमीन पर फैलने वाला क्षुप है, जो वर्षा के प्रारंभ में ही जंगल में चारों ओर उग आता है। पूरे वर्ष इसमें फूल व फल आते हैं। बहुत से व्यक्ति इसे मसाले के रूप में भी प्रयुक्त करते हैं तथा अन्न के अभाव में इसके फलों को पीसकर रोटी बनाकर भी खाते हैं।

वानस्पतिक परिचय—इसकी शाखाएँ २ से ३ फीट लंबी चारों ओर फैली होती हैं। पत्ते चने के समान होते हैं, किंतु उनसे कुछ बड़े ५ से ७ सेंटीमीटर लंबे एक स्थान पर आमने-सामने दो की स्थिति में होते हैं। प्रत्येक पत्ती में चार से लेकर सात जोड़ों के पत्रक स्थित होते हैं। शाखाएँ बैंगनी रंग की चारों ओर फैली तथा श्वेत रोम व अनेकों ग्रंथि युक्त होती हैं। पुष्प पत्रकोण से निकले हुए पुष्प वृंतों से छोटे-छोटे पीत वर्ण के चक्राकार शरद ऋतु में आते हैं। ये काँटोंयुक्त होते हैं।

फल, पुष्प लगने के बाद छोटे-छोटे गोल, चपटे, पंचकोणीय आकार में प्रकट होते हैं। इनमें २ से लेकर ६ तक काँटे व अनेक बीज होते हैं। बीजों में हलका सुगंधित तेल होता है। जड़ मुलायम रेशेदार बेलनाकार ४ से ५ इंच लंबी, बाहर से हलके भूरे रंग की होती है। इसमें भी एक विशिष्ट गंध आती है।

शुद्धाशुद्ध परीक्षा, संग्रह, संरक्षण—इस क्षुप में अन्य जंगली पौधों की जो आकार रूप में एक समान होते हैं, मिलावट होने

Free Read/Download & Order 3000+ books authored by Yugrishi Pt. Shriram Sharma Acharya(Founder of All World Gayatri Pariwar) on all aspects of life in Hindi, Gujarati, English, Marathi & other languages at
www.vicharkrantibooks.org http://literature.awgp.org

से औषधीय क्षमता विवादास्पद होती है। ट्राइबुलस टेरेस्ट्रिस को कई स्थानों पर मीठा गोखरु भी कहते हैं। इसे कड़वे या वृहत गोखरु से पहचानना जरूरी है। जो समुद्र तटवर्ती प्रदेशों में पाया जाता है व नाम 'पिडेलियम म्यूरेन्स' है। इसके फल गोखरु से बड़े होते हैं।

संस्कृत में इसे इक्षुगंधिका (ईख के समान गंध वाला) भी कहते हैं। इसी प्रकार ऐसी ही गंध के एक अन्य पौधे हाइग्रोफिला स्पाइनोजा को भी इक्षुगंधिका कहा गया है। परंतु वह जहरीला है व गुण-धर्म-कर्म में इससे बिलकुल अलग है। इसे गोक्षुर से अलग पहचानना इसी कारण जरूरी है। इस दूसरे पौधे को जो बंगाल में ही अधिकतम पाया जाता है, काँटा यदि शरीर में गड़ जाए तो शरीर का वह स्थान फूल जाता है व सारे शरीर में जलन होने लगती है। गोखरु के फल भी काँटेदार होते हैं, पर वे जहरीले नहीं होते।

मूल व फल प्रयुक्त होते हैं। क्वाथादि के लिए पंचांग अथवा मूल का यथासंभव ताजी अवस्था में प्रयोग करना चाहिए। रूखी अवस्था में प्रयोग करना हो तो फल पक जाने पर पूरी वनस्पति खोदकर सुखाकर अनार्द्र शीतल स्थानों पर संग्रहीत करते हैं। पके फलों को सुखाकर बंद पात्रों में रखते हैं।

वीर्य कालावधि—मूल, फल व पंचांग का प्रभाव काल कुल एक वर्ष है। इसी अवधि में इसे उपयोग में ले लेना चाहिए।

गुणकर्म संबंधी मत—आचार्य चरक ने गोक्षुर को मूत्र विरेचन द्रव्यों में प्रधान मानते हुए लिखा है—**गोक्षुर को मूत्रकृच्छा-निलहराणाम्** अर्थात यह मूत्रकृच्छ (डिसयूरिया) विसर्जन के समय होने वाले कष्ट में उपयोगी एक महत्त्वपूर्ण औषधि है। आचार्य सुश्रुत ने लघुपंचमूल, कंटक पंचमूल गणों में गोखरु का उल्लेख किया है। अश्मरी भेदन

Free Read/Download & Order 3000+ books authored by Yugrishi Pt. Shriram Sharma Acharya(Founder of All World Gayatri Pariwar) on all aspects of life in Hindi, Gujarati, English, Marathi & other languages at
www.vicharkrantibooks.org http://literature.awgp.org

(पथरी को तोड़ना, मूत्र मार्ग से ही बाहार निकाल देना) हेतु भी इसे उपयोगी माना है।

श्री भाव मिश्र गोक्षुर को मूत्राशय का शोधन करने वाला, अश्मरी भेदक बताते हैं व लिखते हैं कि पेट के समस्त रोगों की गोखरू सर्वश्रेष्ठ दवा है। 'वनौषधि चंद्रोदय' के विद्वान लेखक के अनुसार गोक्षुर मूत्रपिंड को उत्तेजना देता है, वेदनानाशक और बलदायक है। इसका सीधा असर मूत्रेंद्रिय की श्लेष्म त्वचा पर पड़ता है। सुजाक रोग और वस्तिशोथ (पेल्विक इन्फ्लेमेशन) में भी गोखरु तुरंत अपना प्रभाव दिखाता है। गर्भाशय को शुद्ध करता है तथा वंध्यत्व को मिटाता है। इस प्रकार यह प्रजनन अंगों के लिए एक प्रकार की शोधक, बलवर्द्धक औषधि है।

श्री नादकर्णी अपने ग्रंथ 'मटेरिया मेडिका' में लिखते हैं—गोक्षुर का सारा पौधा ही मूत्रल शोथ निवारक है। इसके मूत्रल गुण का कारण इसमें प्रचुर मात्रा में विद्यमान नाइट्रेट और उत्पत तेल है। इसके कांड में कषाय कारक घटक होते हैं और ये मूत्र संस्थान की श्लेष्मा झिल्ली पर तीव्र प्रभाव डालते हैं।

यूरोप और ग्रीस में चिर पुरातनकाल से प्रयुक्त इस औषधि का हवाला देते हुए वेल्थ ऑफ इंडिया इसके गुणों का वर्णन इस प्रकार करता है—फल मूत्रल होते हैं तथा पथरी रोग व मूत्र संस्थान के संक्रमण में लाभ करते हैं। ब्राइट्स डिसीज नामक एक एलर्जीक संक्रमण पर भी इसका प्रभाव मारक एवं बल्य दोनों ही रूपों में पड़ता है। इस प्रकार यह औषधि मूत्रवाही संस्थान की स्वाभाविक सामर्थ्य बढ़ाकर संक्रमण रोकती है। कर्नल चोपड़ा ने गोक्षुर के अलको-हलिक निष्कर्ष के मूत्र विरेचक गुणों का हवाला देते हुए उसकी बहुत प्रशंसा की है। श्री आर० एन० खोरी की मटेरिया मेडीका ऑफ इंडिया (भाग-२) के अनुसार गोक्षुर मूत्रल, कृच्छनाशक व यौन रोग निवारक है।

Free Read/Download & Order 3000+ books authored by Yugrishi Pt. Shriram Sharma Acharya(Founder of All World Gayatri Pariwar) on all aspects of life in Hindi, Gujarati, English, Marathi & other languages at
www.vicharkrantibooks.org http://literature.awgp.org

होम्योपैथी में श्री विलियम बोरिक का मत प्रामाणिक माना जाता है। विशेषकर वनौषधियों के विषय में वे लिखते हैं कि मूत्र मार्ग में अवरोध, वीर्यपात, प्रोस्टेट ग्रंथि की सूजन व अन्य यौन रोगों में गोखरु का टिंक्चर १० से २० बूँद दिन में तीन बार देने से तुरंत लाभ होता है।

यूनानी में यह खारे खसक खुर्द या खरे सहगोशा के नाम से जाना जाता है। हकीम इसे गरम और खुश्क मानते हैं। उनके अनुसार यह ब्लैडर व गुरदे की पथरी का नाश करता है तथा मूत्रावरोध को दूर करता है। मूत्र मार्ग से बड़ी से बड़ी पथरी को तोड़कर निकाल बाहर करता है। सुजाक जैसे भयानक यौन रोग में भी यह लाभप्रद है। गर्भाशय शुद्धि फैलोपियन ट्यूब की उत्तेजना हेतु इसकी जड़ व पत्ते का स्वरस प्रयुक्त होता है।

रासायनिक संरचना—गोखरु की पत्तियों में ७९ प्रतिशत जल, ७.२२ प्रतिशत प्रोटीन तथा ४.६३ प्रतिशत राख पाई गई है। खनिजों में कैल्शियम १.५५ ग्राम प्रतिशत, फास्फोरस ०.०८ ग्राम प्रतिशत तथा लोहा ९.२ मिलीग्राम प्रतिशत होता है। कैल्शियम की प्रचुरता इस जड़ी-बूटी की विशेषता है। इसमें विटामिन 'सी' की मात्रा भी ४१ मिलीग्राम प्रतिशत के लगभग पाई गई है।

क्षुप में हरमन नाम का एक एल्केलाइड तथा बीजों में हरमिन नामक एल्केलाइड होता है। पौधे में कई सैपोनिन भी पाए गए हैं—तीन पत्तियों में तथा दो जड़ों में। डाइसोजेनिन, रस्कोजेनिन, गिटोजेनिन इन्हीं सैपोनिन से प्राप्त होते हैं।

ग्लाइकोसाइड्स में प्रमुख हैं—केम्पफेरॉल, रुटीनोसाइड तथा एक नया फ्लेवोनाइड जिसे ट्रिबुलोसाइड नाम दिया गया है। गोक्षुर के फल में एल्केलाइड के अतिरिक्त एक अवाष्पशील तेल, रेजिन, नाइट्रेट, पेरॉक्सीडेड,

Free Read/Download & Order 3000+ books authored by Yugrishi Pt. Shriram Sharma Acharya(Founder of All World Gayatri Pariwar) on all aspects of life in Hindi, Gujarati, English, Marathi & other languages at
www.vicharkrantibooks.org http://literature.awgp.org

शुगर व टैनिन होते हैं। इसमें डायस्टेस नाम का एक महत्त्वपूर्ण एन्जाइम भी होता है। बीजों में फास्फोरस तथा नाइट्रोजन प्रचुर मात्रा में होती है।

आधुनिक मत एवं वैज्ञानिक प्रयोग निष्कर्ष—गोक्षुर के मूत्रल गुण का मनुष्यों व प्रायोगिक जीवों दोनों पर अध्ययन किया गया है। निष्कर्ष यह निकला है कि इस औषधि के मूत्रल गुण यूरिया के समान ही हैं। कुछ रोगियों में अनुभव के आधार पर यह कहा जा सकता है कि यह एक निरापद मूत्रल है। इंडियन जनरल ऑफ मेडीकल रिसर्च तथा एंटीसेप्टिक में प्रकाशित शोध लेखों के अनुसार सभी प्रकार के गुरदे के विकारों में गोक्षुर का उपयोग एक चमत्कारी प्रभाव दिखाता है (५५,७,१९६७ आई०जे०एम०आर० ६५,६,१९६८ एंटीसैप्टिक)। मूत्र की मात्रा बढ़ती है तथा पथरी के रोगों में न केवल शूलजन्य संस्थानिक वेदना कम होती है, १५ दिन की अवधि में पथरी टूट-टूटकर मूत्र मार्ग से टुकड़ों-टुकड़ों में निकल जाती है। प्राइमरी नेफ्राइटिस नामक रोग की स्थिति में यह विशेष लाभकारी है।

ग्राह्य अंग—सारा पौधा ही औषधीय क्षमता रखता है। फल व जड़ अलग से भी प्रयुक्त होते हैं।

मात्रा—फल चूर्ण ३ से ६ ग्राम, २ या ३ बार। पंचांग क्वाथ ५० से १०० मिलीलीटर।

निर्धारणानुसार उपयोग—पथरी रोग में गोक्षुर के फलों का चूर्ण शहद के साथ ३ ग्राम की मात्रा में सुबह-शाम दिया जाता है। महर्षि सुश्रुत के अनुसार सात दिन तक गौदुग्ध के साथ गोक्षुर पंचांग का सेवन कराने में पथरी टूट-टूटकर शरीर से बाहर चली जाती है। मूत्र के साथ यदि रक्त स्राव भी हो तो गोक्षुर चूर्ण को दूध में उबालकर मिसरी के साथ पिलाते हैं।

सुजाक रोग (गनोरिया) में गोक्षुर को एक घंटे पानी में भिगोकर और उसे अच्छी तरह छानकर दिन में चार बार ५-५ ग्राम की मात्रा में

Free Read/Download & Order 3000+ books authored by Yugrishi Pt. Shriram Sharma Acharya(Founder of All World Gayatri Pariwar) on all aspects of life in Hindi, Gujarati, English, Marathi & other languages at
www.vicharkrantibooks.org http://literature.awgp.org

देते हैं। किसी भी कारण से यदि पेशाब की जलन हो तो गोखरु के फल और पत्तों का रस २० से ५० मिलीलीटर दिन में दो-तीन बार पिलाने से वह तुरंत मिटती है। प्रमेह शुक्रमेह में गोखरु चूर्ण को ५ से ६ ग्राम मिसरी के साथ दो बार देते हैं। तुरंत लाभ मिलता है।

मूत्र रोग संबंधी सभी शिकायतों यथा—प्रोस्टेट ग्रंथि बढ़ने से पेशाब का रुक-रुककर आना, पेशाब का अपने आप निकलना (युरीनरी इनकाण्टीनेन्स), नपुंसकता, मूत्राशय की पुरानी सूजन आदि में गोखरु १० ग्राम, जल १५० ग्राम, दूध २५० ग्राम को पकाकर आधा रह जाने पर छानकर नित्य पिलाने से मूत्र मार्ग की सारी विकृतियाँ दूर होती हैं। प्रदर में अतिरिक्त स्राव में, स्त्री जनन अंगों के सामान्य संक्रमणों में गोखरु एक प्रति संक्रामक का काम करता है। स्त्री रोगों के लिए १५ ग्राम चूर्ण नित्य घी व मिसरी के साथ देते हैं।

बी०एच०यू० तथा जामनगर में हुए प्रयोगों के आधार पर कहा जा सकता है कि गोक्षुर चूर्ण प्रोस्टेट बढ़ने से मूत्र मार्ग में आए अवरोध को मिटाता है, उस स्थान विशेष में रक्त संचय को रोकता तथा यूरेथ्रा के द्वारों को उत्तेजित कर मूत्र को निकाल बाहर करता है। बहुसंख्य व्यक्तियों में गोक्षुर के प्रयोग के बाद ऑपरेशन की आवश्यकता नहीं रह जाती। इसे योग के रूप में न देकर अकेले अनुपान भेद के माध्यम से ही दिया जाए, यही उचित है, ऐसा वैज्ञानिकों का व सारे अध्ययनों का अभिमत है।

अन्य उपयोग—ऊपर वर्णित प्रयोगों के अतिरिक्त यह नाड़ी दुर्बलता, वात नाड़ी विकार, बवासीर, दुर्बलता, खाँसी तथा श्वास रोगों में भी प्रयुक्त होता है। यह बल्य रसायन भी है तथा कमजोर पुरुषों व महिलाओं के लिए एक टॉनिक भी है। यह दशमूलारिष्ट में प्रयुक्त होने वाला एक द्रव्य भी है। यह नपुंसकता निवारण तथा बार-बार होने वाले गर्भपात में भी सफलता से प्रयुक्त होता है।



Free Read/Download & Order 3000+ books authored by Yugrishi Pt. Shriram Sharma Acharya(Founder of All World Gayatri Pariwar) on all aspects of life in Hindi, Gujarati, English, Marathi & other languages at
www.vicharkrantibooks.org http://literature.awgp.org

१९. शतावर

एस्पेरेगस रेसिमोसस

इसे शतमूली, शतवीर्या, बहुसुता भी कहते हैं। इसके लैटिन नाम के संबंध में काफी मतभेद रहा है, पर अब यह निर्विवाद रूप से मान लिया गया है कि एस्पेरेगस रेसिमोसस ही शतावर है।

वानस्पतिक परिचय—शतावर ग्रीष्म ऋतु के मध्य में एक काँटेदार कंदयुक्त बेल के रूप में प्रकट होती है। यह भारतवर्ष के समस्त गरम, समशीतोष्ण क्षेत्रों में तथा हिमालय में ४००० फीट की ऊँचाई तक मिलती है। एक और काँटे रहित जाति हिमालय में ४ से ९ हजार फीट की ऊँचाई तक मिलती है, जिसे एस्पेरेगस फिलिसिनस नाम से जाना जाता है।

यह एक-डेढ़ गज आगे बढ़कर एक ओर मुड़कर बाढ़ के रूप में या किसी वृक्ष का सहारा लेकर ऊँचे चढ़ जाती है। इसके काँटे कुछ टेढ़े ६ से १२ मिलीमीटर लंबे होते हैं। शाखाएँ चारों ओर अत्यधिक फैली होती हैं। प्रशाखाएँ त्रिकोणाकार, चिकनी किंतु रेखांकित होती हैं। पत्र शाखाएँ २ से ६ इंच तक लंबी होती हैं। पत्र पुष्पों से रहित, लता देखने में काँटे वाली सफेद डंडी जैसी दिखाई देती है। पत्ते महीन डेढ़ से एक इंच लंबे नोकदार, हँसिये के आकार के अध:पृष्ठ पर नालीदार होते हैं। ये दीखते सोये के पत्तों जैसे हैं। पुष्प मंजरी १ से २ इंच लंबी एकल या गुच्छेबद्ध होती है। इसमें सुगंधित छोटे-छोटे पुष्प लगते हैं। पुष्प सफेद तथा ३ से ५ मिलीमीटर व्यास के होते हैं। नवंबर के माह में एक ही समय में एक साथ हजारों फूल खिलने लगते हैं, जिससे सारी लता ही सफेद दिखाई देने लगती है।

Free Read/Download & Order 3000+ books authored by Yugrishi Pt. Shriram Sharma Acharya(Founder of All World Gayatri Pariwar) on all aspects of life in Hindi, Gujarati, English, Marathi & other languages at
www.vicharkrantibooks.org http://literature.awgp.org

फल शीतकाल के अंत में गोलाकार, मटर के आकार के लगभग चौथाई इंच व्यास के होते हैं, जो पकने पर लाल रंग के हो जाते हैं। कुछ गोल व कुछ तिकोने होते हैं। बीज प्रत्येक फल में एक या दो, रंग में काले तथा चौथाई इंच व्यास के होते हैं।

शतावरी के कंद में से सैकड़ों मूल निकलते हैं, जो उँगली जैसे मोटे, एक से डेढ़ फीट लंबे, धूसर पीले, स्वाद में कुछ मधुर तथा फिर कड़वे लगने लगते हैं। एक-एक बेल के नीचे से सैकड़ों जड़ें निकलती हैं। इन्हीं श्वेत मूल गुच्छों का प्रयोग चिकित्सा कार्य हेतु होता है। इसे ही सुखाकर बाजार में शतावर के नाम से बेचा जाता है।

शुद्धाशुद्ध परीक्षा—शतावरी को सफेद मूसली से अलग पहचानना आना चाहिए। सफेद मूसली का लेटिन नाम एस्पेरेगस एडसेण्डैन्स है। सफेद मूसली की जड़ सफेद गाँठयुक्त होती है। बाजार में उपलब्ध मूसलीकंद की छाल झुर्रीदार, स्वच्छ, हाथी दाँत के समान सफेद, २ इंच से ढाई इंच लंबी, लगभग सवा इंच मोटी, कड़ी व फीके स्वाद वाली होती है। यह लोआबदार होती है तथा तोड़ने पर भुरभुरी। इसके विपरीत शतावरी के सूखे कंदों का बाह्य तल कुछ अधिक भूरे रंग का तथा सिकुड़ा हुआ होता है। इस पर एक सिरे से दूसरे सिरे तक अनुलंब रेखाएँ होती हैं तथा बीच का तल कुछ खोखला सा नतोदर आकार का होता है। बहुधा इस औषधि में मिलावट होती है। अतः शुद्ध वनौषधि को रंग, स्वाद व आकार से पहचानकर ही ग्रहण करना चाहिए।

संग्रह संरक्षण—शतावर की जड़ों को सुखाकर मुख बंद पात्रों में सूखे स्थान पर रखते हैं। इसका प्रयोग संग्रहोपरांत एक वर्ष तक आसानी से किया जा सकता है। इसके बाद वीर्य समाप्त हो जाता है।

Free Read/Download & Order 3000+ books authored by Yugrishi Pt. Shriram Sharma Acharya(Founder of All World Gayatri Pariwar) on all aspects of life in Hindi, Gujarati, English, Marathi & other languages at
www.vicharkrantibooks.org http://literature.awgp.org

गुण, कर्म संबंधी विभिन्न मत—आचार्य चरक ने शतावर को बल्य और वय: स्थापन मधुर स्कंध बताया है; जबकि सुश्रुत इसे कटक पंचमूल तथा पित्तशामक समूह का मानते हैं। चरक संहिताकार के अनुसार सामान्य द्रव्य तो मात्र धातु को बल प्रदान करते हैं, परंतु शतावर तो मास, शुक्र और स्तन्य को विशेष रूप से बल देती है। इसीलिए इसे बल्य महाकषाय की उपमा आचार्य श्री ने दी है।

आचार्य सुश्रुत के अनुसार शतावर सूखा रोग, कमजोरी (शोष एवं अंगमर्द) में बल प्रदायक है तथा दूषित शुक्र का शोधन करती है। वागभट्ट लिखते हैं कि जो मनुष्य शतावरी कल्क और स्वरस से सिद्ध किया हुआ घृत मिसरी के साथ नित्य सेवन करता है, उसे व्याधि रूपी डाकू कभी लूट नहीं सकते।

भावप्रकाश निघंटुकार के अनुसार यह गुरु, शीत, तिक्त रसायन है जो मेधा को बढ़ाती है, अग्निवर्द्धक है, वात-पित्त शोथ निवारक तथा शुक्र दौर्बल्य को मिटाती है। वनौषधि चंद्रोदय के अनुसार हमारे शरीर में स्थित वात नाड़ी संस्थान का केंद्र मस्तिष्क है। इस संस्थान से असंख्य वात नाड़ियाँ सारे शरीर में फैली होती हैं। इनमें विद्युत्‌रूप प्राण ही प्रत्यक्ष धातु के रूप में विचरण करता है। शतावर इस वात संस्थान एवं वात धातु को बल प्रदान करती है, जिससे मेधा, बुद्धि, मानस शक्ति और देह के अंग-उपांग सब सबल बनते हैं।

धन्वंतरि निघंटुकार लिखते हैं—शतावर राजयक्ष्मा से लेकर किसी जीर्ण रोगी को पुन: बल तथा रोग से लड़ने की सामर्थ्य प्रदान करती है। गुणों का वर्णन करते हुए लिखा गया है—**वात पित्तहरी बृष्या रसायनवरा स्मृता** अर्थात यह एक प्रबल मेधावर्द्धक पुष्टिवर्द्धक रसायन है।

Free Read/Download & Order 3000+ books authored by Yugrishi Pt. Shriram Sharma Acharya(Founder of All World Gayatri Pariwar) on all aspects of life in Hindi, Gujarati, English, Marathi & other languages at
www.vicharkrantibooks.org http://literature.awgp.org

श्री नादकर्णी के अनुसार शतावरी की जड़ समग्र पोषण प्रदान करने वाली एक टॉनिकरूपी औषधि है। यह आंतरिक चयापचय जन्य गरमी को शांत कर बल प्रदान करती है। 'वेल्थ ऑफ इंडिया' के अनुसार शतावरी एक पौष्टिक पौधा है। इसमें जो रसायन हैं, वे प्रकृति की मनुष्य को अद्‌भुत देन हैं। सारे शरीर में जहाँ कमी है, ठीक वहीं इसके रसायन पहुँचते हैं एवं सूक्ष्म रूप में घुलकर सात्मीकरण की स्थिति ला देते हैं। श्री जे०एफ०दस्तूर अपनी पुस्तक 'मेडीसिनल प्लांट्स ऑफ इंडिया एंड पाकिस्तान' में शतावरी को पुष्टिकारक बताते हैं।

होम्योपैथी में शतावरी की यूरोपियन जाति एस्पेरेगस ऑफिसिनेलिस का प्रयोग प्रधान रूप से हुआ है। यह अनेकों प्रकार की दुर्बलताओं में लाभकारी पाई गई है। यूनान में शतावरी को पहले दर्जे में ठंढा तथा स्निग्ध माना गया है। इसका प्रयोग बलवर्द्धक के रूप में किया जाता है। हकीम लोग इसका हब्बुलसनोवर नामक योग प्रयुक्त करते हैं।

अंत में वैद्य जीवन से उद्‌धृत एक टिप्पणी देना समीचीन होगा जो शतावरी के गुण कर्मों पर प्रकाश डालती है।

भुक्तवा वरीं क्षीरयुक्तां विलासी भेुक्त शत सुन्दरि, सुन्दरीणाम्।

रासायनिक संरचना—इसमें श्लेष्मक (म्यूलिसेज पिच्छिल द्रव्य) तथा शर्करा प्रचुरता से पाए जाते हैं। इनके अलावा वैज्ञानिकों ने शतावर में अनेकों सैपोनिन भी पाए हैं। हकीमराज दलजीत सिंह के अनुसार इसके जल विलेय में ७ प्रतिशत शक्कर होती है। उसके कंद में जो सैपोनिन पाए गए हैं, उनका प्रधान कार्य गर्भाशय संकोचन का शमन है। इसकी वल्य सामर्थ्य शर्करा, म्युसिलेज, सैपोनिन्स तथा अन्य ऐसे सूक्ष्म रसायनों पर निर्भर है, जो शरीर में कार्य तो करते हैं, पर जिनका

Free Read/Download & Order 3000+ books authored by Yugrishi Pt. Shriram Sharma Acharya(Founder of All World Gayatri Pariwar) on all aspects of life in Hindi, Gujarati, English, Marathi & other languages at
www.vicharkrantibooks.org http://literature.awgp.org

विश्लेषण अभी संभव नहीं हो पाया है। वैज्ञानिक इस दिशा में प्रयत्नशील हैं, पर अभी भी यह एक रहस्य ही बना हुआ है कि किस प्रकार यह औषधि सीधे एंड्रोक्राइन ग्लेंड्स व अन्य सूक्ष्म रसस्रावों को प्रभावित कर बलवर्द्धक की भूमिका निभाती है।

आधुनिक मत एवं वैज्ञानिक प्रयोग निष्कर्ष—शतावर की जड़ सीधे हृदय को प्रभावित कर उसे सामर्थ्य प्रदान करती है। हृदय की संकुचन क्षमता बढ़ती है व प्रत्येक धड़कन के साथ अधिक मात्रा में शुद्धीकृत रक्त शरीर के अंग-प्रत्यंगों में पहुँचता, उन्हें प्रभावित करता है।

सैपोनिन्स गर्भाशय की गतिविधि को संतुलित करते हैं और संकुचन क्षमता कम करते हैं। यह एक प्रकार से गर्भाशय उत्तेजना शामक है। श्री जेठमलानी (जनरल ऑफ रिसर्च इन इंडियन मेडीसिन २,१,१९७६) के अनुसार शतावर की जड़ का निष्कर्ष पिटुटरी एड्रीनल एक्सिस पर प्रभाव डालकर कई हारमोन रसों के स्रावों को प्रभावित करता है। श्री डांगे प्लांटा मेडिका (१७, ३९३,१९६९) में लिखते हैं कि शतावर की ताजी व सुखाई गई जड़ में कई एन्जाइमों की गतिविधि विशेष रूप से दृष्टिगोचर हुई है। इनमें कार्बोहाइड्रेटों को प्रभावित करने वाले एन्जाइम अल्फा एवं बीटा अमाइलेस तथा वसा को प्रभावित करने वाले लाइपेस नामक एन्जाइम्स प्रमुख हैं।

ग्राह्य अंग—जड़ (कंद) श्री नादकर्णी कहते हैं कि तने की छाल जहरीली होती है। उसका प्रयोग न कर मात्र कंद प्रयोग में लाए जाएँ।

मात्रा—स्वरस २ से ४ चम्मच (२०-२० मिली लीटर) दिन में दो बार। चूर्ण ३ से ६ ग्राम दिन में दो बार। क्वाथ ५० से १०० मिली लीटर (लगभग २ से ३ औंस)

Free Read/Download & Order 3000+ books authored by Yugrishi Pt. Shriram Sharma Acharya(Founder of All World Gayatri Pariwar) on all aspects of life in Hindi, Gujarati, English, Marathi & other languages at
www.vicharkrantibooks.org http://literature.awgp.org

जहाँ तक संभव हो शतावरी गीली ही प्रयुक्त हो। यह गीली न मिले तो ही सूखा चूर्ण प्रयुक्त किया जाए।

निर्धारणानुसार उपयोग—शतावर का चूर्ण, क्वाथ (जल की मात्रा चूर्ण से बीस गुनी अधिक), घी (२ से ४ मक्खन, इतना ही शतावर स्वरस तथा दस गुना घी उबालकर), मुरब्बा तथा स्वरस, ये पाँच प्रकार के प्रायोगिक स्वरूप हैं। वीर्य वृद्धि, शुक्र दौर्बल्य के लिए शतावर चूर्ण दूध में उबालकर प्रयुक्त होता है। गर्भस्राव (एंटीपार्टम हेमरेज), रक्त प्रदर तथा स्तन्य क्षय में यह उपयोगी है। स्त्रियों के लिए यह उत्तम रसायन है। स्तन्य वृद्धि तथा दूध की मात्रा बढ़ाने के लिए इसका प्रयोग करते हैं।

क्षय रोग के बाद की दुर्बलता तथा मस्तिष्क दौर्बल्य में भी यह उत्तम टॉनिक का काम करता है। दृष्टिमंदता को मिटाता है। संभवत: इसका प्रभाव सीधे रेटीना के स्नायुकोशों पर होता है। स्वप्न दोष के लिए दूध में उबाली हुई जड़ देते हैं तथा मिसरी के साथ २-२ चम्मच रोज पिलाते हैं। इसमें ताजी जड़ का स्वरस व मिसरी का अनुपान और भी अधिक लाभकारी है।

अन्य उपयोग—इसे अनिद्रा रोग, शिरोशूल, वात व्याधि में सफलतापूर्वक प्रयुक्त करते हैं। मिरगी के रोग, मूर्च्छा, हिस्टीरिया की भी यह अचूक औषधि है। यह रक्तचाप भी कम करता है। अम्ल पित्त निवारक है तथा अग्नि उद्दीपक है। हर दृष्टि से यह एक उपयोगी रसायन, बल्य, मेध्य औषधि है, जिस पर अभी भी शोध की पूरी-पूरी संभावनाएँ हैं।



Free Read/Download & Order 3000+ books authored by Yugrishi Pt. Shriram Sharma Acharya(Founder of All World Gayatri Pariwar) on all aspects of life in Hindi, Gujarati, English, Marathi & other languages at
www.vicharkrantibooks.org http://literature.awgp.org

२०. अश्वगंधा

विदेनिया सॉम्नीफेरा

इसे असगंध एवं बाराहकर्णी भी कहते हैं। कच्ची जड़ से अश्व जैसी गंध आती है इसलिए भी इसे अश्वगंधा या वाजिगंधा कहा जाता है तथा इसका सेवन करते रहने से भी अश्व जैसा उत्साह उत्पन्न होता है। अतः नाम सार्थक है। सूख जाने पर यह गंध कम हो जाती है।

वानस्पतिक परिचय—यह सारे भारत में पश्चिमोत्तर भाग, मध्य प्रदेश, महाराष्ट्र, गुजरात, पंजाब तथा हिमाचल में ५००० फीट की ऊँचाई तक पाई जाती है। मध्य प्रदेश के पश्चिमोत्तर जिले मंदसौर की मनासा तहसील में इसकी बड़े पैमाने पर खेती की जाती है तथा सारे भारत की व्यावसायिक पूर्ति वहाँ से होती है। पहले यह नागोर (राजस्थान) में बहुत होता था और वहीं से सर्वत्र भेजा जाता था। अतः इसे नागौरी असगंध भी कहा जाता था। यह नाम अभी भी प्रसिद्ध है।

इसका क्षुप झाड़ीदार एक से चार फीट ऊँचा बहुशाखा युक्त होता है। शाखाएँ गोलाकार चारों ओर फैली रहती हैं। कहीं-कहीं बड़े-बड़े वृक्षों के नीचे, जलाशयों के समीप यह बारहों माह हरी-भरी स्थिति में पाया जाता है। आकार में यह छोटी कटेरी जैसा परंतु कंटक रहित होता है। पत्र जोड़े में अखंडित अंडाकार ५-१० सेंटीमीटर लंबे तथा ३ से ५ सेंटीमीटर चौड़े होते हैं। ये आकार में लंबे, बीज छोटे लट्वाकार से लेकर कहीं-कहीं पलाश के पत्ते सदृश खड़े होते हैं। डंठल बहुत ही छोटा होता है।

Free Read/Download & Order 3000+ books authored by Yugrishi Pt. Shriram Sharma Acharya(Founder of All World Gayatri Pariwar) on all aspects of life in Hindi, Gujarati, English, Marathi & other languages at
www.vicharkrantibooks.org http://literature.awgp.org

पुष्प छोटे-छोटे कुछ लंबे, कुछ पीला व हरापन लिए चिलम के आकार के होते हैं। शाखाओं के अग्र भाग पर खिलते हैं। इन पर भी डंठल के समान सफेद छोटे-छोटे रोम होते हैं। फल छोटे-छोटे गोल मटर या मकोय के फल के समान पहले हरे, फिर कार्तिक मास में पकने पर लाल रंग के हो जाते हैं। ये रसभरी के फलों के समान दिखते हैं। फल के अंदर लोआव तथा कटेरी के बीजों के समान श्वेत असंख्यों बीज होते हैं। इन्हें यदि दूध में डाल दिया जाए तो वे उसे जमा भी देते हैं।

मूल ४ से ८ इंच लंबी, ऊपर से मटमैली, अंदर से सफेद, शंकु के आकार की होती है। यह नीचे से मोटी, ऊपर से पतली, गोल व चिकनी होती है। गीली ताजी जड़ से घोड़े के मूत्र के समान तीव्र गंध आती है, जिसका स्वाद तीखा होता है। शरद ऋतु में फूल आते हैं तथा कार्तिक मार्गशीर्ष में पकते हैं। बरसात में इसके बीज बोये जाते हैं तथा जाड़े में फसल निकाल ली जाती है।

शुद्धाशुद्ध परीक्षा—बाजारों में मिलने वाली शुष्क जड़ १० से २० सेंटीमीटर लंबी छोटे-बड़े टुकड़ों के रूप में होती है। यह प्राय: खेती किए हुए पौधे की जड़ होती है। जंगली पौधों की अपेक्षा उसमें स्टार्च आदि अधिक होता है। आंतरिक प्रयोग के लिए खेती वाले पौधे की जड़ तथा लेप आदि प्रयोग के लिए जंगली पौधे की जड़ ठीक बैठती है। असगंध दो प्रकार की होती है—छोटी तथा बड़ी। छोटी असगंध का क्षुप छोटा, परंतु मूल बड़ा होता है। पूर्व में नागौरी असगंध को देशी भी कहते हैं। इसका क्षुप बड़ा तथा जड़ें छोटी व पतली होती हैं। बाजारों में असगंध की जाति के ही एक भेद फाकनज की जड़ें भी मिला दी जाती हैं। कुछ व्यक्ति कन्वाल्व्यूलस असगंधा को अश्वगंधा मान बैठते हैं, जबकि वह आंतरिक प्रयोग के लिए नहीं है, विषैली है।

Free Read/Download & Order 3000+ books authored by Yugrishi Pt. Shriram Sharma Acharya(Founder of All World Gayatri Pariwar) on all aspects of life in Hindi, Gujarati, English, Marathi & other languages at
www.vicharkrantibooks.org http://literature.awgp.org

रोपण—यह उन स्थानों पर भी उग आता है, जहाँ अन्य वनौषधियाँ नहीं लग पातीं। ५ किलोग्राम बीज लगभग एक हैक्टेयर भूमि के लिए पर्याप्त है। पहले नर्सरी में उगाकर उन्हें आधा-आधा मीटर की दूरी पर खेत में फैला देते हैं। सिंचाई की आवश्यकता अधिक नहीं पड़ती। देख-रेख एवं खाद आदि की इतनी जरूरत नहीं। अधिक वर्षा तो हानिकारक है। दिसंबर में फूल-फल आने के बाद मार्च में समूल फसल काट ली जाती है। जड़ों को कूट कर मिट्टी हटा देते हैं और पतली जड़ें अलग कर मोटी जड़ों को औषधि प्रयोजन हेतु चुन लेते हैं।

संग्रह-संरक्षण, कालावधि—उत्तम जड़ों को चुनकर सुखाकर एयरटाइड सूखे शीतल स्थानों पर रखते हैं। इन्हें एक वर्ष तक प्रयुक्त किया जा सकता है।

आचार्य चरक ने असगंध को उत्कृष्ट वल्य माना है एवं सभी प्रकार के जीर्ण रोगियों, क्षयशोथ आदि के लिए इसे उपयुक्त माना है। सुश्रुत के अनुसार यह औषधि किसी भी प्रकार की दुर्बलता-कृषता में गुणकारी है। चक्रदत्त के अनुसार—

पादकल्केऽश्वगंधायाः क्षीरे दशगुणं पचेत्।
घृतं पेयं कुमाराणां पुष्टिकृद्बलवर्धनम्॥

पुष्टि बलवर्द्धन हेतु इससे श्रेष्ठ औषधि आयुर्वेद के विद्वान कोई और नहीं मानते। चक्रदत्त ही के अनुसार अश्वगंधा का चूर्ण १५ दिन दूध, घृत अथवा तेल या जल से लेने पर बालक का शरीर उसी प्रकार पुष्ट होता है जैसे जल वर्षा होने पर फसलों की पुष्टि होती है। यही नहीं, शिशिर ऋतु में यदि कोई वृद्ध इसका एक माह भी सेवन करता है तो वह युवा बन जाता है। श्री भाव मिश्र लिखते हैं—

अश्वगंधानिलश्लेष्मश्वित्रशोथक्षयापहा।
वल्या रसायनी तिक्ता कषायोष्णातिशुक्रला॥

Free Read/Download & Order 3000+ books authored by Yugrishi Pt. Shriram Sharma Acharya(Founder of All World Gayatri Pariwar) on all aspects of life in Hindi, Gujarati, English, Marathi & other languages at
www.vicharkrantibooks.org http://literature.awgp.org

क्षय आदि रोगों में तो लाभकारी है ही बलवर्द्धक रसायन एवं अतिशुक्रल है।

आयुर्वेद के अन्य विद्वान बताते हैं कि असगंध धातुओं की वृद्धि विशिष्ट रूप से करता है। मांस मज्जा की वृद्धि, उनका शोधन तथा जीवनावधि बढ़ना भी इसके वृहण गुण के कारण संभव हो पाता है।

डॉ० आर० एन० खोरी के अनुसार असगंध एक शक्तिवर्द्धक रसायन और अवसादक है। इसकी मूल का चूर्ण दूध या घी के साथ लेने से बालकों के शरीर-मेधा की वृद्धि होती है। डॉ० घोषाल के अनुसार यह निद्रा लाता है तथा शुक्राणुओं की वृद्धि कर एक प्रकार के एफ्रोडिजियक (कामोत्तेजक) की भूमिका निभाता है, परंतु इसका कोई अवांछनीय प्रभाव शरीर पर नहीं पड़ता।

श्री नादकर्णी के अनुसार अश्वगंधा प्रधानतः एक टॉनिक है। यह शरीर के बिगड़े हुए क्रिया-कलापों को सुव्यवस्थित करती है। वातशामक होने के कारण थकान का निवारण कर शक्ति प्रदान करती है। यह अंग-अवयवों की, जीवकोशों की आयु बढ़ाती है। इस प्रकार असमय बुढ़ापा नहीं आने देती। वेल्थ ऑफ इंडिया के अनुसार यह बच्चों के सूखा रोग में लाभकारी है। इसके तने की सब्जी भी खिलाई जाती है व सूखा रोग हेतु यह एक ग्रामीण चिर प्रचलित औषधि है।

होम्योपैथी में इसका वर्णन कहीं प्रयोग के रूप में नहीं मिलता। कहीं छिटपुट प्रयोग हुए हों तो प्रकाशित न होने के कारण उनकी जानकारी उपलब्ध नहीं है।

यूनानी में अश्वगंधा को वहमनेबरी के नाम से जाना जाता है। हब्ब असगंधा इसका एक प्रसिद्ध योग है। हकीम दलजीत सिंह के अनुसार यह तीसरे दर्जे में उष्ण रुक्ष है। इसका गुण बाजीकरण,

Free Read/Download & Order 3000+ books authored by Yugrishi Pt. Shriram Sharma Acharya(Founder of All World Gayatri Pariwar) on all aspects of life in Hindi, Gujarati, English, Marathi & other languages at
www.vicharkrantibooks.org http://literature.awgp.org

बलवर्द्धक, शुक्रल, वीर्य पुष्टिकर है। महिलाओं को प्रसवोपरांत देने से यह बल प्रदान करता है।

रासायनिक संरचना—अश्वगंधा की जड़ में कई एल्केलाइड्स पाए गए हैं। इनकी कुल मात्रा ०.१३ से ०.३१ प्रतिशत तक होती है। वेल्थ ऑफ इंडिया के मतानुसार तेरह एल्केलाइड क्रोमेटोग्राफी की विधि से अलग किए गए हैं। इनमें प्रमुख हैं—कुस्कोहाइग्रीन, एनाहाइग्रीन, ट्रोपीन, स्युडोट्रोपीन, ऐनाफेरीन, आइसोपेलीन, टोरीन और तीन प्रकार के ट्रोपिल्टिग्लोएट। जर्मन व रूसी वैज्ञानिकों ने असगंध की जड़ में अन्य एल्केलाइड होने का भी दावा किया है, जिसमें प्रमुख हैं—विदासोमिन एवं विसामिन। एल्केलाइडों के अलावा इस क्षुप की जड़ में स्टार्च, शर्करा, ग्लाइकोसाइड्स-हेंट्रियाकाल्टेन तथा उलसिटॉल, विदनाल पाए गए हैं। इसमें बहुत से अमीनो अम्ल मुक्तावस्था में होते हैं यथा एस्पार्टिक अम्ल, ग्लाइसिन टायरोसिन, एलेनिन, प्रोलीन, ट्रिप्योफैन, ग्लूटेमिक अम्ल एवं सिस्टीन।

अश्वगंधा की पत्तियों में विदानोलाइड परिवार के पदार्थ पाए जाते हैं जो बदलते रहते हैं। पत्तियों का स्वरूप एक सा रहने पर भी रासायनिक दृष्टि से अंतर पाया गया है। बारह प्रकार के विदानोलाइड अलग-अलग पौधों से प्राप्त किए गए हैं जो एक ही क्यारी में एक साथ रोपे गए थे। इसके अलावा पत्तियों में एल्केलाइड्स, ग्लाइकोसाइड्स, ग्लूकोस एवं मुक्त अमीनो अम्ल भी पाए गए हैं।

असगंध के तने में प्रोटीन बहुतायत से पाए गए हैं। इनमें रेशा बहुत कम तथा कैल्शियम व फॉस्फोरस प्रचुर मात्रा में होते हैं। कई अमीनो अम्ल भी मुक्तावस्था में पाए गए हैं। जड़, तने तथा फल में टैनिन एवं फ्लेविनाइड भी होते हैं। इसके फलों में प्रोटीनों को पचाने वाला एक एन्जाइम कैमेस भी पाया गया है।

Free Read/Download & Order 3000+ books authored by Yugrishi Pt. Shriram Sharma Acharya(Founder of All World Gayatri Pariwar) on all aspects of life in Hindi, Gujarati, English, Marathi & other languages at
www.vicharkrantibooks.org http://literature.awgp.org

आधुनिक मत एवं वैज्ञानिक प्रयोगों के निष्कर्ष—अश्वगंधा पर सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण कार्य मद्रास में डॉ० कुप्पु राजन आदि द्वारा किया गया है। जनरल ऑफ रिसर्च इन आयर्वेद एंड सिद्धा के अनुसार (जून १९८०) ५० से ५९ वर्ष के १०१ नर वृद्धों पर इस औषधि का चूर्ण रूप में प्रयोग करने पर अश्वगंधा को आयु बढ़ाने वाला पाया गया। प्रत्येक व्यक्ति को एक वर्ष तक प्रतिदिन एक-एक ग्राम असगंध मूल चूर्ण दिन में तीन बार दूध के साथ दिया गया। कंट्रोल वर्ग की तुलना में अश्वगंधा ग्रहण करने वाले व्यक्तियों में हीमोग्लोबिन, लाल रक्त कणों की संख्या व बालों का कालापन बढ़ा। जिनकी कमर झुकती थी उनके खड़े होने का तरीका सुधरा व संधियों में लचीलापन आया। इनका सीरम कोलेस्टेरॉल (रक्त में घुलनशील वसा) घटा तथा रक्त कणों को बैठने की गति (इरिथ्रोसाइट सेडीमेण्टेशन रेट ई०एस०आर०) भी कम हुई। अध्ययन के निष्कर्ष बताते हुए वैज्ञानिकों ने कहा कि यह औषधि वृहणीय (मांस मेद बढ़ाने वाला) तथा रसायन (सप्त धातु) पोषक है।

अश्वगंधा एक प्रकार का हीमेटिनिक (रक्त लौह बढ़ाने वाला) भी है। इसमें प्रति १०० ग्राम ७०९.४ मिलीग्राम लोहा पाया गया है। यह अन्य पौधों की जड़ों में पाए जाने वाले लोहे से कहीं अधिक है। लोहे के अतिरिक्त अश्वगंधा जड़ में प्रचुर मात्रा में वेलीन, टायरोसीन, प्रेलीन, एलेनिन तथा ग्लाइसिन आदि अमीनो अम्ल मुक्तावस्था में पाए गए हैं। लोहे के साथ मुक्त अमीनो अम्लों का पाया जाना इसको अच्छा 'हीमेटिनिक टॉनिक' बनाता है।

प्रयोज्य अंग—जड़ मुख्यतः प्रयुक्त होती है। पत्तियों का भी कहीं-कहीं प्रयोग किया जाता है। इसके बीज जहरीले होते हैं।

मात्रा—(१) मूल चूर्ण १ से ३ ग्राम एक बार में। (२) क्षार १ से ३ ग्राम एक बार में। (३) घृत (जड़ का क्वाथ + समान भाग

Free Read/Download & Order 3000+ books authored by Yugrishi Pt. Shriram Sharma Acharya(Founder of All World Gayatri Pariwar) on all aspects of life in Hindi, Gujarati, English, Marathi & other languages at
www.vicharkrantibooks.org http://literature.awgp.org

मक्खन + दस गुना गोदुग्ध को उबालकर) २ चम्मच प्रातः नित्य। (४) पाक—एक किलो असगंध जौ कुट + २० किलो जल को उबालकर दो किलो शेष रहने पर छान लें। इसमें दो किलो शक्कर मिलाकर पकाने पर पाक चाशनी की तरह तैयार हो जाता है। बच्चों को एक चम्मच प्रातः-सायं तथा बड़ों को दुगनी मात्रा में देने से बलवर्द्धन करता है।

निर्धारणानुसार प्रयोग—चक्रदत्त संहिता में विद्वान चिकित्सक लिखते हैं—

पीताश्वगंधा पयसार्धमासं घृतेन तैलेन सुखाम्बुना वा।
कृशस्य पुष्टिर्वपुषो विधत्ते बालस्य सस्यस्य यथाम्बुवृष्टिः॥

मूलतः अश्वगंधा कृशकाय रोगियों, सूखा रोग से ग्रस्त बच्चों व व्याधि के उपरांत कमजोरी में, शारीरिक, मानसिक थकान में पुष्टि-कारक बलवर्द्धक के नाते प्रयुक्त होती रही है।

यकृत में वसा कोशिकाओं के अनाधिकार विस्तार (फैटीइन्फिल्ट्रेशन) से होने वाले कुपोषण, बुढ़ापे की कमजोरी, मांसपेशियों की कमजोरी व थकान, रोगों के बाद की कृशता आदि में असगंध मूल चूर्ण अथवा घृत या पाक निर्धारित मात्रा में सेवन कराते हैं। मूल चूर्ण को दूध के अनुपान के साथ देते हैं।

क्षय रोग में अन्य जीवाणुनाशी औषधियों के साथ बल्य रूप में मूलचूर्ण को गोघृत या मिसरी के साथ देते हैं। गर्भवती महिलाओं में तीन माह बल-संवर्द्धन हेतु मूल क्वाथ में चौगुना घृत मिलाकर पाक बनाकर सेवन कराते हैं।

लगातार एक वर्ष सेवन से शरीर से सारे विकार बाहर निकल जाते हैं, समग्र शोधन होकर दुर्बलता दूर हो जाती है व जीवनीशक्ति बढ़ती है। यह औषधि कायाकल्प योग की एक प्रमुख

Free Read/Download & Order 3000+ books authored by Yugrishi Pt. Shriram Sharma Acharya(Founder of All World Gayatri Pariwar) on all aspects of life in Hindi, Gujarati, English, Marathi & other languages at
www.vicharkrantibooks.org http://literature.awgp.org

औषधि मानी जाती है। इसका कल्प भी करते हैं व ऐसा माना जाता है कि इसका निरंतर उपयोग अमृता की तरह जरा को कभी समीप नहीं आने देता। अगहन-पूष माह में इसका सेवन विशेष लाभकारी है।

अन्य उपयोग—कफ वात शामक तथा वेदना संशामक होने के कारण यह वात नाड़ी संस्थान के रोगों में भी प्रयुक्त होता है। मूल से सिद्ध तैल वात व्याधि में जोड़ों पर तथा थाइराइड या ग्रंथियों की वृद्धि में पत्तों का लेप करने से भी लाभ होता है। यह नींद लाने वाला एक श्रेष्ठ हिप्नोटिक है। रक्तचाप व शोथ को कम करता है। श्वास रोग में भी असगंध क्षार अथवा चूर्ण को मधु एवं घृत के साथ देने का प्रावधान है। शुक्र दौर्बल्य, प्रदर, योनि शूल में उपयोगी है। बाल शोष, क्षय रोग, जीर्ण व्याधि यथा कैंसर से सामान्य दुर्बलता निवारण तथा वेदना दूर करने के लिए इसे देते हैं। जीवकोशों पर अपने प्रभाव के कारण यह वर्ण विकारों तथा कुष्ठ रोगों पर भी कुछ प्रभाव रखता है, ऐसा मत है।

मूलतः यह औषधि रसायन-बल्य है। इसका प्रयोग कर निश्चित ही दीर्घायुष्य को प्राप्त कर सकना संभव है। एजिंग (वार्द्धक्य) पर इस औषधि की शोध अगले दिनों जब की जाएगी तो शास्त्रों के वे सभी अभिमत सफल सिद्ध होंगे, जिनमें इसे जरा निवारक बताया गया है। एजिंग संबंधी रोग यथा—क्रानिक ऑब्सट्रक्टिव लंग डीसिज (सी०ओ०एल०डी०), डि जेनरेटिव बीमारियाँ, कैंसर प्रिकार्सीनोमट्स परिस्थितियाँ (गैस्ट्राइटिस, प्लमर विल्सन सिंड्रोम) आदि में संभवतः अगले दिनों इसकी महत्त्वपूर्ण भूमिका सिद्ध होगी। यदि ऐसा हो सका तो यह एक अति फलदायी शोध होगी।



Free Read/Download & Order 3000+ books authored by Yugrishi Pt. Shriram Sharma Acharya(Founder of All World Gayatri Pariwar) on all aspects of life in Hindi, Gujarati, English, Marathi & other languages at
www.vicharkrantibooks.org http://literature.awgp.org

बीस औषधियों पर एक विहंगम दृष्टि

विगत अध्यायों में एकाकी प्रयोग की बीस औषधियों का एक संक्षिप्त विवेचन प्रस्तुत किया गया। १० रोग संस्थान वर्ग के लिए इनके एकाकी प्रयोग को विभिन्न अनुपानों के साथ लिए जाने का विधान वैज्ञानिक हवालों के साथ प्रस्तुत किया गया। कोई अनिवार्य नहीं कि वे बीस औषधियाँ मात्र इन रोगों के लिए प्रयुक्त होती हों। इनके अन्यान्य प्रयोग भी हैं, पर अपनी सुविधा की दृष्टि से उनके श्रेष्ठ प्रभाव को दृष्टिगत रख यह विभाजन किया गया है। इनके अतिरिक्त भी उन रोगों में प्रयुक्त होने वाली और औषधियाँ हो सकती हैं।

प्रयोगकर्त्ता ध्यान में रखें कि ताजी औषधि ही प्रयुक्त होती है अथवा चूर्ण। पौधों के जंजाल में वे न पड़ें। जनमानस में लोकप्रिय बनाने के लिए इन सूक्ष्मीकृत चूर्ण रूपों को ही देने की व्यवस्था बनाई गई है। कहीं-कहीं उनके अन्य स्वरूपों का भी वर्णन किया गया है, यथा-क्षार, घृत, स्वरस, क्वाथ, घनसत्व। वे भी प्राकृतिक स्वरूप ही हैं। विधि बड़ी सरल है। अतः चूर्ण के अतिरिक्त जहाँ संभव व अनिवार्य हो, इन स्वरूपों का भी प्रयोग करें। शांतिकुंज से तो मात्र चूर्ण उपलब्ध कराने की व्यवस्था की गई है। अगले दिनों नर्सरी लग सके व सबको पौध भी दी जा सके इसकी तैयारी चल रही है। इन औषधियों के कौन-कौन से अंग प्रयुक्त होने हैं, उन्हें संक्षेप में फिर एक बार दोहरा लेना उचित होगा।

मुलहठी-मूलस्तंभ; आँवला-पके फल; विल्व-फल की मज्जा, पत्र, मूल एवं छाल; हरीतकी-छोटी हरड़ फल; अडूसा-पत्र, पुष्प,

Free Read/Download & Order 3000+ books authored by Yugrishi Pt. Shriram Sharma Acharya(Founder of All World Gayatri Pariwar) on all aspects of life in Hindi, Gujarati, English, Marathi & other languages at
www.vicharkrantibooks.org http://literature.awgp.org

मूलत्वक, पंचांग; भारंगी-मूल; पुनर्नवा श्वेत-पंचांग, अर्जुन-तने की छाल; ब्राह्मी-पंचांग, शंखपुष्पी-पंचांग; निर्गुंडी-पत्र, मूल एवं बीज; सोंठ-भौमिक कांड; नीम-कांड एवं मूल की छाल, कोपल, पुष्प, बीज, गोंद, नीर; सारिवा-मूल; चिरायता-पंचांग एवं पुष्प; गिलोय-कांड तथा पत्ते; अशोक-त्वक, बीज, पुष्प; गोक्षुर-फल, पंचांग एवं मूल; शतावर-मूल कंद; असगंध-मूल, पत्र। इस विवेचन के उपरांत तुलसी को सब रोगों की एक औषधि के रूप में तथा पाँच स्थानीय उपचार की औषधियों का वर्णन किया जा रहा है।



न वा उ मां वृजने वारयन्ते न पर्वतासो यदहं मनस्ये।
मम स्वनात्कृधुकर्णो भयात एवेदनु द्यून्किरणः समेजात्॥

हे मनुष्यो! तुम्हारी आत्मविश्वास की शक्ति बड़ी प्रबल है। तुम्हारे निश्चय को कोई मिटा नहीं सकता। साधारण विघ्नों की तो बात ही क्या, बड़े-बड़े पर्वत तक तुम्हारी राह रोक नहीं सकते। तुम सूर्य से भी अधिक बलवान हो।

—ऋग्वेद १०/२७/५

Free Read/Download & Order 3000+ books authored by Yugrishi Pt. Shriram Sharma Acharya(Founder of All World Gayatri Pariwar) on all aspects of life in Hindi, Gujarati, English, Marathi & other languages at
www.vicharkrantibooks.org http://literature.awgp.org

२१. समस्त रोगों की एक औषधि तुलसी
ऑसीमम सैंक्टम

'तुलसी' शब्द का विश्लेषण करने पर ज्ञात होता है कि जिस वनस्पति की किसी से तुलना न की जा सके वह तुलसी है। तुलसी को हिंदू धर्म में जगज्जननी का पद प्राप्त है। उसे वृंदा भी कहा गया है। तुलसी के महात्म्यों व कारण शक्ति के सूक्ष्म प्रभावों से पुराणों के अध्याय भरे पड़े हैं। सर्वरोग निवारक तथा जीवनशक्ति संवर्द्धक इस औषधि को संभवत: प्रत्यक्ष देव माना जाना इसी तथ्य पर आधारित है कि ऐसी सस्ती, सुलभ, सुंदर तथा उपयोगी वनस्पति मनुष्य समुदाय के लिए कोई और नहीं है।

वानस्पतिक परिचय—तुलसी सदा हरित होती है। साधारणत: मार्च से जून तक इसे लगाते हैं। सितंबर और अक्टूबर में वह फूलता है। सारा पौधा सुगंधित मंजरियों से लद जाता है। जाड़े के दिनों में इसके बीज पकते हैं। यह बारहों माह किसी न किसी रूप में प्राप्त किया जा सकता है। तुलसी की सामान्यतया निम्न प्रजातियाँ पाई जाती हैं—

(१) ऑसीमम अमेरिकनम (काली तुलसी) गंभीरा या मामरी। (२)ऑसीमम वेसिलिकम (मरुआ तुलसी) मुंजरिकी या सुरसा। (३)ऑसीमम वेसिलिकम मिनिमम। (४) ऑसीमम ग्रेटिसिकम (राम तुलसी वन तुलसी)। (५) ऑसीमम किलिमंडचेरिकम (कर्पूर तुलसी)। (६)ऑसीमम सैक्टम तथा (७) ऑसीमम विरिडी।

इनमें ऑसीमम सैंक्टम को प्रधान या पवित्र तुलसी माना जाता है। इसकी भी दो प्रधान प्रजातियाँ हैं—श्री तुलसी जिसकी पत्तियाँ हरी

Free Read/Download & Order 3000+ books authored by Yugrishi Pt. Shriram Sharma Acharya(Founder of All World Gayatri Pariwar) on all aspects of life in Hindi, Gujarati, English, Marathi & other languages at
www.vicharkrantibooks.org http://literature.awgp.org

होती हैं तथा कृष्णा तुलसी जिसकी पत्तियाँ नीलाभ कुछ बैंगनी रंग लिए होती हैं। श्री तुलसी के पत्र तथा शाखाएँ श्वेताभ होते हैं जबकि कृष्ण तुलसी के पत्रादि कृष्ण रंग के होते हैं। गुण, धर्म की दृष्टि से काली तुलसी को ही श्रेष्ठ माना गया है, परंतु अधिकांश विद्वानों का मत है कि दोनों ही गुणों में समान हैं। श्री भाव मिश्र कहते हैं—**श्यामा शुक्ला च कृष्णा च गुणैस्तुल्या प्रकीर्तिता।**

तुलसी का गुल्म के समान क्षुप १ से ३ फीट ऊँचा, शाखायुक्त, रोमश, बैंगनी आभा के लिए होता है। पत्र १ से २ इंच लंबे अंडाकार या आयताकार होते हैं। प्रत्येक पत्र में एक प्रकार की तीव्र सुगंध होती है। पुष्प मंजरी अति कोमल एवं ८ इंच लंबी और अनेक रंग की छटाओं से मंडित होती है। इस पर बैंगनी या रक्त सी आभा लिए बहुत छोटे पुष्प चक्रों में लगते हैं। पुष्प प्रायः हृदयवत होते हैं। बीज चपटे पीतवर्ण के छोटे काले चिह्नों से युक्त अंडाकार होते हैं। पुष्प शीतकाल में आते हैं।

संग्रह संरक्षण—पत्र, मूल, बीज उपयोगी अंग हैं। इन्हें सुखाकर मुख बंद पात्रों में सूखे शीतल स्थानों पर रखा जाता है। इन्हें एक वर्ष तक प्रयोग में लाया जा सकता है। सर्वत्र एवं सर्वदा सुलभ होने से पत्रों का प्रयोग ताजी अवस्था में किया जाना ही श्रेष्ठ है। ऐसा शास्त्रीय मत है कि पत्तों को पूर्णिमा, अमावस्या, द्वादशी, सूर्य संक्राति के दिन, मध्याह्न काल, रात्रि और दोनों संध्याओं के समय बिना नहाए धोए न तोड़ा जाए। उपयुक्त समय पर तोड़ा जाना धार्मिक महत्त्व रखता है। जल में रखे जाने पर ताजा पत्र भी तीन रात्रि तक पवित्र रहता है।

यह पौधा सामान्यतया दो-तीन वर्षों तक जवान बना रहता है। इसके बाद इसकी वृद्धावस्था आ जाती है तो पत्ते कम और छोटे आते

Free Read/Download & Order 3000+ books authored by Yugrishi Pt. Shriram Sharma Acharya(Founder of All World Gayatri Pariwar) on all aspects of life in Hindi, Gujarati, English, Marathi & other languages at
www.vicharkrantibooks.org http://literature.awgp.org

हैं। सूखी-सूखी डंठलें खड़ी दिखाई देती हैं। तब उसे हटाकर नया पौधा लगाने की आवश्यकता प्रतीत होती है।

गुण-कर्म संबंधी विभिन्न मत—हिंदू धर्म संस्कृति के चिर पुरातन ग्रंथ वेदों में भी तुलसी के गुणों एवं उसकी उपयोगिता का वर्णन मिलता है। अथर्ववेद (१-२४) में वर्णन मिलता है—

सरूपकृत् त्वमोषधेसा सरूपमिदं कृधि।
श्यामा सरूपंकरणी पृथिव्या अध्युद्भृता।
इदमूषु सप्रसाधय पुना रूपाणि कल्पय॥

—*अथर्ववेद १/२४/३-४*

श्यामा तुलसी मानव के स्वरूप को बनाती है, शरीर के ऊपर के सफेद धब्बे अथवा अन्य प्रकार के त्वचा संबंधी रोगों को नष्ट करने वाली अत्युत्तम महौषधि है।

महर्षि चरक तुलसी के गुणों का वर्णन करते हुए लिखते हैं—

हिक्काकासविषश्वास पार्श्वशूलविनाशनः।
पित्तकृत् कफवातघ्नः सुरसः पूतिगन्धहा॥

तुलसी हिचकी, खाँसी, विष, श्वास रोग और पार्श्व शूल को नष्ट करती है। यह पित्त कारक, कफ-वात नाशक तथा शरीर एवं भोज्य पदार्थों की दुर्गंध को दूर करती है। सूत्र स्थान में वे लिखते हैं—

गौरवे शिरसः शूले पीनसे ह्यहिफेनके।
क्रिमिव्याधावपस्मारे घ्राणनाशे प्रेमहके॥ —२/५

सिर का भारी होना, पीनस, माथे का दरद, आधा शीशी, मिरगी, नासिका रोग, कृमि रोग तुलसी से दूर होते हैं। सुश्रुत महर्षि का मत भी इससे अलग नहीं है। वे लिखते हैं—

कफानिलविषश्वासकास दौर्गन्धनाशनः।
पित्तकृत्कफवातघ्नः सुरसः समुदाहृतः॥

—*सूत्र ४६*

Free Read/Download & Order 3000+ books authored by Yugrishi Pt. Shriram Sharma Acharya(Founder of All World Gayatri Pariwar) on all aspects of life in Hindi, Gujarati, English, Marathi & other languages at
www.vicharkrantibooks.org http://literature.awgp.org

तुलसी कफ, वात, विष विकार, श्वास-खाँसी और दुर्गंधनाशक है। पित्त को उत्पन्न करती है तथा कफ और वायु को विशेष रूप से नष्ट करती है। भावप्रकाश में उद्धरण है—

तुलसी पित्तकृद् वातकृमिदौर्गन्धनाशिनी।
पार्श्वशूलारतिश्वास-कास हिक्काविकारजित्॥

तुलसी पित्तनाशक, वात-कृमि तथा दुर्गंधनाशक है। पसली का दरद, अरुचि, खाँसी, श्वास, हिचकी आदि विकारों को जीतने वाली है। आगे वे लिखते हैं—यह हृदय के लिए हितकर, उष्ण तथा अग्निदीपक है एवं कुष्ट, मूत्र विकार, रक्त विकार, पार्श्वशूल को नष्ट करने वाली है। श्वेत तथा कृष्ण तुलसी दोनों ही गुणों में समान हैं।

निघंटुकार के अनुसार तुलसी पत्र अथवा पत्र स्वरस उष्ण, कफ-निस्सारक, शीतहर, स्वेदजनन, दीपन, कृमिघ्न, दुर्गंधनाशक व प्रतिदूषक होता है। इसके बीज मधुर, स्निग्ध, शीतल एवं मूत्रजनन होते हैं।

लगभग इनसे मिलता-जुलता ही मत धन्वंतरि निघंटुकार का भी है। शास्त्र अभिमत है कि तुलसी की जड़ विषम ज्वर को शांत करती है तथा बीज वीर्य को गाढ़ा बनाता है। शांतिदायक होता है। सूखा पौधा समग्र रूप में चूर्ण रूप में लिए जाने पर यकृतोत्तेजक पाचक रस बढ़ाने का अद्वितीय गुण रखता है।

वनौषधि चंद्रोदय ग्रंथ के अनुसार आँतों के अंदर तुलसीपत्र स्वरस का प्रभाव कृमिनाशक एवं वातशामक होता है। वमन बंद होता है और पुराना कब्ज दूर होता है। दाद पर इसका रस चुपड़ने से दाद मिटता है। व्रणों को इसके स्वरस से मर्जित करने पर उनमें संक्रमण नहीं बढ़ता तथा वे जल्दी भर जाते हैं। इसके गर्भ निरोधक गुणों की चर्चा भी शास्त्रों में की गई है। तुलसीपत्र के काढ़े की एक प्याली यदि

Free Read/Download & Order 3000+ books authored by Yugrishi Pt. Shriram Sharma Acharya(Founder of All World Gayatri Pariwar) on all aspects of life in Hindi, Gujarati, English, Marathi & other languages at
www.vicharkrantibooks.org http://literature.awgp.org

प्रतिमास रजोदर्शन के बाद तीन दिन तक नियमित रूप से सेवन की जाए तो गर्भस्थापना नहीं होता।

कुष्ठ का प्रभाव अगर त्वचा के अलावा मांस अस्थियों को भी प्रभावित कर चुका हो तो तुलसी के प्रयोग से उसका भी नाश होता है। एक विद्वान का मत है कि तुलसी में नर व मादा दो जातियाँ होती हैं। नर जाति पुरुष रोगों के लिए तथा मादा जाति स्त्री रोगों में काम लाई जाती है। यह कहाँ तक सही है व कैसे इन्हें पहचाना जाए, यह शोध का विषय है।

आचार्य प्रियव्रत शर्मा के अनुसार सभी प्रकार के कफ, वात विकारों में तुलसी उपयोगी है। स्थानीय लेप के रूप में व्रणों, शोथ, संधि पीड़ा, मोच आदि में इसका लेप करते हैं। अवसाद एवं लो ब्लडप्रेशर की स्थिति में इसे त्वचा पर मलने से तुरंत स्नायु संस्थान सक्रिय होता है। शरीर के बाहरी कृमियों में भी इसका लेप करते हैं। उनके अनुसार यह अग्निमंदता, किसी भी प्रकार के उदरशूल तथा आँतों के कृमियों में उपयोगी है। बीज प्रवाहिका में देने पर तुरंत लाभ करते हैं। यह हृदयोत्तेजक है तथा रक्त विकारों का शोधन करती है। खाँसी, दमा तथा इस कारण मांसपेशियों व रीढ़ की हड्डी में जकड़न में इसका स्वरस बहुत उपयोगी है।

आचार्य शर्मा के अनुसार मूत्रदाह व विसर्जन में कठिनाई तथा ब्लैडर की सूजन व पथरी में बीज चूर्ण तुरंत लाभ करता है। कुष्ठ की यह सर्वश्रेष्ठ औषधि है। यह विषम ज्वर को मिटाती है। किसी भी प्रकार के ज्वर के चक्र को यह तुरंत तोड़ती है। राजयक्ष्मा में भी इसके प्रयोग सफल रहे हैं। जीवनीशक्ति बढ़ाकर यह रोगाणुओं को पलने नहीं देती। यह मलेरिया विरोधी है। क्षुप घर के आस-पास लगाने से मच्छर नहीं समीप आते, इसके स्वरस का लेप करने से वे काटते नहीं

Free Read/Download & Order 3000+ books authored by Yugrishi Pt. Shriram Sharma Acharya(Founder of All World Gayatri Pariwar) on all aspects of life in Hindi, Gujarati, English, Marathi & other languages at
www.vicharkrantibooks.org http://literature.awgp.org

तथा मुख द्वारा ग्रहण किए जाने पर उन्हें सक्रिय संघटक नष्ट कर देते हैं। बीज रसायन भी हैं तथा दुर्बलता का नाश करते हैं।

डॉ० खोरी के अनुसार श्वेत तुलसी उष्ण व पाचक है। यह बालकों के प्रतिश्याय तथा रोगों में प्रयुक्त होती है। काली तुलसी कफ निस्सारक एवं ज्वरनाशक है। सूखे पत्तों का चूर्ण पीनस (साइनोसाइटिस) के लिए प्रयुक्त होता है। तुलसी सिद्ध तेल कर्णशूल मिटाता है।

तुलसी रस में मलेरिया ज्वर के कारण प्रोटोजोआ पैरेसाइट को तथा मच्छरों को नष्ट करने की अद्‌भुत क्षमता है। पहली बार सन् १९०७ में इंग्लैंड में इंपीरियल मेडीकल कान्फ्रेंस में इस बात का रहस्योद्‌घाटन किया गया कि काली तुलसी से मलेरिया का उपद्रव बहुत कम हो जाता है। इसके बाद बहुत से अनुसंधान इस क्षेत्र में हुए हैं व बड़े सफल रहे हैं। सभी में पाया गया कि तुलसीपत्रों से स्पर्श की हुई वायु में ऐसे गुण होते हैं कि मच्छर उस पूरे परिसर के आस-पास फटकते भी नहीं। वैज्ञानिकों ने तुलसी के अंदर एक ऐसा उड़नशील तेल पाया है जो हवा में मिलकर ज्वर उत्पन्न करने वाले सब कीटाणुओं को नष्ट कर देता है। सरदी से चढ़ने वाले ज्वर में विशेषकर ट्रॉपिकल क्षेत्रों के ज्वर में यह पाया गया है कि इसके सेवन से सरदी छाती में उतरने नहीं पाती तथा छाती में बैठा कफ श्वास मार्ग से बाहर निकल जाता है। स्वरस में इतनी तीव्र सामर्थ्य है कि इससे कृमि तुरंत मर जाते हैं और दस्त साफ होता है। वमन का तुरंत शमन होता है।

डॉ० नादकर्णी के अनुसार तुलसी में कुछ ऐसे गुण हैं, जिनके कारण यह शरीर की विद्युतीय संरचना को सीधे प्रभावित करती है। तुलसी की लकड़ी से बने दानों की माला गले में पहनने से शरीर में विद्युत शक्ति का प्रभाव बढ़ता है तथा जीवकोशों द्वारा उनको धारण करने की सामर्थ्य में वृद्धि होती है। बहुत से रोग इस प्रभाव से आक्रमण

Free Read/Download & Order 3000+ books authored by Yugrishi Pt. Shriram Sharma Acharya(Founder of All World Gayatri Pariwar) on all aspects of life in Hindi, Gujarati, English, Marathi & other languages at
www.vicharkrantibooks.org http://literature.awgp.org

करने के पूर्व ही समाप्त हो जाते हैं तथा व्यक्ति की जीवनावधि बढ़ती है। डॉ० नादकर्णी के अनुसार कमजोर व्यक्ति यदि स्वल्प मात्रा में भी तुलसी की जड़ का चूर्ण प्रातः-सायं घी के साथ लें तो उनका ओजस व बल बढ़ता है।

डॉ० खगेंद्र नाथ वसु ने भी तुलसी की विद्युतीय सामर्थ्य का लोहा माना है। वे लिखते हैं कि तुलसी का थोड़ा सा भी शरीर से संपर्क संक्रामक व्याधियों को निरस्त कर देता है। तुलसी गुल्म के नीचे की मिट्टी को खाकर और उसे शरीर से लगाकर भी लोग व्याधिमुक्त होते पाए गए हैं। इस कथन में कितनी सत्यता है, इसका विश्लेषण तो वैज्ञानिक शोध प्रक्रिया द्वारा ही संभव है। संभवतः इसी कारण मंदिर, मसजिदों तथा गिरिजाघरों के आस-पास तुलसी के पौधे लगाए जाने का प्रावधान रहा हो।

होम्योपैथिक मत—भारतीय व यूरोपीय दोनों ही होम्योपैथ सिद्धांत तुलसी को अमृतोपम मानते हैं। बंगाल के डॉ० विश्वास कहते हैं कि तुलसी अनेकानेक लक्षणों में लाभकारी औषधि है। सिर में दरद, स्मरण शक्ति में कमी, बच्चों का चिड़चिड़ापन, आँखों की लाली, एलर्जी के कारण छींकें आना, नाक बहना, मुँह में छाले, गले में दरद, पेशाब में जलन, दमा तथा जीर्ण ज्वर जैसे बहुत प्रकार के लक्षणों में तुलसी को होम्योपैथी में स्थान दिया गया है। इसका २,३,६,३० तथा २०० वीं पोटेन्सी में प्रयोग कर इन सभी रोगों में लाभ पाए गए हैं।

ब्राजील में तुलसी की ऑसीमम कैनन नामक जाति पाई जाती है। डॉ० भरे व बोरिक यह मानते हैं कि यह प्रजनन तथा मूत्रवाही संस्थान रोगों की श्रेष्ठ औषधि है।

यूनानी मत—इसके अनुसार तुलसी हृदयोत्तेजक, बलवर्द्धक तथा यकृत आमाशय बलदायक है। यह हृदय को बल देने वाली

Free Read/Download & Order 3000+ books authored by Yugrishi Pt. Shriram Sharma Acharya(Founder of All World Gayatri Pariwar) on all aspects of life in Hindi, Gujarati, English, Marathi & other languages at
www.vicharkrantibooks.org http://literature.awgp.org

होने के कारण अनेक प्रकार के शोथ-विकारजन्य रोगों में आराम देती है। यह शिर:शूल की श्रेष्ठ औषधि है। पत्ते सूँघने से मूर्च्छा दूर होती है तथा चबाने से दुर्गंध। रस कान में टपकाने से कर्णशूल शांत होता है।

रासायनिक संगठन—तुलसी में अनेकों जैव सक्रिय रसायन पाए गए हैं, जिनमें ट्रैनिन, सैपोनिन, ग्लाइकोसाइड और एल्केलाइड्स प्रमुख हैं। अभी भी पूरी तरह से इनका विश्लेषण नहीं हो पाया है।

प्रमुख सक्रिय तत्त्व है—एक प्रकार का पीला उड़नशील तेल, जिसकी मात्रा तथा संगठन स्थान व समय के अनुसार बदलते रहते हैं। ०.१ से ०.३ प्रतिशत तक तेल पाया जाना सामान्य बात है। 'वैल्थ ऑफ इंडिया' के अनुसार इस तेल में लगभग ७१ प्रतिशत यूजीनॉल, बीस प्रतिशत यूजीनॉल मिथाइल ईथर तथा तीन प्रतिशत कार्वाकोल होता है। श्री तुलसी में श्यामा की अपेक्षा कुछ अधिक तेल होता है तथा इस तेल का सापेक्षिक घनत्व भी कुछ अधिक होता है। तेल के अतिरिक्त पत्रों में लगभग ८३ मिलीग्राम प्रतिशत विटामिन सी एवं २.५ मिलीग्राम प्रतिशत कैरीटीन होता है।

तुलसी बीजों में हरे-पीले रंग का तेल लगभग १७.८ प्रतिशत की मात्रा में पाया जाता है। इसके घटक हैं—कुछ सीटोस्टेरॉल, अनेकों वसा अम्ल मुख्यत: पामिटिक, स्टीयरिक, ओलिक, लिनोलक और लिनोलिक अम्ल। तेल के अलावा बीजों में श्लेष्मक प्रचुर मात्रा में होता है। इस म्युसिलेज के प्रमुख घटक हैं—पेन्टोस, हेक्जा यूरोनिक अम्ल और राख। राख लगभग ०.२ प्रतिशत होती है।

आधुनिक मत एवं वैज्ञानिक प्रयोगों के निष्कर्ष—इंडियन ड्रग्स पत्रिका (अगस्त १९७७) के अनुसार तुलसी में विद्यमान रसायन वस्तुत:उतने ही गुणकारी हैं, जितना वर्णन शास्त्रों में किया गया है।

Free Read/Download & Order 3000+ books authored by Yugrishi Pt. Shriram Sharma Acharya(Founder of All World Gayatri Pariwar) on all aspects of life in Hindi, Gujarati, English, Marathi & other languages at
www.vicharkrantibooks.org http://literature.awgp.org

यह कीटनाशक है, कीट प्रतिकारक तथा प्रचंड रोगाणुनाशक है। विशेषकर एनाफिलिस जाति के मच्छरों के विरुद्ध इसका कीटनाशी प्रभाव उल्लेखनीय है। डॉ० पुष्पगंधन एवं सोबती ने अपने खोजपूर्ण लेख में बड़े विस्तार से विश्व भर में चल रहे प्रयासों की जानकारी दी है।

'एंटीवायटिक्स एंड कीमोथेरेपी' पत्रिका के अनुसार तुलसी का ईथर निष्कर्ष टी०वी० के रोगाणु माइक्रोवैक्टीरियम ट्यूवर-कुलोसिस का बढ़ना रोक देता है। सभी आधुनिकतम औषधियों की तुलना में यह निष्कर्ष अधिक सांद्रता में श्रेष्ठ ही बैठता है। श्री रामास्वामी एवं सिरसी द्वारा दिए गए शोध परिणामों (द इंडियन जनरल ऑफ फार्मेसी मई-१९६७) के अनुसार तुलसी की टी०वी० नाशक क्षमता विलक्षण है। इस जीवाणु के ह्यूमन स्ट्रेन की वृद्धि को भी यह औषधि रोकती है।

'वेल्थ ऑफ इंडिया' के अनुसार तुलसी का स्वरस तथा निष्कर्ष कई अन्य रोगाणुओं के विरुद्ध भी सक्रिय पाया गया है। इनमें प्रमुख हैं—स्टेफिलोकोकस आंरियस, साल्मोनेला टाइफोसा और एक्केरेशिया कोलाई। इसकी जीवाणुनाशी क्षमता कार्बोलिक अम्ल से ६ गुना अधिक है। नवीनतम शोधों में तुलसी की जीवाणुनाशी सक्रियता अन्यान्य जीवाणुओं के विरुद्ध भी सिद्ध की गई है। डॉ० कौल एवं डॉ० निगम (जनरल ऑफ रिसर्च इन इंडियन मेडीसिन योगा एंड होम्योपैथी १२/३/१९७७) के अनुसार तुलसी का उत्पत तेल क्लेवसिला न्यूमोंनी, प्रोटिंस बल्गेरिस केन्डीडां एल्बीकेन्स जैसे घातक रोगाणुओं के विरुद्ध भी सक्रिय पाया गया है।

डॉ० भाट एवं बोरकर के शोध निष्कर्षों के अनुसार (जे० एस० आई० आर०) तुलसी के बीजों में एण्टोकोएगुलेट संघटक होता है, जो

Free Read/Download & Order 3000+ books authored by Yugrishi Pt. Shriram Sharma Acharya(Founder of All World Gayatri Pariwar) on all aspects of life in Hindi, Gujarati, English, Marathi & other languages at www.vicharkrantibooks.org http://literature.awgp.org

स्टेफिलोकोएगुलेस के रक्त में प्रभाव को निरस्त करता है। इनके अतिरिक्त तुलसी के मधुमेह प्रतिरोधी, गर्भ निरोध तथा ज्वरनाशी प्रभावों पर भी विस्तार से वैज्ञानिक अध्ययन चल रहा है। संभावना है कि शास्त्रोक्त सभी प्रभावों को अगले दिनों प्रयोगशाला में सिद्ध किया जा सकेगा।

तुलसी की आध्यात्मिक पृष्ठभूमि—तुलसी को दैवी गुणों से अभिपूरित मानते हुए इसके विषय में आध्यात्मिक ग्रंथों में काफी कुछ लिखा गया है। इसे संस्कृत में 'हरिप्रिया' कहते हैं। इस औषधि की उत्पत्ति से भगवान विष्णु का मनःसंताप दूर हुआ, इसी कारण यह नाम इसे दिया गया है। ऐसा विश्वास है कि तुलसी की जड़ में सभी तीर्थ, मध्य में सभी देवि-देवियाँ और ऊपरी शाखाओं में सभी वेद स्थित हैं। इस पौधे की पूजा विशेषकर स्त्रियाँ करती हैं। वैसे वर्ष भर तुलसी के थाँवले का पूजन होता है, परंतु विशेष रूप से कार्तिक मास में इसे पूजते हैं। ऐसा कहा जाता है, जिनके मृत शरीर का दहन तुलसी की लकड़ी की अग्नि से किया जाता है, वे मोक्ष को प्राप्त होते हैं, उनका पुनर्जन्म नहीं होता।

पद्म पुराण में लिखा है कि जहाँ तुलसी का एक भी पौधा होता है वहाँ ब्रह्मा, विष्णु, शंकर भी निवास करते हैं। आगे वर्णन आता है कि तुलसी की सेवा करने से महापातक भी उसी प्रकार नष्ट हो जाते हैं, जैसे सूर्य के उदय होने से अंधकार नष्ट हो जाता है। कहते हैं कि जिस प्रसाद में तुलसी नहीं होता उसे भगवान स्वीकार नहीं करते।

वनस्पति को प्रत्यक्ष देव मानने और घर-घर में उसे लगाने, पूजा करने के पीछे संभवतः यही कारण है कि यह सर्वदोष निवारक

Free Read/Download & Order 3000+ books authored by Yugrishi Pt. Shriram Sharma Acharya(Founder of All World Gayatri Pariwar) on all aspects of life in Hindi, Gujarati, English, Marathi & other languages at
www.vicharkrantibooks.org http://literature.awgp.org

औषधि सर्वसुलभ तथा सर्वोपयोगी है। वातावरण में पवित्रता, प्रदूषण का शमन, घर-परिवार में आरोग्य की जड़ें मजबूत करने, श्रद्धा तत्त्व को जीवित करने जैसे अनेकों लाभ इसके हैं। तुलसी की सूक्ष्म व कारणशक्ति अद्वितीय है। यह आत्मोन्नति का पथ प्रशस्त करती है तथा गुणों की दृष्टि से संजीवनी बूटी है। तुलसी की आराधना करते हुए ग्रंथ लिखते हैं—

महाप्रसादजननी सर्वसौभाग्यवर्धिनी।
आधिव्याधिहरीर्नित्यं तुलेसित्वं नमोऽस्तुते॥

हे तुलसी! आप संपूर्ण सौभाग्यों को बढ़ाने वाली हैं, सदा आधि-व्याधि को मिटाती हैं, आपको नमस्कार है।

अकालमृत्युहरणंसर्वव्याधिविनाशनम्॥

तुलसी को अकाल मृत्यु हरण करने वाली और संपूर्ण रोगों को दूर करने वाली माना गया है।

रोपनात् पालनात् सेकाद् दर्शनात्स्पर्शनान्नृणाम्।
तुलसी दह्यते पापं वाङमनः काय सञ्चितम्॥

तुलसी को लगाने से, पालने से, सींचने से, दर्शन करने से, स्पर्श करने से, मनुष्यों के मन, वचन और काया से संचित पाप जल जाते हैं। वायु पुराण में तुलसी पत्र तोड़ने के कुछ नियम मर्यादाएँ बताते हुए लिखा है—

अस्नात्वा तुलसीं छित्वा यः पूजां कुरुते नरः।
सोऽपराधी भवेत् सत्यं तत् सर्वनिष्फलं भवेत्॥

बिना स्नान किए तुलसी को तोड़कर जो मनुष्य पूजा करता है, वह अपराधी है। उसकी की हुई पूजा निष्फल जाती है, इसमें कोई संशय नहीं।

व्यावहारिक प्रयोग—जड़, पत्र, बीज व पंचांग प्रयुक्त करते हैं।

Free Read/Download & Order 3000+ books authored by Yugrishi Pt. Shriram Sharma Acharya(Founder of All World Gayatri Pariwar) on all aspects of life in Hindi, Gujarati, English, Marathi & other languages at
www.vicharkrantibooks.org http://literature.awgp.org

मात्रा—स्वरस १० से २० ग्राम। बीज चूर्ण १ से २ ग्राम। क्वाथ १ से २ औंस।

(१) खाँसी अथवा गला बैठने पर तुलसी की जड़ सुपारी की तरह चूसी जाती है। काली तुलसी का स्वरस लगभग डेढ़ चम्मच काली मिर्च के साथ देने से खाँसी का वेग एकदम शांत होता है। फेफड़ों में खरखराहट की आवाज आने व खाँसी होने पर तुलसी की सूखी पत्तियाँ ४ ग्राम मिसरी के साथ देते हैं। हिचकी एवं श्वास रोगों में तुलसी पत्र स्वरस १० ग्राम शहद के साथ (५ ग्राम) देते हैं।

श्वास रोगों में तुलसी के पत्ते काले नमक के साथ सुपारी की तरह मुँह में रखने से आराम मिलता है। जुकाम में तुलसी का पंचांग व अदरक समान भाग लेकर क्वाथ बनाते हैं। इसे दिन में तीन बार लेते हैं।

(२) ज्वर यदि विषम प्रकार का हो तो तुलसी पत्र का क्वाथ ३-३ घंटे पश्चात सेवन करने का विधान है अथवा ३ ग्राम स्वरस मधु के साथ ३-३ घंटे में लें। हलके ज्वर में कब्ज भी साथ हो तो काली तुलसी का स्वरस (१० ग्राम) एवं गौ घृत (१० ग्राम) दोनों को एक कटोरी में गुनगुना करके इस पूरी मात्रा को दिन में २ या ३ बार लेने से कब्ज भी मिटता है, ज्वर भी। तुलसी की जड़ का काढ़ा भी आधे औंस की मात्रा में दो बार लेने से ज्वर में लाभ पहुँचाता है। एक सामान्य नियम सभी प्रकार के ज्वरों के लिए यह है कि बीस तुलसी दल एवं दस काली मिर्च मिलाकर क्वाथ पिलाने से तुरंत ज्वर उतर जाता है। मोतीझरा (टायफायड) में १० तुलसीपत्र १ माशा जावित्री के साथ पानी में पीसकर शहद के साथ दिन में चार बार देते हैं।

Free Read/Download & Order 3000+ books authored by Yugrishi Pt. Shriram Sharma Acharya(Founder of All World Gayatri Pariwar) on all aspects of life in Hindi, Gujarati, English, Marathi & other languages at
www.vicharkrantibooks.org http://literature.awgp.org

(३) वमन की स्थिति में तुलसीपत्र स्वरस मधु के साथ प्रातःकाल व जब आवश्यकता हो पिलाते हैं। पाचनशक्ति बढ़ाने के लिए, अपच रोगों के लिए तथा बालकों के यकृत प्लीहा संबंधी रोगों के लिए तुलसी के पत्रों का फांट पिलाते हैं। छोटी इलायची, अदरक का रस व तुलसी के पत्र का स्वरस मिलाकर देने पर उल्टी की स्थिति को शांत करते हैं। दस्त लगने पर तुलसीपत्र भुने जीरे के साथ मिलाकर (१० तुलसीदल +१ माशा जीरा) शहद के साथ दिन में तीन बार चाटने से लाभ मिलता है। अपच में मंजरी को काले नमक के साथ देते हैं। बवासीर रोग में तुलसी पत्र स्वरस मुँह से लेने पर तथा स्थानीय लेप रूप में तुरंत लाभ करता है।

बालकों के संक्रामक अतिसार रोगों में तुलसी के बीज पीसकर गौदुग्ध में मिलाकर पीने से लाभ होता है। प्रवाहिका में स्वरस १० ग्राम प्रातः लेने पर रोग आगे नहीं बढ़ता। कृमि रोगों में तुलसी के पत्रों का फांट सेवन करने से कृमिजन्य सभी उपद्रव शांत हो जाते हैं। उदर शूल में तुलसी दलों को मिसरी के साथ देते हैं तथा संग्रहणी में बीज चूर्ण ३ ग्राम सुबह-शाम मिसरी के साथ। अर्श में इसी चूर्ण को दही के साथ भी दिया जाता है।

(४) कुष्ठ रोग में तुलसीपत्र स्वरस प्रतिदिन प्रातः पीने से लाभ होता है। दाद, छाजन व खाज में तुलसी पंचांग नींबू के रस में मिलाकर लेप करते हैं। उठते हुए फोड़ों में तुलसी के बीज एक माशा तथा दो गुलाब के फूल एक साथ पीसकर ठंडाई बनाकर पीते हैं। पित्ती निकलने पर मंजरी व पुनर्नवा की पत्ती समान भाग लेकर क्वाथ बनाकर पिएँ। चेहरे के मुँहासों में तुलसीपत्र एवं संतरे का रस मिलाकर रात्रि को चेहरा धोकर अच्छी तरह से लेप करते हैं। व्रणों को शीघ्र भरने तथा संक्रमणग्रस्त जख्मों को धोने के लिए तुलसी के पत्तों का

Free Read/Download & Order 3000+ books authored by Yugrishi Pt. Shriram Sharma Acharya(Founder of All World Gayatri Pariwar) on all aspects of life in Hindi, Gujarati, English, Marathi & other languages at
www.vicharkrantibooks.org http://literature.awgp.org

क्वाथ बनाकर उसका ठंढा लेप करते हैं। रक्त विकारों में तुलसी व गिलोय का तीन-तीन माशे की मात्रा में क्वाथ बनाकर दो बार मिसरी के साथ लेते हैं।

(५) आधा शीशी के दरद में तुलसी की छाया में सुखाई मंजरी (२ ग्राम) शहद के साथ दी जाती है। मेधावर्द्धन हेतु तुलसी के पाँच पत्ते जल के साथ प्रतिदिन प्रातः निगलना चाहिए। असाध्य शिरोशूल में तुलसी पत्र रस कपूर मिलाकर सिर पर लेप करते हैं, तुरंत आराम मिलता है।

संधिशोथ में अथवा गठिया के दरद में तुलसी का पंचांग चूर्ण चार माशे गोदुग्ध के साथ प्रातः-सायं लेते हैं। सियाटिका रोग में तुलसीपत्र क्वाथ से रोगग्रस्त वात नाड़ी का स्वेदन करते हैं।

(६) मूत्रकृच्छ (डिसयूरिया—पेशाब में जलन, कठिनाई) में तुलसी बीज ६ ग्राम रात्रि में १५० ग्राम जल में भिगोकर इस जल का प्रातः प्रयोग करते हैं। तुलसी स्वरस को मिसरी के साथ सुबह-शाम लेने से भी जलन में आराम मिलता है।

धातु दौर्बल्य में तुलसी के बीज एक माशा, गाय के दूध के साथ प्रातः एवं रात्रि को देते हैं। ऐसा अनुभव है कि नपुंसकता में तुलसी बीज चूर्ण अथवा मूल सम भाग में पुराने गुड़ के साथ मिलाने पर तथा नित्य डेढ़ से तीन ग्राम की मात्रा में गाय के दूध के साथ ५-६ सप्ताह तक लेने से लाभ होता है। प्रदर रोग में अशोक पत्र के स्वरस के साथ मासिक धर्म की पीड़ा में क्वाथ को बार-बार देने से लाभ होता है।

(७) विविध-विभिन्न प्रकार अर्बुदों (कैंसर) में तुलसी के प्रयोग किए गए हैं। २५ या इससे अधिक ताजे पत्ते पीसकर नित्य पिलाने पर उनकी वृद्धि की गति रुकती है। इस कथन की सत्यता की परीक्षा हेतु शोध अनिवार्य है।

Free Read/Download & Order 3000+ books authored by Yugrishi Pt. Shriram Sharma Acharya(Founder of All World Gayatri Pariwar) on all aspects of life in Hindi, Gujarati, English, Marathi & other languages at
www.vicharkrantibooks.org http://literature.awgp.org

तुलसी के प्रत्येक हिस्से को सर्प विष में उपयोगी पाया गया है। सर्पदंश से पीड़ित व्यक्ति को यदि समय पर तुलसी का सेवन कराया जाए तो उसकी जान बच सकती है। जिस स्थान पर काटा हो उस पर तुलसी की जड़ को मक्खन या घी में घिसकर उस पर लेप कर देना चाहिए। जैसे-जैसे जहर खिंचता चला जाता है, इस लेप का रंग सफेद से काला हो जाता है। काली परत को हटाकर फिर ताजा लेप कर देना चाहिए।

बिच्छूदंश में तुलसी स्वरस सिर की तरफ से पैर की तरफ मलने से तथा तुलसी पत्र को चौगुने जल में घोंटकर पाँच-पाँच मिनट में पिलाने से पीड़ा शांत होती है।

तुलसीपत्रों को पीसकर चेहरे पर उबटन करने से चेहरे की आभा बढ़ती है। मुख रोगों व छालों में तुलसी क्वाथ से कुल्ला करें एवं दंतशूल में तुलसी की जड़ का क्वाथ बनाकर उसका कुल्ला करें।

तुलसी एक प्रकार से सारे शरीर का शोधन करने वाली जीवन-शक्ति संवर्द्धक औषधि है। वातावरण का भी शोधन करती है तथा पर्यावरण संतुलन बनाती है। इस औषधि के विषय में जितना लिखा जाए कम है।



Free Read/Download & Order 3000+ books authored by Yugrishi Pt. Shriram Sharma Acharya(Founder of All World Gayatri Pariwar) on all aspects of life in Hindi, Gujarati, English, Marathi & other languages at
www.vicharkrantibooks.org http://literature.awgp.org

परिशिष्ट १

स्थानीय उपचार में प्रयुक्त होने वाली औषधियाँ

(१) हरिद्रा (२) अपामार्ग (३) घृतकुमारी (४) नीम (५) लहसुन।

प्रस्तुत चिकित्सा विधान में उपरोक्त औषधियों को मात्र स्थानीय उपचार बाह्य लेप आदि के रूप में प्रयुक्त करने का निर्धारण किया गया है। इन सभी के संस्थानिक प्रभाव भी हैं, जो मुख मार्ग से ग्रहण किए जाने पर अपने-अपने प्रभाव दिखाते हैं। इनमें से नीम को तो रक्तशोधक के नाते २० औषधियों में भी लिया गया है, पर शेष चार के मात्र बाह्य प्रयोग की चर्चा यहाँ की जा रही है। मुख मार्ग से होने वाले प्रभावों को अवैज्ञानिक अथवा अनुपयुक्त नहीं ठहराया जा रहा, इसे स्पष्ट समझ लें। इन पौधों का संक्षिप्त विवेचन यहाँ प्रस्तुत है—

(१) हरिद्रा (करकुमा लांगा)—इसे शरीर का वर्ण ठीक करने के कारण ही हरिद्रा नाम दिया गया है—**हरि वर्णं प्राप्त संशोधयतीति हरिद्रा**। हलदी की फसल ९-१० मास में तैयार हो जाती है। जब नीचे की पत्तियाँ सूखकर पीली पड़ जाती हैं, तब कंद खोदकर अलग कर लिए जाते हैं। इन सूखे कंदों को एक वर्ष तक प्रयोग कर सकते हैं।

भावप्रकाश निघंटु के अनुसार बाह्य प्रयोग करने पर हरिद्रा त्वचा दोष का निवारण करती है। श्री नादकर्णी ने हलदी के चूर्ण, पेस्ट, मलहम, तेल, लोशन तथा धुएँ को नासिका मार्ग से ग्रहण करने का वर्णन किया है। उनके अनुसार ताजी हलदी का स्वरस व्रणों, नील (ब्रूसेज), कीड़ों आदि के काटे स्थानों पर लगाने से तुरंत लाभ करता

Free Read/Download & Order 3000+ books authored by Yugrishi Pt. Shriram Sharma Acharya(Founder of All World Gayatri Pariwar) on all aspects of life in Hindi, Gujarati, English, Marathi & other languages at
www.vicharkrantibooks.org http://literature.awgp.org

है। दूषित रक्त के कारण त्वचा रोगों में इसका बाह्य प्रयोग लाभकारी माना गया है। दाह, जलन आदि में हलदी चूना लगाने का घरेलू उपचार सभी जानते हैं।

यूनानी में इसे जर्द चोब नाम से जाना जाता है। इसे वर्ण प्रसाधन तथा चोट आदि में लाभकारी माना गया है। रासायनिक संरचना की दृष्टि से हलदी के मुख्य कार्यशील घटक कुरकुमिन नामक यौगिक, सुगंधित तेल टरमेरिक ऑइल तथा टर्पीनाइड नामक पदार्थ हैं।

हलदी त्वचा की चोट अथवा व्रणों के कारण हुई सूजन में क्यों लाभ करती है, इस संबंध में वैज्ञानिकों के पास अब प्रचुर मात्रा में भैषजीय प्रमाण हैं। श्री त्रिपाठी इंडियन जनरल ऑफ फार्मेकोलॉजी ५/२६०/१९७३ के अनुसार यह सूजन के लिए उत्तरदायी प्रोटिएस एन्जाइम्स की सक्रियता को कम करती है। ये एन्जाइम्स हैं—ट्रिप्सिन एवं हाइएल्यूरोनिडेस। इन्हीं के माध्यम से किसी स्थान विशेष पर सूजन अथवा दरद की स्थिति बनती है। हलदी के उड़नशील तेल में एंटी हिस्टेमिनिक (एलर्जी प्रतिरोधी) गुण पाए जाते हैं। डॉ० श्रीमाली (इंडियन जनरल ऑफ फार्मेकॉलाजी ३, १०, १९७१) के अनुसार हलदी का रंजक पदार्थ कुरकुमिन भी शोथ उतारने का गुण रखता है। हरिद्रा में कई प्रकार के रोगाणुओं को नष्ट करने या उनके विषयों को निष्प्रभावी करने की सामर्थ्य पाई गई है। यह ग्राम पॉजिटिव तथा निगेटिव दोनों ही प्रकार के जीवाणुओं का नाश करती है। रोगाणु कई प्रकार के कवक बनाकर औषधियों के लिए भी दुष्कर सिद्ध हो जाते हैं। ऐसी स्थिति में हरिद्रा स्थित उत्पत तेल कवक को भेदकर रोगाणुओं को व्रण में मारने की क्षमता रखता है।

हलदी को व्यवहार में शोथ, चोट, मोच एवं अस्थि भग्न, व्रणों को पकाने के लिए, व्रणों का शोधन करने के लिए, अर्बुद—कार-बंकल

Free Read/Download & Order 3000+ books authored by Yugrishi Pt. Shriram Sharma Acharya(Founder of All World Gayatri Pariwar) on all aspects of life in Hindi, Gujarati, English, Marathi & other languages at
www.vicharkrantibooks.org http://literature.awgp.org

आदि में भरे पस को निकालकर बाहर करने के लिए गरम लेप, सेंक, पुलटिस, मलहम आदि के रूप में प्रयुक्त करते हैं। इसके अतिरिक्त पीसी हुई हलदी तिल के तेल में मिलाकर मर्दन करने से चर्मरोगों में लाभ करती है। कुष्ठ रोग में भी इसके स्थानीय प्रयोग से घाव जल्दी भरते हैं तथा रोग के समूल नष्ट होने की संभावनाएँ बढ़ती हैं। कंडू रोग (स्केबीज) में इसके पेस्ट का लेप खुजली को मिटाता है। चिकनपॉक्स (छोटी माता) में हलदी का चूर्ण लगाने से पपड़ियाँ आराम से उतर जाती हैं तथा व्रण सुधरता है। हर्पीज जोस्टर तथा पेम्फीगस जैसी असाध्य त्वचा व्याधियों में हलदी को सरसों के तेल के साथ लगाने से शीघ्र ही आराम मिलता है, ऐसा डॉ० नादकर्णी का अनुभव है। बिच्छूदंश में भी हलदी के टुकड़े स्थानीय उपचार रूप में अथवा चूर्ण का धूम्र देने से लाभ होता है।

आँखों की सूजन, लाली, दरद में ३० ग्राम कुचली हलदी का लगभग आधे लीटर जल में क्वाथ बनाकर उससे आँखें धोते हैं।

(२) अपामार्ग (एकीरेन्थिस एस्पेरा)—अपां दोषान् मार्जयति संशोधयति इति अपामार्गः। अर्थात जो दोषों का संशोधन करे, उसे अपामार्ग कहते हैं।

यह एक सर्वविदित क्षुपजातीय औषधि है जो चिरचिटा नाम से भी जानी जाती है। वर्षा के साथ ही यह अंकुरित होती है, ऋतु के अंत तक बढ़ती है तथा शीत ऋतु में पुष्प फलों से शोभित होती है। ग्रीष्म ऋतु की गरमी में परिपक्व होकर फलों के साथ ही क्षुप भी शुष्क हो जाता है। इसके पुष्प हरी गुलाबी आभायुक्त तथा बीज चावल सदृश होते हैं, जिन्हें तांडूल कहते हैं।

शरद ऋतु के अंत में पंचांग का संग्रह करके छाया में सुखाकर बंद पात्रों में रखते हैं। बीज तथा मूल के पौधे के सूखने पर संग्रहीत करते हैं। इन्हें एक वर्ष तक प्रयुक्त किया जा सकता है।

Free Read/Download & Order 3000+ books authored by Yugrishi Pt. Shriram Sharma Acharya(Founder of All World Gayatri Pariwar) on all aspects of life in Hindi, Gujarati, English, Marathi & other languages at
www.vicharkrantibooks.org http://literature.awgp.org

अपामार्ग मूलतः मानस रोगों के लिए मुख मार्ग से प्रयुक्त होता है, पर बाह्य प्रयोग के रूप में भी इसका चूर्ण मात्र सूँघने से आधा शीशी का दरद, बेहोशी और मिरगी में आराम मिलता है। नेत्र रोगों में इसका अंजन लगाते हैं एवं कर्णशूल में अपामार्ग क्षार सिद्ध तेल।

चर्म रोगों में इसके मूल को पीसकर प्रयुक्त करते हैं। इसके पत्रों का स्वरस दाँतों के दरद में लाभ करता है तथा पुराने से पुरानी केविटी को भरने में मदद करता है। व्रणों विशेषकर दूषित व्रणों में इसका स्वरस मलहम के रूप में लगाते हैं।

इसका बाह्य प्रयोग विशेष रूप से जहरीले जानवरों के काटे स्थान पर किया जाता है। कुत्ते के काटे स्थान पर तथा सर्पदंश-वृश्चिक दंश, अन्य जहरीले कीड़ों के काटे स्थान पर ताजा स्वरस तुरंत लगा देने से जहर उतर जाता है। यह घरेलू ग्रामीण उपचार के रूप में प्रयुक्त एक सिद्ध प्रयोग है। काटे स्थान पर बाद में पत्तों को पीसकर उनकी लुगदी बाँध देते हैं। व्रण दूषित नहीं हो पाता तथा विष के संस्थानिक प्रभाव भी नहीं होते। बर्र आदि के काटने पर भी अपामार्ग को कूटकर व पीसकर उस लुगदी का लेप करते हैं तो सूजन नहीं आती। शोथ वेदना युक्त विकारों में इसका लेप करते हैं अथवा पुलटिस बनाकर सेकते हैं। वेदना मिटती है व धीरे-धीरे सूजन उतर जाती है।

(३) घृतकुमारी (एलोवेरा)—घी के समान पिच्छिल पीत मज्जा होने से इसे घृतकुमारिका अथवा घीकुँआर कहा जाता है। इसका क्षुप बहुवर्षायु ३० से ६० सेंटीमीटर ऊँचा होता है। पत्तियाँ मांसल, भालाकार, एक से दो फीट लंबी, ३-४ इंच चौड़ी, अग्रभाग में तीक्ष्ण, गूदेदार, बाहर से चमकीले हरे रंग की होती हैं। पत्तों का चौड़ा हिस्सा कुछ मुड़ा-काँटों युक्त होता है। पत्ते बढ़ने व क्षुप के कुछ पुराने होने पर पत्रों के बीच से एक मूसल निकलता है जिस पर रक्ताभ पुष्प निकलते

Free Read/Download & Order 3000+ books authored by Yugrishi Pt. Shriram Sharma Acharya(Founder of All World Gayatri Pariwar) on all aspects of life in Hindi, Gujarati, English, Marathi & other languages at
www.vicharkrantibooks.org http://literature.awgp.org

हैं। कभी-कभी एक से सवा इंचा लंबी फलियाँ भी शीत ऋतु में आती हैं। घीकुँआर में मुख मार्ग से प्रयुक्त औषधि निर्माण हेतु कड़ुवी जाति प्रयुक्त होती है। जिसे विशेष रूप से बोया जाता है। सामान्यतया खेतों की मेड़ों पर या जंगलों में पाई जाने वाली कुछ मिठास भरा गूदा लिए होती है तथा बाह्य प्रयोग के लिए ही इस्तेमाल होती है।

आयुर्वेद मतानुसार यह लेप हेतु उत्तम वस्तु है। इसके गूदे को पेट पर बाँधने से पेट के अंदर की गाँठें गल जाती हैं, कड़ा पेट मुलायम होता है तथा आँतों में जमा मल बाहर निकल जाता है। श्री नादकर्णी ने अपनी पुस्तक 'मटेरिया मैडीका' में ऐलोवेरा के बाह्य उपयोगों की खुले शब्दों में प्रशंसा की है। वे लिखते हैं कि घृतकुमारी का गूदा व्रणों को भरने के लिए सबसे उपयुक्त औषधि है। विशेषकर अमेरिका में 'रेडिएशन' के कारण हुए असाध्य व्रणों पर इसके प्रयोग से असाधारण सफलता मिली है।

श्री दस्तूर के अनुसार घृतकुमारी की पुलटिस अर्बुद 'सिस्ट' सूजन दाह तथा अधपके व्रणों में अत्यधिक लाभ करती है। यूनानी औषधि विज्ञान में इसे सिब्र या मुसब्बर नाम से जाना जाता है और इसके अनेकों बाह्य प्रयोगों का वर्णन यूनानी व तिब्बी चिकित्सा पद्धति में मिलता है। इस औषधि में एलोइन, आइसोवारबेलिन, इमोडिन, क्राइसोफेनिक अम्ल आदि अनेकों रसायन मिले हैं। इसके ये सभी घटक तथा एन्जाइम्स (ऑक्सीडेस वकेटेलेस) घावों को भरने तथा स्थानीय प्रयोगों में सहायक होते हैं।

आधुनिक भेषज में भी घृतकुमारी के उपरोक्त वर्णित बाह्य प्रयोगों के समर्थन में कई अभिमत मिलते हैं। प्रायोगिक जीवों पर विकिरण जन्य दाह तथा व्रणों पर प्रयोग कर यह पाया गया है कि घृतकुमारी के प्रयोग से अन्य औषधियों की अपेक्षा जल्दी दग्धों के भरने की दर

Free Read/Download & Order 3000+ books authored by Yugrishi Pt. Shriram Sharma Acharya(Founder of All World Gayatri Pariwar) on all aspects of life in Hindi, Gujarati, English, Marathi & other languages at
www.vicharkrantibooks.org http://literature.awgp.org

बढ़ती है। जीवों के अंदर इन घावों को भरने वाले, एन्जाइम्स की मात्रा में अत्यधिक वृद्धि होती पाई गई है। इस औषधि में पाया जाने वाला क्रांईसोफेनिक अम्ल भी प्रचंड रोगाणुनाशी है।

बाह्य प्रयोगों के लिए घीकुँआर के पत्रों से प्राप्त लसीला द्रव्य जो सफेद गूदे के रूप में होता है, प्रयुक्त होता है। जले स्थान, त्वचा रोगों, जीर्ण व्रणों, अर्बुदों, स्तन्यशोथ, पाइल्स (अर्श) में लुगदी की पुलटिस लगाई जाती है। इसका गूदा आँखों में लगाने से लाली व गरमी दूर होती है। वायरस कंजक्टीवाईटिस में यह लाभ करती है।

(४) नीम (एजाडिरेक्टा इंडिका) के बाह्य प्रयोग—नीम के वृक्ष घरों के चारों ओर, चौपाल आदि पर लगाने की भारत में चिरपुरातन परंपरा रही है ताकि वायु शुद्धि सतत होती रहे। नीम के आंतरिक प्रयोगों का वर्णन तो पूर्व में हो चुका है, इसके बाह्य प्रयोगों के विषय में भी प्रचुर मात्रा में साहित्य उपलब्ध है। नीम के पत्ते घावों को भरने, कुष्ठ रोग मिटाने, जूँ तथा कीड़े मारने के लिए प्रयुक्त होते रहे हैं। श्री नादकर्णी के अनुसार नीम का सर्वाधिक प्रचलित बाह्य प्रयोग भारत में सिर के जूँ को मारने, कंडू रोग (स्केबीज) की खुजली मिटाने हेतु होता रहा है। इसके फूलों की पुलटिस त्वचा विस्फोटों (इरप्टिव स्किन डिसआर्डर्स) में लाभ करती है तथा छाल की पुलटिस कुष्ठ व त्वचा की टी० बी० में।

यूनानी मतानुसार नीम की छाल का प्रयोग एंटीगैंग्रीनस कीटाणु-नाशक, व्रणशोधक है। विकृत सड़े घावों में भी इसका प्रयोग लाभकारी है। नीम की डाली का दातौन (दंत धावन) मुख की दुर्गंध को तो दूर करता है, दाँतों में कीड़े लगने से भी बचाता है।

आधुनिक मतानुसार नीम का तेल एक अच्छा कीटाणुनाशक व त्वचा की गहरी पर्तों के लिए उत्तेजक है। यह बालों की उत्पत्ति में भी

Free Read/Download & Order 3000+ books authored by Yugrishi Pt. Shriram Sharma Acharya(Founder of All World Gayatri Pariwar) on all aspects of life in Hindi, Gujarati, English, Marathi & other languages at
www.vicharkrantibooks.org http://literature.awgp.org

सहायक है। (डॉ० आर० घोष की मटेरिया मेडीका एंड थेराप्युटिक्स) पत्तियों का गाढ़ा क्वाथ जीर्ण सड़े घावों को शीघ्र भरता है। लखनऊ के किंग जार्ज मेडीकल कॉलेज के डॉ० मिश्रा ने नीम की पत्तियों के एल्कोहलिक निष्कर्ष का लोशन बनाकर दाद, एक्जीमा व कंडू रोग में प्रयुक्त किया। प्रतिदिन दो बार लगाने पर २ से ३ सप्ताह के लगभग सभी रोगी ठीक हो गए व आगे की संभावनाएँ भी समाप्त हो गईं (एंटीसेप्टिक ७६,११,१९७९)।

डॉ० चौरसिया एवं जैन (इंडियन जनरल ऑफ हॉस्पीटल फार्मेसी १५६,१९७८) ने नीम के उत्पत तेल को करीब ग्यारह जाति के रोगाणुओं पर प्रयोग कर उन्हें मारने में सफलता पाई। इनमें प्रमुख हैं—इ० कोलाइ, सल्मोनेला टाइफी, स्टैफीलोकोकस एल्वस एवं ऑरियस। यह एक स्मरणीय तथ्य है कि ये सभी घातक रोगाणु शरीर में असाध्य व्याधि उत्पन्न करते हैं।

नीम की पत्तियों के गाढ़े लेप से शीघ्र बढ़ने वाली कोशिकाओं के बढ़ने की दर (माइटॉनिक इंडैक्स) कम हो जाती है। प्रोसीड्रिंग्स ऑफ नेशनल अकादमी ऑफ साइंसेस इंडिया में प्रकाशित श्री यादव एवं राठौर के इस लेख के अनुसार नीम के कैंसर प्रतिरोधी होने की क्षमता पर प्रकाश पड़ता है। यदि और आगे अनुसंधान किया जा सके तो संभवत: इस दिशा में प्रगति मिल सकती है व 'रेडियम' जैसा कोई कैंसर प्रतिरोधी आविष्कार हो सकता है। व्यावहारिक प्रयोग में नीम की कोपलों व निंबोली का तेल, मलहम, काजल, क्वाथ अथवा निंबोली उबालकर नीम तेल बनाते हैं। २५० ग्राम तेल में ५० ग्राम पत्ती अथवा निंबोली काफी होती है।

मलहम बनाने के लिए नीम का तेल २५० ग्राम, मोम १२५ ग्राम, हरी पत्तियों का स्वरस एक किलो, जड़ की छाल का चूर्ण ५० ग्राम

Free Read/Download & Order 3000+ books authored by Yugrishi Pt. Shriram Sharma Acharya(Founder of All World Gayatri Pariwar) on all aspects of life in Hindi, Gujarati, English, Marathi & other languages at
www.vicharkrantibooks.org http://literature.awgp.org

तथा पत्तों की राख २५ ग्राम को कढ़ाई में मिलाकर तैयार करते हैं। पहले तेल व पत्र स्वरस हलकी आँच पर पकाकर मोम डालते हैं फिर कढ़ाई आँच पर से उतारकर उसमें नीम छाल चूर्ण तथा नीमपत्रों की राख मिलाकर मलहम तैयार कर लेते हैं।

नीम का काजल आँखों में ट्राकोमा (रोहे) तथा लाली आदि के लिए एक कपड़े में नीम के फूलों को लपेटकर उनकी बत्ती बनाकर सरसों के तेल में तर कर जलाते हैं व इस धुएँ से काजल प्राप्त करते हैं।

नीम का तेल, मलहम, क्वाथ कुष्ठ रोग में शरीर पर लेपन हेतु प्रयुक्त होता है। अधपकी गाँठ-ग्रंथि, व्रणों में पत्तियों का भर्त्ता बनाकर लेप करने से सूजन मिटती है व अंदर भरा मवाद बाहर निकल जाता है। मवाद वाले व्रणों में नीमपत्रों का स्वरस शहद मिलाकर लगा लेने से भी लाभ करता है। खुजली, जलन व एक्जिमा की कड़ी चमड़ी में नीम का तेल लगाने से न केवल खुजली की तकलीफ मिटती है, कड़ापन मिटकर नई त्वचा आती है। दाह जलन में पत्र स्वरस का फेन लगाते हैं। मुँहासों में नीम वृक्ष की जड़ को पानी के साथ घिसकर लगाते हैं। ऐसा अनुभव है कि कुष्ठ रोग में स्पर्श संज्ञा का नाश होने पर नीम की पुलटिस की स्थानीय सिकाई तथा पत्रों की निर्धूम राख मलने से वात नाड़ियों में संवेदना शक्ति पुनः-पुनः आती है। नीम हर दृष्टि से एक श्रेष्ठ रोगाणुनाशी प्राकृतिक उपचार पद्धति है। जितने महत्त्वपूर्ण इसके आंतरिक उपयोग हैं, उससे भी कहीं अधिक बाहरी हैं।

(५) लहसुन (एलियम सेटाइवम-गार्लिक)—इसके आंतरिक प्रयोगों का प्रतिपादन तो इस पुस्तक में नहीं है क्योंकि अध्यात्म प्रयोजन से ही सही, औषधि प्रयोजन से भले न हो, इसके तमोगुणी अंतरंग प्रभावों के कारण इसे सात्त्विक आहार नहीं माना जाता है, पर बाहरी उपचार की दृष्टि से यह एक उत्तम श्रेष्ठ औषधि है, इसके

Free Read/Download & Order 3000+ books authored by Yugrishi Pt. Shriram Sharma Acharya(Founder of All World Gayatri Pariwar) on all aspects of life in Hindi, Gujarati, English, Marathi & other languages at
www.vicharkrantibooks.org http://literature.awgp.org

विषय में दो मत नहीं हो सकते। **'लशति-छिनत्ति रोगान् इति लशुनम्'** अर्थात जो रोग का ध्वंस करे उसे लहसुन कहते हैं। इसे रसोन भी कहते हैं।

यह कुछ-कुछ प्याज से मिलता-जुलता पौधा है, जिसके पौधे कोमल-कोमल कांडयुक्त ३० से ६० सेंटीमीटर लंबे होते हैं। पत्तियाँ चपटी, पतली होती हैं व इनको मसलने पर एक प्रकार की उग्र गंध आती है। पुष्पदंड कांड के बीच से निकलता है, जिसके शीर्ष पर गुच्छेदार सफेद फूल लगते हैं। कंद श्वेत या हलके गुलाबी रंग के आवरण से ढका होता है, जिसमें ५ से १२ छोटे-छोटे जौ के आकार के कंद होते हैं। इन्हें कुचलने से तीव्र अप्रिय गंध आती है। सुर्ख शीतल स्थानों पर जहाँ हवा का समुचित प्रवेश होता हो इन्हें ६ मास तक सुरक्षित रखकर प्रयोग में लाया जा सकता है।

डॉ० नादकर्णी के अनुसार लहसुन का तेल, लिनिमेंट व पुलटिस सभी लाभप्रद होते हैं। बाह्य प्रयोगों में यह कड़ी गाँठ को गला देता है। वात रोगों में व लकवे में इसका बाह्य प्रयोग लाभ करता है। इसका लेप दमा, गठिया, सियाटिका, चर्म रोगों तथा कुष्ठ में करते हैं। स्वरस में नमक मिलाकर नीलों (ब्रूस) व मोच (स्प्रेन) में सूजन उतारने हेतु प्रयुक्त करते हैं। यह कर्णशूल के लिए भी प्रयुक्त होता है।

दाद, विशेषकर रिंगवर्म जैसे फंगल संक्रमणों में यह लाभकारी है। सड़े-गले व्रणों पर लगाने में लहसुन प्रतिसंक्रामक का कार्य करता है तथा घाव भरने में मदद करता है। डॉ० विष्णु प्रसाद मुकर्जी के अनुसार लहसुन की पुलटिस किसी भी सूजे भाग पर बाँधने या ताजा स्वरस रगड़ने से सूजन मिटती है।

श्री दस्तूर के अनुसार पेशाब रुकने पर पेट के निचले भाग में लहसुन की पुलटिस बाँधने से मूत्राशय की निष्क्रियता दूर होती है।

Free Read/Download & Order 3000+ books authored by Yugrishi Pt. Shriram Sharma Acharya(Founder of All World Gayatri Pariwar) on all aspects of life in Hindi, Gujarati, English, Marathi & other languages at
www.vicharkrantibooks.org http://literature.awgp.org

हकीम दलजीत सिंह के अनुसार लहसुन बाह्यत: लेपन और विलयन है। इसे पीसकर एंटीबायोटिक की तरह लगाते हैं व अधपकी फुंसियों को पकाने के लिए भी प्रयुक्त करते हैं।

रासायनिक दृष्टि से इसका उत्पत तेल संघटक-ऐलिन प्रोपाइल डाइसल्फाइड व दो अन्य गंधक युक्त यौगिक मुख्य भूमिका निभाते हैं। मेडीसिनल प्लांट्स ऑफ इंडिया के अनुसार लहसुन में पाया जाने वाला एलीन नामक जैव सक्रिय पदार्थ एक प्रचंड रोगाणुनाशी है। औषधि के २० से २५ प्रतिशत घोल की रोगाणुनाशी क्षमता कार्बोलिक अम्ल से दो गुनी है। इसके बावजूद यह स्वस्थ ऊतकों को कोई हानि नहीं पहुँचाती। व्रणों पर इसे बिना किसी हानि के प्रयुक्त किया जा सकता है।

डॉ० अरुणाचलम के अनुसार लहसुन का जल निष्कर्ष (जियोबायोस-७.०१,१९८०) स्ट्रेप्टोकोकस फीकेलिस एवं ई कोलाय के विरुद्ध सामर्थ्य रखता है। कवकों की वृद्धि भी यह रोकता है।

व्यावहारिक प्रयोग में संधिवात, गृधसी, शोथ वेदना प्रधान रोगों में लहसुन के तेल से मालिश करते हैं। पार्श्वशूल में इसके कल्क का लेप व स्वरस की मालिश करते हैं। खुजली, दाद में भी लहसुन के तेल का लेप आराम देता है। पक्षाघात में इसके अभिमर्दन से मांसपेशियों के पुन: सक्रिय होने की संभावनाएँ बढ़ती हैं। साँप तथा बिच्छू के काटे पर लहसुन की ताजी कलियाँ पीसकर लगाएँ। जहाँ तक जहर चढ़ गया हो, वहाँ तक इस लेप को लगाकर पट्टी बाँध देने से जहर उतर जाता है।



Free Read/Download & Order 3000+ books authored by Yugrishi Pt. Shriram Sharma Acharya(Founder of All World Gayatri Pariwar) on all aspects of life in Hindi, Gujarati, English, Marathi & other languages at
www.vicharkrantibooks.org http://literature.awgp.org

परिशिष्ट २

विभिन्न व्याधियों में अनुपान, पथ्य तथा अपथ्य

किन व्याधियों में क्या आहार लिया जाए व किन-किन वस्तुओं का निषेध किया जाए, इसकी समुचित जानकारी सभी को हो, इसके लिए यहाँ प्रारंभ में दी गई सूची के अनुसार व्याधियों के पथ्यापथ्य अनुपान दिए जा रहे हैं।

(१) ऊर्ध्वगत पाचन संस्थान की व्याधियाँ—पथ्य—गेहूँ की रोटी, मूँग, दलिया, जौ, लौकी, परवल, करेला, तोरई, टिंडा, दुग्ध मीठा, दही, सौंफ, धनिया। **अपथ्य**—चना, अरहर, उड़द, खट्टे-कड़वे पदार्थ, चाय, मादक पदार्थ, मिर्च-मसाले, अधिक द्रव्य पेय, पुराना गुड़, तली वस्तुएँ, मूली, कटहल। **अनुपान**—शीतल जल, दुग्ध, फांट, मधु।

(२) अधोगत पाचन संस्थान की व्याधियाँ—पथ्य—दलिया, खिचड़ी, गेहूँ, मसूर, हरी सब्जियाँ, दूध, दही, छाछ, नींबू, केला, पपीता, छिलकेदार सब्जियाँ। **अपथ्य**—तेज मिर्च-मसाले, खटाई, चीनी की बनी मिठाइयाँ, तली वस्तुएँ, चाय आदि। **अनुपान**—उष्ण जल, फांट, मधु।

(३) हृदय एवं रक्तवाही संस्थान—पथ्य—मधुर शीतल पदार्थ, मीठा दूध-दही, गेहूँ की रोटी, दलिया, मूँग, मसूर, चना, सभी हरी सब्जियाँ, नींबू, अमरूद, गुड़। **अपथ्य**—अत्यधिक गर्म भोजन, गर्म पेय, तेज मिर्च-मसाले, कड़वे तीखे पदार्थ, अत्यधिक परिश्रम, थकान, अधिक चिंतन आदि, देर से पचने वाली भारी पदार्थों का सेवन, उड़द, कटहल, तली वस्तुएँ, रात्रि को दुग्ध, रात्रि जागरण, भोजन के बाद

Free Read/Download & Order 3000+ books authored by Yugrishi Pt. Shriram Sharma Acharya(Founder of All World Gayatri Pariwar) on all aspects of life in Hindi, Gujarati, English, Marathi & other languages at
www.vicharkrantibooks.org http://literature.awgp.org

शारीरिक-मानसिक कार्य, अत्यधिक शीतल जल से स्नान, नमक। **अनुपान**—शीतल जल, मधु, फांट, कल्क।

(४) **श्वसन संस्थान—पथ्य**—गेहूँ, चना, लौकी, हरी सब्जी, दुग्ध (काली मिर्च के साथ), हलदी, खुली वायु में भ्रमण। **अपथ्य**—चावल, दही, खटाई, अचार, चिकनी तली वस्तुएँ, पूरी, पराँठे, अधिक व्यायाम, धूल, धुआँ, अत्यधिक श्रम, रात्रि जागरण, दिन में अधिक सोना, अधिक शीतल भोजन, अधिक वजन उठाना, मल-मूत्र के वेग को रोकना। **अनुपान**—उष्ण जल, फांट, मधु।

(५) **केंद्रीय स्नायु संस्थान—पथ्य**—दुग्ध, दही, गेहूँ की रोटी, दलिया, स्नेहयुक्त मूँग की दाल, मसूर की दाल, सभी हरी सब्जियाँ, सौंफ, धनिया, तेलमर्दन, भ्रमण। **अपथ्य**—गरिष्ठ दुष्पाच्य वस्तुएँ यथा उड़द, कटहल, बैंगन, चावल, खट्टा दही, मठ्ठा, तली वस्तुएँ, चाय-पित्तकारक उष्ण वस्तुएँ, रात्रि जागरण, सुबह देर तक सोना, अधिक चिंतन। **अनुपान**—दुग्ध, मिसरी, फांट।

(६) **वात-नाड़ी संस्थान—पथ्य**—गेहूँ, चना, मूँग, मसूर, अरहर, हरी सब्जियाँ, केला, अमरूद, मुनक्का, खजूर, शीत ऋतु में गरम पानी से स्नान, तेल मर्दन, भ्रमण, हलका व्यायाम, दुग्ध। **अपथ्य**—उड़द, बैंगन, कद्दू, घुइयाँ, खट्टा दही, तले पदार्थ, आलू, चावल, शीतल जल से स्नान, रात्रि जागरण, शीत तथा वसंत में दिन में सोना। **अनुपान**—ठंढा जल, मधु, दुग्ध।

(७) **नाड़ीशोधक संस्थान—पथ्य**—गेहूँ व बेसन की रोटी, गौ घृत, दुग्ध, मूँग, लौकी, करेला, परवल, हरिद्रा, बथुआ। **अपथ्य**—चावल, नमक, चीनी, शलजम, मूली, खट्टे विदाहकारक पदार्थ, तेज मिर्च-मसाले, आलू, अत्यधिक श्रम, दूध, खिचड़ी, दही, मठ्ठा। **अनुपान**—शीतल जल, उष्ण जल, कल्क।

Free Read/Download & Order 3000+ books authored by Yugrishi Pt. Shriram Sharma Acharya(Founder of All World Gayatri Pariwar) on all aspects of life in Hindi, Gujarati, English, Marathi & other languages at
www.vicharkrantibooks.org http://literature.awgp.org

(८) **प्रति संक्रमण—पथ्य**—उबालकर ठंढा जल, काली मिर्च, हरिद्रा, हरा पोदीना, ताजा शुद्ध भोजन, हरी सब्जियों की अधिकता। **अपथ्य**—गंदा जल, बासी भोजन, बाजार की बनी मिठाइयाँ, अत्यधिक आहार, गरिष्ठ व तली चीजें। **अनुपान**—उबालकर ठंढा किया जल, मधु के साथ।

(९) **जननेंद्रिय मूत्रवाही संस्थान—पथ्य**—गेहूँ की रोटी, दलिया, खिचड़ी, हरी सब्जी(पालक को छोड़कर), मूँग, कुल्थी, पत्ता गोभी, गौ दुग्ध, मीठा दही, पुनर्नवा की सब्जी, गन्ने का रस, खजूर, धनिया। **अपथ्य**—उड़द, चना, तली वस्तुएँ, तीक्ष्ण पदार्थ, अधिक व्यायाम, अधिक गुड़ व चीनी, मिर्च-खटाई, टमाटर, पालक, अधिक नमक। **अनुपान**—शीतल जल, दुग्ध, फांट, मधु।

(१०) **रसायन बलवर्द्धन—पथ्य**—गेहूँ, दलिया, मूँग, मसूर, अरहर, उड़द, हरी सब्जियाँ, आम, केला, अमरूद, छुहारा, गौ दुग्ध, मीठा दही, हलका व्यायाम, प्रातः भ्रमण, तेल मर्दन। **अपथ्य**—तेल, खटाई, मिर्च, तेज धूप में कार्य, रात्रि में देर से सोना, मल-मूत्रादि वेगों को रोकना, भोजन के तुरंत बाद कार्य। **अनुपान**—गौ दुग्ध, मिसरी।



Free Read/Download & Order 3000+ books authored by Yugrishi Pt. Shriram Sharma Acharya(Founder of All World Gayatri Pariwar) on all aspects of life in Hindi, Gujarati, English, Marathi & other languages at www.vicharkrantibooks.org http://literature.awgp.org

परिशिष्ट ३

प्रयुक्त संदर्भ ग्रंथों की सूची

प्रस्तुत पुस्तक में उद्धरण हेतु जिन ग्रंथों आदि की सहायता ली गई उनका यहाँ साभार उल्लेख किया जा रहा है। जिन चिकित्सा पत्रिकाओं (जनरल्स) की मदद ली गई, उनका उल्लेख विवरण के साथ ही कर दिया गया है। जिन ग्रंथों का अध्ययन किया गया उनका विवरण, प्रकाशक के नाम आदि इस प्रकार हैं—

(१) डॉ० के० एम० नादकर्णी 'इंडियन मेटीरिया मेडिका' खंड एक व दो, तृतीय संस्करण १९७६ , पापुलर प्रकाशन, बंबई।

(२) आचार्य प्रियव्रत शर्मा, 'द्रव्य गुण विज्ञान' भाग १ से ४, चतुर्थ संस्करण १९७७, चौखंभा संस्कृत संस्थान, वाराणसी।

(३) 'मेडीसिनल प्लांट्स ऑफ इंडिया' खंड-१, इंडियन काउन्सिल ऑफ मेडीकल रिसर्च, नई दिल्ली, १९७६.

(४) 'वेल्थ ऑफ इंडिया' रॉमेटीरियल्स खंड १ से ११ तक, काउन्सिल ऑफ साइन्टिफिक एंड इंडस्ट्रियल रिसर्च, नई दिल्ली।

(५) इर्विक डब्ल्यू० मार्टिन, 'हैजार्ड्स ऑफ मेडीकेशन' द्वितीय संस्करण १९७८, जे०बी० लिप्पनकांट कंपनी, फिलेडेलफिया।

(६) गिलमैन, गुडमैन, गिलमैन (संपादक), 'दि फार्मेकोलॉजिकल बेसिस ऑफ थेराप्यूटिक्स' छठा संस्करण १९८०, मैकमिलन पब्लिशिंग कंपनी, न्यूयार्क।

(७) एस०एस०सेन गुप्ता (संपादक) आर० घोष की फार्मकोलॉजी, मेटीरिया मेडिका एंड थेराप्यूटिक्स, २६वाँ संस्करण १९७६, हिल्टन एंड कंपनी, कलकत्ता।

Free Read/Download & Order 3000+ books authored by Yugrishi Pt. Shriram Sharma Acharya(Founder of All World Gayatri Pariwar) on all aspects of life in Hindi, Gujarati, English, Marathi & other languages at
www.vicharkrantibooks.org http://literature.awgp.org

(८) 'हैण्ड बुक ऑफ एग्रीकल्चरल इंडियन काउन्सिल ऑफ एग्रीकल्चरल रिसर्च' नई दिल्ली, पाँचवा संस्करण १९८०.

(९) डॉ० शिव गोपाल मिश्र, 'पादप रसायन' भाग १, प्रथम संस्करण १९७३, उत्तर प्रदेश हिंदी ग्रंथ अकादमी, लखनऊ।

(१०) एन० सी० गांगुली, 'मिल्क प्रोटीन्स' इंडियन काउन्सिल्स ऑफ एग्रीकल्चरल रिसर्च, नई दिल्ली, प्रथम संस्करण १९७४.

(११) डॉ० सेमूअल हैनीमेन 'क्रोनिक डिसिसेज-देयर पिक्यूलियर नेचर एंड देयर होम्योपैथिक क्योर' द्वितीय जर्मन संस्करण १८३५, रिंगर एंड कंपनी, कलकत्ता।

(१२) डॉ० खगेंद्र नाथ वसु 'भारतीय औषधावली का संक्षिप्त भैषज तत्त्व' सातवाँ संस्करण १९७१, हैनीमेन पब्लिशिंग कंपनी, कलकत्ता।

(१३) डॉ० प्रसाद बनर्जी, 'मैटीरिया मेडिका ऑफ इंडियन ड्रग्स' भाग १, प्रथम संस्करण १९७७, शिवा एंड कंपनी, हावड़ा।

(१४) डॉ० पी० शंकरन, 'सम रीसेंट रिसर्च एंड एडवांसिस इन होम्योपैथी' नवां संस्करण १९७८, दी होम्योपैथिक मेडीकल पब्लिशर्स, बंबई।

(१५) विलियम बोरिक, 'पॉकिट मैनुअल ऑफ होम्योपैथिक मेटीरिया मेडिका' नवां संस्करण, १९२७, इंडियन बुक्स एंड पीरियाडिकल सिंडीकेट, नई दिल्ली।

(१६) विलियम एच० वर्ट, 'फिजियोलॉजिकल मेटीरिया मेडिका' तृतीय संस्करण १८८२ का भारतीय संस्करण १९८०, जैन पब्लिशिंग कंपनी, नई दिल्ली।

(१७) सैम्यूल हैनीमैन, 'आर्गेनन ऑफ मेडीसिन' (पाँचवा व छठा संस्करण) एम० भट्टाचार्य एंड कंपनी, कलकत्ता।

Free Read/Download & Order 3000+ books authored by Yugrishi Pt. Shriram Sharma Acharya(Founder of All World Gayatri Pariwar) on all aspects of life in Hindi, Gujarati, English, Marathi & other languages at
www.vicharkrantibooks.org http://literature.awgp.org

(१८) हरबर्ट ए० राबर्टस, 'दी प्रिंसीपल्स एंड आर्ट ऑफ क्योर बाई होम्योपैथी' द्वितीय संस्करण १९४२ का भारतीय संस्करण, बी० जैन पब्लिशर्स, नई दिल्ली।

(१९) जेम्स टाइलर कैण्ट, 'लेक्चर्स ऑन होम्योपैथिक फिलॉसोफी', अमेरिकन मेमोरियल संस्करण १९२९ का प्रथम भारतीय संस्करण, १९६८, रॉय पब्लिशिंग हाउस, कलकत्ता।

(२०) चौपड़ा, नय्यर चोपड़ा, 'ग्लॉसरी ऑफ इंडियन मेडीसिनल प्लांट्स' काउन्सिल ऑफ साइण्टिफिक एंड इंडस्ट्रियल रिसर्च, नई दिल्ली, १९५६.

(२१) बसंत लाल गुप्ता, 'फारेस्ट फ्लोरा ऑफ चकराता, देहरादून एंड सहारनपुर' तृतीय संस्करण १९२८, गवर्नमेण्ट ऑफ इंडिया सेण्ट्रल पब्लिकेशन ब्रांच, कलकत्ता।

(२२) जे० एफ० दस्तूर 'मेडीसिनल प्लांट्स ऑफ इंडिया एंड पाकिस्तान' १९६२ डी०तारा पोरेवाला सन्स एंड कंपनी, बंबई।

(२३) चंद्रराज भंडारी 'विशारद' 'वनौषधि चंद्रोदय' भाग १ से १०, पाँचवां संस्करण १९७५, चौखंभा संस्कृत सीरीज ऑफिस, वाराणसी।

(२४) कविराज डॉ० अम्बिका दत्त शास्त्री (व्याख्याकारी) 'सुश्रुत संहिता' भाग १ व २, चतुर्थ संस्करण १९७६, चौखंभा संस्कृत संस्थान, वाराणसी।

(२५) जे० एफ० ड्यूथी, 'फ्लोरा ऑफ दी अपर गंगेटिक प्लेन' पुनर्मुद्रित १९७३, विशनसिंह-महेंद्रपाल सिंह, देहरादून।

(२६) हकीम मन्साराम शुक्ल, 'यूनानी चिकित्सा सागर' प्रथम संस्करण १९५०, मोतीलाल बनारसीदास, बनारस।

(२७) ब्रह्मशंकर शास्त्री (संपादक), 'चक्रदत्त संहिता' चौथा संस्करण १९७६, चौखंभा संस्कृत सीरीज ऑफिस, वाराणसी।

Free Read/Download & Order 3000+ books authored by Yugrishi Pt. Shriram Sharma Acharya(Founder of All World Gayatri Pariwar) on all aspects of life in Hindi, Gujarati, English, Marathi & other languages at
www.vicharkrantibooks.org http://literature.awgp.org

(२८) डॉ० कृष्णचंद्र चुनेकर (विमलशंकर) 'भावप्रकाश निघंटु' पाँचवा संस्करण १९७९, चौखंभा संस्कृत संस्थान, वाराणसी।

(२९) विश्वनाथ द्विवेदी शास्त्री (व्याख्याकार), 'भाव प्रकाश निघंटु' मोतीलाल बनारसी दास, दिल्ली।

(३०) वैद्य रामनाथ, 'वनौषधि शतक' पाँचवा संस्करण १९७८, सर्व सेवा संघ प्रकाशन, वाराणसी।

(३१) पं० काशी नाथ शास्त्री, डॉ० गोरखनाथ चतुर्वेदी (व्याख्याकार) 'चरक संहिता' छठा संस्करण, दो भाग, १९७८, चौखंभा संस्कृत संस्थान, वाराणसी।

(३२) प्रियरंजन रे, हिरेंद्र नाथ गुप्ता, 'चरक संहिता' (ए साइन्टिफिक सिनॉप्सिस) द्वितीय संस्करण १९८०, इंडियन नेशनल साइंस अकादमी, नई दिल्ली।

(३३) डॉ० गंगाप्रसाद गौड़, नाहर, डॉक्टर शहद, द्वितीय संस्करण, १९७० तेज कुमार बुक डिपो, लखनऊ।

(३४) ब० सिंह रावत, 'शहद और दीर्घजीवन' प्रथम संस्करण १९६५, रावत मौनालय, रानीखेत, अल्मोड़ा, उत्तराखंड।

(३५) हेनरी रोव्सेल, हेलेन मैकफरलानार, 'ए मार्डन बी हरबल' १९७८ मुद्रण, थॉरसन्स पब्लिशर्स लिमिटेड नार्थेम्पटनसायर, इंग्लैंड।

(३६) डॉ० हीरालाल, 'रोगों की अचूक चिकित्सा शहद' प्रथम संस्करण १९६८, नीरोगी ग्रंथमाला प्राकृतिक चिकित्सालय, मगरवारा, उन्नाव (उ० प्र०)।

(३७) हकीम दलजीत सिंह 'यूनानी द्रव्यगुणादर्श' प्रथम संस्करण भाग १ से ३ आयुर्वेदिक एवं तिब्बी अकादमी, लखनऊ।

Free Read/Download & Order 3000+ books authored by Yugrishi Pt. Shriram Sharma Acharya(Founder of All World Gayatri Pariwar) on all aspects of life in Hindi, Gujarati, English, Marathi & other languages at
www.vicharkrantibooks.org http://literature.awgp.org

(३८) चोपड़ा, चोपड़ा व वर्मा, 'सप्लीमेण्ट टू ग्लासरी ऑफ इंडियन मेडीसिनल प्लांट्स' पुनर्मुद्रित १९७४, काउन्सिल ऑफ साइन्टिफिक एंड इंडस्ट्रियल रिसर्च, नई दिल्ली।

(३९) अत्रिदेव विद्यालंकार, 'भेषज्य संहिता' प्रथम संस्करण १९५६, हिंदी समिति, सूचना विभाग, लखनऊ।

(४०) एम० बी० रायजादा, 'सप्लीमेण्ट टू ड्यूथीस फ्लोरा ऑफ दी अपर गंगेटिक प्लेन' १९७६, विशनसिंह महेंद्रपाल सिंह, देहरादून।

(४१) डॉ० रामसुशीलसिंह शास्त्री, डॉ० डी० एन० शर्मा, 'पाश्चात्य द्रव्यगुण विज्ञान' प्रथम संस्करण १९५९, मोतीलाल बनारसीदास, वाराणसी।

(४२) वायालाल गया वैद्य 'निघंटु आदर्श' द्वितीय संस्करण १९६५, श्री स्वामी आत्मानंद सरस्वती आयुर्वेदिक सहकारी फार्मेसी लि०, सूरत।

(४३) हरिकृष्ण भगवानदास (भाषांतरकर्त्ता) 'आर्यभिषक' १६वीं आवृत्ति १९७६, सस्ता साहित्य वर्द्धक कार्यालय, बंबई।

(४४) हैंडबुक ऑफ डोमेस्टिक मेडीसिन एंड कॉमन आयुर्वेदिक रेमेडीस १९७८, सेंट्रल काउन्सिल फॉर रिसर्च इन इंडियन मेडीसिन एंड होम्योपैथी, भारत सरकार, नई दिल्ली।

(४५) एस० पारसी लान्केस्टर, दी सेक्रेड प्लांट्स, ऑफ दी सेंट्रल बुलेटिन नं० ११३, १९६५ नेशनल बोटेनिक गार्डन्स, लखनऊ।

(४६) डॉ० गंगाप्रसाद गौड़ नाहर 'लहसुन और उसके उपयोग' द्वितीय बार १९७९, तेज कुमार बुक डिपो (प्रा० लि०), लखनऊ।

(४७) डॉ० कृष्णचंद्र चुनेकर, 'वानस्पतिक अनुसंधान दर्शिका (१९६६-६८)' प्रथम संस्करण १९६९, चौखंभा विद्याभवन, वाराणसी।

Free Read/Download & Order 3000+ books authored by Yugrishi Pt. Shriram Sharma Acharya(Founder of All World Gayatri Pariwar) on all aspects of life in Hindi, Gujarati, English, Marathi & other languages at
www.vicharkrantibooks.org http://literature.awgp.org

(४८) केदारनाथ पाठक पौराणि वनस्पतियाँ, प्रथम संस्करण १९५२, लेखांजली कार्यालय, काशी।

(४९) डेविड कॉन्वे 'दी मैजिक ऑफ हर्ब्स' १९७७ पुनर्मुद्रण, मै० फ्लावर बुक्स लि०, इंग्लैंड।

(५०) 'आयुर्वेदिक रिसर्च सेमिनार' (गुजरात आयुर्वेद युनीवर्सिटी) अक्टूबर १९७६, नवंबर १९७७, नवंबर १९७८, नवंबर १९७९, गुजरात आयुर्वेद यूनीवर्सिटी, जामनगर, मई १९७९.

(५१) पेपर्स कन्ट्रीव्यूटिड फॉर दी सेमीनार ऑन आयुर्वेद, नेचुरोपैथी एंड योगा, गुजरात आयुर्वेद युनीवर्सिटी, जामनगर, मई १९६९.

(५२) 'शालिग्राम वैश्य, शालिग्राम निघंटु भूषणम्' सेमराज-श्रीकृष्णदास, श्री वेंक्टेश्वर स्टीम मुद्रणालय, मुंबई, संवत् १९६५.

(५३) राबर्ट एल० ब्रैडले, मिल्क नामक लेख, मैक्ग्राहिल एन्साइक्लोपीडिया ऑफ साइंस एंड टेक्नोलॉजी, आठवाँ वाल्यूम, १९७७ संस्करण, मैक्ग्राहिल बुक कंपनी, न्यूयार्क।

(५४) डी०आर० लॉरेन्स 'क्लिनिकल फार्मेकोलॉजी' चौथा संस्करण १९७२, दी इंग्लिश लैंगुएज बुक सोसाइटी एंड चर्चिल लिविंग्स्टोन, इंग्लैंड।

(५५) 'वनौषधि निदर्शिका' डॉ० रामसुशील सिंह, काशी हिंदू विश्वविद्यालय, वाराणसी। प्रकाशन हिंदी समिति, सूचना विभाग, उ० प्र० १९६९.



Free Read/Download & Order 3000+ books authored by Yugrishi Pt. Shriram Sharma Acharya(Founder of All World Gayatri Pariwar) on all aspects of life in Hindi, Gujarati, English, Marathi & other languages at
www.vicharkrantibooks.org http://literature.awgp.org

हमारा सत्संकल्प

- ✧ हम ईश्वर को सर्वव्यापी, न्यायकारी मानकर उसके अनुशासन को अपने जीवन में उतारेंगे।
- ✧ शरीर को भगवान का मंदिर समझकर आत्मसंयम और नियमितता द्वारा आरोग्य की रक्षा करेंगे।
- ✧ मन को कुविचारों और दुर्भावनाओं से बचाए रखने के लिए स्वाध्याय एवं सत्संग की व्यवस्था रखे रहेंगे।
- ✧ इंद्रियसंयम, अर्थसंयम, समयसंयम और विचारसंयम का सतत अभ्यास करेंगे।
- ✧ अपने आप को समाज का एक अभिन्न अंग मानेंगे और सबके हित में अपना हित समझेंगे।
- ✧ मर्यादाओं को पालेंगे, वर्जनाओं से बचेंगे, नागरिक कर्त्तव्यों का पालन करेंगे और समाजनिष्ठ बने रहेंगे।
- ✧ समझदारी, ईमानदारी, जिम्मेदारी और बहादुरी को जीवन का एक अविच्छिन्न अंग मानेंगे।
- ✧ चारों ओर मधुरता, स्वच्छता, सादगी एवं सज्जनता का वातावरण उत्पन्न करेंगे।
- ✧ अनीति से प्राप्त सफलता की अपेक्षा नीति पर चलते हुए असफलता को शिरोधार्य करेंगे।
- ✧ मनुष्य के मूल्यांकन की कसौटी उसकी सफलताओं, योग्यताओं एवं विभूतियों को नहीं, उसके सद्विचारों और सत्कर्मों को मानेंगे।
- ✧ दूसरों के साथ वह व्यवहार नहीं करेंगे, जो हमें अपने लिए पसंद नहीं।
- ✧ नर-नारी परस्पर पवित्र दृष्टि रखेंगे।

Free Read/Download & Order 3000+ books authored by Yugrishi Pt. Shriram Sharma Acharya(Founder of All World Gayatri Pariwar) on all aspects of life in Hindi, Gujarati, English, Marathi & other languages at
www.vicharkrantibooks.org http://literature.awgp.org

- संसार में सत्प्रवृत्तियों के पुण्य-प्रसार के लिए अपने समय, प्रभाव, ज्ञान, पुरुषार्थ एवं धन का एक अंश नियमित रूप से लगाते रहेंगे।
- परंपराओं की तुलना में विवेक को महत्त्व देंगे।
- सज्जनों को संगठित करने, अनीति से लोहा लेने और नवसृजन की गतिविधियों में पूरी रुचि लेंगे।
- राष्ट्रीय एकता एवं समता के प्रति निष्ठावान रहेंगे। जाति, लिंग, भाषा, प्रांत, संप्रदाय आदि के कारण परस्पर कोई भेदभाव न बरतेंगे।
- मनुष्य अपने भाग्य का निर्माता आप है—इस विश्वास के आधार पर हमारी मान्यता है कि हम उत्कृष्ट बनेंगे और दूसरों को श्रेष्ठ बनाएँगे, तो युग अवश्य बदलेगा।
- 'हम बदलेंगे-युग बदलेगा', 'हम सुधरेंगे-युग सुधरेगा' इस तथ्य पर हमारा परिपूर्ण विश्वास है।



मुद्रक—युग निर्माण योजना प्रेस, मथुरा (उ० प्र०)

Free Read/Download & Order 3000+ books authored by Yugrishi Pt. Shriram Sharma Acharya(Founder of All World Gayatri Pariwar) on all aspects of life in Hindi, Gujarati, English, Marathi & other languages at
www.vicharkrantibooks.org http://literature.awgp.org